OM

A HISTORY OF VEDIC LITERATURE

VOL. II

THE BRĀHMAṆAS

AND

THE ĀRAṆYAKAS

BY
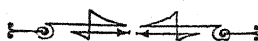
BHAGAVAD DATTA

PROFESSOR D. A. V. COLLEGE LAHORE.

DECEMBER 1927.

First Edition }
500 Copies. }

{ ~~*Price Rs Five.*~~

ओम्

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत-ग्रन्थमाला

अनेक विद्वानों की सहायता से

भगवद्दत्त

संस्कृताध्यापक वा अध्यक्ष अनुसन्धान विभाग

दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर द्वारा

सम्पादित ।

ग्रन्थाङ्क १० ।

श्रीमद्दयानन्द महाविद्यालय संस्कृतग्रन्थमाला सं० १०

ओम्

वैदिक वाङ्मय का इतिहास ।

भाग द्वितीय

ब्राह्मण और आरण्यक

लेखक

भगवद्दत्त

अध्यापक दयानन्द महाविद्यालय,

लाहौर ।

आर्य्य सम्वत् १९६०=५३०२९ ।

विक्रम सं० १९८४ । सन् १९२७ ई० ।

दयानन्दाब्द १०३ ।

प्रथम संस्करण ५०० प्रति मूल्य ५) रु०

Printed by Pt. MAHAVIR PRASAD
MANAGER VIDYA PRAKASH PRESS, CHANGAR ROAD, LAHORE.
AND PUBLISHED BY
THE RESEARCH DEPARTMENT, D. A. V. COLLEGE, LAHORE.

प्राक्कथन

सन् १९१३ से मैंने संस्कृत भाषा का पढ़ना आरम्भ किया था। आरम्भ में ही बोडन-अध्यापक आर्थर एनथनि मैकडानल का "संस्कृत साहित्य का इतिहास" मुझे पढ़ना पड़ा। उसे पढ़ कर मेरे मन में उमङ्ग उत्पन्न होती थी कि अपनी आर्यभाषा में भी एक सर्वाङ्गपूर्ण संस्कृत वाङ्मय का इतिहास लिखा जाना चाहिए। वह उमङ्ग दिन प्रति दिन बढ़ती गई। अध्ययन के अधिकाधिक होते जाने पर मुझे प्रतीत हुआ कि संस्कृत वाङ्मय बड़ा विशाल है। उस के सब अङ्गों का इतिहास लिखना एक नहीं अनेक विद्वानों का काम है। ऐसा विचार होने पर मैंने अपनी दृष्टि केवल वैदिक वाङ्मय की ओर ही फेर ली। काम अत्यन्त कठिन था परन्तु श्रद्धा भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। मैंने साहस नहीं छोड़ा। पाश्चात्य विद्वानों का अनथक परिश्रम मुझे सदा ही उत्तेजित करता रहा है। पाश्चात्य विद्वानों के साथ इस वाङ्मय के प्रायः सारे ही मौलिक विषयों में भारी मतभेद होने पर भी, उन के परिश्रम की, उन की सूक्ष्म दृष्टि की, मैं सदा ही मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता रहा हूं।

इस क्षेत्र में अलबर्ट वैबर, मैक्समूलर, मैकडानल आर्थर बैरीडेल कीथ, विन्टरनिट्ज़ आदि प्रतिष्ठित विद्वानों ने बड़े खोज से अपने ग्रन्थ लिखे हैं। मैंने उन सब के ही ग्रन्थों का मनन किया है। उन के सत्य सिद्धान्तों का मैंने अपने ग्रन्थ में समावेश भी किया है। जहां उन से मेरा विरोध था, उसे सप्रमाण लिखा है। इस ग्रन्थ को लिखते समय किसी पक्षपात को, किसी मत के अनुचित अनुराग को, किसी मिथ्या विश्वास को मैंने पास फटकने तक नहीं दिया। ईश्वर कृपा से मेरा परिश्रम समाप्ति पर आया है।

मैं सर्वज्ञ नहीं हूं। मेरे ग्रन्थ में भूलें होना सम्भव है। पर मैंने वर्षों तक उन विषयों का गम्भीरता से विचार किया है, जिन्हें मैंने इस पुस्तक में लिखा है। फिर भी विद्वान् लोग निष्कपट हृदय से जो कुछ सप्रमाण

लिखेंगे। उसे विचारूंगा, यदि उन के विचार सत्य सिद्ध हुए, तो उन्हें स्वीकार करूंगा। अपने समालोचकों से मेरा एक ही निवेदन है। समालोचना करते समय वे विषय को आद्यन्त देख कर ही समालोचना करें। किसी बात को बीच में से तोड़ मोड़ कर न पकड़ें।

यह ग्रन्थ छः भागों में निकलेगा। पहला भाग अभी स्थगित रखा गया है। वेद सम्बन्धी कई नये ग्रन्थ मिलने की मुझे आशा है। उन ग्रन्थों की प्राप्ति पर शीघ्र ही प्रथम भाग छपेगा। सन् १९२० में मैंने "ऋग्वेद पर व्याख्यान" भाग प्रथम लिखा था। उस के अगले भाग अभी तक नहीं छापे गये। कारण यह है कि यह मुद्रित प्रथम भाग अब बड़ा परिवर्तित हो चुका है। उस का परिवर्तित रूप और अगले भाग की कुल सामग्री अब इस इतिहास के प्रथम भाग में छपेगी।

यह दूसरा भाग जनता के प्रति धरा जाता है। इस में अनेक ऐसे विषय लिखे गए हैं, जिन का क्रमानुसार वर्णन आज तक कहीं नहीं किया गया। ब्राह्मणग्रन्थों के भाष्यकार नाम का अध्याय ऐसा ही है। इस भाग के छठा, सातवां, आठवां तीन अध्याय वही हैं, जो वैदिक कोष की भूमिका के रूप में छपे थे। वे अब बड़े परिवर्द्धित रूप में यहां उपस्थित किए गए हैं।

मेरे मित्र पं० चमूपति एम० ए० ने इन अध्यायो के विषय में कुछ लेख मेरे विचारों के प्रतिकूल लिखे थे। उन का संक्षिप्त उत्तर मैंने आर्य जगत् के गत वर्ष के कुछ अङ्कों में दे दिया था। वैदिक विषयों में उन का ज्ञान इतना परिमित और सङ्कीर्ण है. कि इस पुस्तक में मैंने उन के लेखों के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। आशा है, जब वे कुछ वर्ष और वैदिक ग्रन्थों का मनन करेंगे, तो मेरे सदृश ही विचार धारण करेंगे। अथवा जब वह स्वयं कोई ऐसा क्रमबद्ध इतिहास लिख कर प्रस्तुत करेंगे, तो उस से सब निर्णय हो जायगा।

इस भाग में ब्राह्मणों और आरण्यकों का ही वर्णन किया गया है।

यह व   न स्थानाभाव से बहुत संक्षिप्त रीति से ही किया है। आशा है, मेरे इस परिश्रम के पश्चात् कुछ विद्वान् इसी ओर रुचि कर के और भी खोजपूर्ण ग्रन्थ लिखेंगे। आर्यभाषा में इतना विस्तृत इतिहास अभी तक नहीं लिखा गया। तीन, चार वर्ष हुए मेरे मित्र और सहपाठी पं० कपिलदेव, शास्त्री, एम० ए० ने ऐसा एक छोटा सा इतिहास संस्कृत साहित्य का लिखा था। मैंने वह उन्हीं दिनों पढ़ा था। उस में भ्रष्ट ग्रन्थनामों की भरमार थी। कई ग्रन्थ जो ४० वर्ष पहले छप चुके थे उन के सम्बन्ध में भी लिखा था कि अभी नहीं छपे। मुझे सन्देह है, कि वह ग्रन्थ मेरे मित्र का ही लिखा हुआ था, वा किसी अन्य का।

मैंने जो कुछ इस ग्रन्थ में लिखा है, वह सब मेरे स्वतन्त्र अध्ययन का फल है। मैं यह ग्रन्थ कभी न लिख सकता, यदि दयानन्द कालेज की प्रबन्धकर्तृ सभा मेरी इच्छा पर, वैदिक वाङ्मय का वह अद्भुत पुस्तकालय न छोड़ती, जिसे मैंने ११ वर्ष के अविश्रान्त परिश्रम से बनाया है।

वैदिक वाङ्मय को छोड़ कर संस्कृत साहित्य के दूसरे विषयों का इतिहास मेरे मित्र और सहकारी कार्यकर्ता पं० वेद व्यास एम० ए० लिखेंगे। उन के ग्रन्थ का पहला भाग छप चुका है। शेष भाग भी वे शीघ्र लिखेंगे।

इस भाग में कई वैदिक प्रमाणों का अनुवाद करने में मैंने अपने मित्र पं० चारुदेव शास्त्री एम० ए० से सहायता ली है। वैदिक कोष के संग्रहीता और मेरे विभाग के पुस्तकाध्यक्ष पं० हंसराज भी समय २ पर मुझे उपयोगी सामग्री देते रहे हैं। इन दोनों मित्रों का मैं बड़ा कृतज्ञ हूं। उन सैंकड़ों ग्रन्थकारों के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकाश करता हूं, जिन के ग्रन्थरत्नों से मैंने भारी सहायता ली है। यह भाग इतनी शीघ्रता से कदापि न निकल सकता यदि मेरी धर्मपत्नी पण्डिता सत्यवती शास्त्री, संस्कृताध्यापिका, "कालेज फार विमैन" लाहौर मुझे इतनी सहायता न

देतीं। जब मैं लिखते २ थक जाता था, तो वे लिखना आरम्भ कर देती थीं। और प्रूफों का कठिन काम तो बहुत सा उन्होंने ही किया है। प्रमाणों को निकाल २ कर रखते जाना उन्हीं का काम था, उन्हीं के निरन्तर उत्साह से मैंने इस भाग की पूर्ति की है। लगभग १५० पृष्ठ तो इसी मास में लिखे गए हैं। मैं उन का धन्यवाद नहीं करता, क्योंकि मैं इस कार्य को हम दोनों का सांझा काम समझता हूं।

मुझे पूर्वोक्त सब सहायता मिली है, पर वह भाव, जिस ने मुझे इस बृहद्ग्रन्थ के लिखने पर सब से बढ़ कर प्रेरित किया है, मेरे मित्र श्री पं० राम अनन्तकृष्ण शास्त्री का है। गत ३ वर्ष से मेरे विभाग की वे अवैतनिक सेवा कर रहे हैं। इस अवसर में जो सैंकड़ों अलभ्य अथवा दुष्प्राप्य वैदिक ग्रन्थ उन्होंने मेरे पास भेजे हैं, उन्हें देख २ कर मैं उत्साहित होता था, और विचारता था, कि इस इतिहास के द्वारा उन ग्रन्थों की सूचना जनता में पहुंचा दी जावे। उस सारे काम के लिए जो वे प्रेमपाशबद्ध ही कर रहे हैं, मैं उन का हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

विद्या प्रकाश प्रेस के अध्यक्ष पं० महावीर प्रसाद का भी म बड़ा अनुगृहीत हूं जिन्हों ने अत्यन्त थोड़े समय में इस भाग को इस सुन्दर रूप में प्रकाशित किया है।

ईश्वर करे, इस ग्रन्थ का पाठ संसार के विद्वानों के हृदयों में वेद के स्वाध्याय की अधिक रुची उत्पन्न करे। इत्यलम्।

२० दिसम्बर, मंगलवार,
सन् १९२७

भगवद्दत्त

विषयसूची ।

ओम्

वैदिक वाङ्मय का इतिहास

भाग-द्वितीय ।

ब्राह्मण ग्रन्थ और तत्कालीन इतिहास

प्रथमाध्याय

१—ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द

ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का प्रयोग **नपुंसकलिङ्ग** में ही मिलता है । वेद अर्थात् मंत्र-संहिताओं में ग्रन्थवाची ब्राह्मण शब्द का अभाव है । ब्राह्मणों का प्रवचन मंत्रों के प्रकाश के पीछे हुआ । इस लिये मंत्रों में इस शब्द का अस्तित्व मिलना भी न चाहिए । तैत्तिरीय संहिता[1], ब्राह्मणों[2], सूत्रों[3], और निरुक्त[4] आदि ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग बहुधा मिलता है । वहां सर्वत्र यह शब्द नपुंसकलिङ्ग में ही है । आधुनिक अमर आदि कोशों में प्रायः इस शब्द का उल्लेख नहीं है । हां मेदिनीकोष णान्त वर्ग में निम्नलिखित श्लोकार्ध है—

ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम् ॥ ६७ ॥

अर्थात् ब्रह्मसंघात और वेदभाग[5] में ब्राह्मण शब्द नपुंसक है । विष्णुधर्मोत्तर तृतीय खण्ड अ० १७ में एक प्रयोग और प्रकार का है—

मन्त्राः सब्राह्मणाः प्रोक्तास्तदर्थं ब्राह्मणं स्मृतम् ।
कल्पना च तथा कल्पाः कल्पश्च ब्राह्मणस्तथा ॥ १ ॥

अर्थात् मन्त्र साथ ब्राह्मणों के प्रवचन किए गए । उन्हीं मन्त्रों के (व्याख्यानादि के) लिए ब्राह्मण जानना चाहिए । कल्पना और कल्प तथा कल्प और ब्राह्मण (मन्त्र-विनियोग बताते हैं ।)

---

१ तै०स० ३।१।६।३०॥ ५।२।१॥
२ शत० ४।६।६।२०॥ जै०ब्रा० १।११६॥
३ पाणिनीयाष्टक ४।२।६६॥
४ निरुक्त ४।२७॥
५ मध्यमकालीन ग्रन्थकार ब्राह्मणों को वेदावयव ही मानते थे ।

यहां श्लोक के अन्त में आने वाला ब्राह्मण पद संदिग्ध है। यदि यह जातिवाची माना जाय, तो अर्थ संगत नहीं होता। अतएव क्या पुल्लिंग में भी ब्राह्मण शब्द वर्ता गया है, अथवा यहां पाठ भ्रष्ट हुआ है, अथवा अर्थ कुछ और है।

महाभारत उद्योगपर्व अ० १६ का एक श्लोक इस विषय पर और भी प्रकाश डालता है। उस में ब्राह्मण शब्द पुल्लिंग में है—

य इमे ब्राह्मणाः प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम्।
एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव ॥६॥

अर्थात् जो ये ब्राह्मण और मन्त्र गोमेध में पढ़े गये, हे वासव ये आप को प्रमाण हैं वा नहीं।

सम्भव है कई जन इन प्रयोगों को आर्ष कह कर टाल दें, पर वस्तुतः इस विषय में जांच की बड़ी आवश्यकता है।

२—ब्राह्मणान्तर्गत विद्याओं के सम्बन्ध में एक आथर्वण मन्त्र

ब्राह्मणों में जो विषय संगृहीत हैं, उन्हीं विषयों का कथन अथर्ववेद के एक मन्त्र में मिलता है—

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥
१५।६।११॥

इस मन्त्र में किसी ग्रन्थविशेष का संकेत नहीं है। सामान्यरूप से विद्याविशेषों का वर्णन है। इन्हीं **इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी** आदि का संग्रह ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है।

३—ब्राह्मण शब्द और उसका अर्थ

संस्कृत ग्रन्थकारों, भाष्यकारों, वार्तिककारों और टीकाकारों ने ब्राह्मण शब्द का अर्थ कहीं शायद ही लिखा हो। सायण प्रभृति भाष्यकार लक्षण मात्र करके ही सन्तुष्ट हो गये हैं। अपने ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में सायण कहता है—'जो परम्परा से मंत्र नहीं वह ब्राह्मण है और जो ब्राह्मण नहीं वह मन्त्र है।'

व्याकरण की रीति से ब्राह्मण शब्द का अर्थ ब्रह्म अर्थात् मंत्र[1] वा वेद[2] सम्बन्धी है'। दयानन्दसरस्वतीस्वामि-परिशोधित जो **अनुभ्रमोच्छेदन** ग्रन्थ संवत् १९३७ में छपा था, उस के पृ० ६ पर यह लेख है—

---

१ ब्रह्म वै मन्त्रः। श० ७।१।१।५॥ | २ वेदो ब्रह्म। जै० उ० ४।२५।३॥

"जिस से ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान हैं, इसी से इन का नाम ब्राह्मण रखा है अर्थात्—**ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि ।**"

संस्कृतविद्योपाख्यान (सं० १६६२) का कर्ता भवानीदास एम० ए० लिखता है—

'ब्राह्मण भाग उस का नाम इस करके है कि उस में ब्रह्म अर्थात् वेद[1] का ज्ञान दिखाया गया है। अथवा इस करके कि ब्राह्मण को ही वह भाग यज्ञ कराने की विधि के अर्थ पढ़ाना होता था।" पृ० २४ ॥

४—ब्राह्मण का अर्थ है—यज्ञक्रिया का व्याख्यान

ब्राह्मणों में यज्ञ सम्बन्धी क्रिया की व्याख्या में भी ब्राह्मण शब्द प्रयुक्त हुआ है। जैसे कहा है—

दूरोहणं रोहति तस्योक्तं ब्राह्मणम्। ऐ० ६।२५॥

इस के पूर्व ऐ० ४ २०॥ में दूरोहण ब्राह्मण का व्याख्यान इस प्रकार किया है—

दूरोहणं रोहति । स्वर्गो वै लोको दूरोहणं । स्वर्गमेव तं लोकं रोहति य एवं वेद। यदेव दूरोहणां३ असौ वै दूरोहो योऽसौ तपति । कश्चिद्वा अत्र गच्छति। स यद्दूरोहणं रोहत्येतमेव तद्रोहति। हंसवत्या-रोहति। हंसः शुचिषदित्येष वै हंसः शुचिषत्। इत्यादि ।

इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस दूरोहण ब्राह्मण में दूरोहण शब्द का व्याख्यान पाया जाता है। और भी देखो—

यद्गौरिवीतं तस्योक्तं ब्राह्मणम्। ऐ० ८।२॥

इस के पूर्व ऐ० ४।२॥ में इस का ब्राह्मण=व्याख्यान इस प्रकार कियाहै—

गौरिवीतं षोडशि साम कुर्वीत तेजस्कामो ब्रह्मवर्चस्कामस्तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतं। तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं विद्वान् गौरिवीतं षोडशि साम कुरुते। नानदं षोडशि साम कर्तव्यमित्याहुः।

इस गौरिवीति ब्राह्मण में गौरिवीत शब्द का व्याख्यान पाया जाता है।

---

१ जब ग्रन्थकर्ता ब्राह्मण को भी वेदभाग मानता है तो उस को ऐसा न लिखना चाहिए था।

इसी प्रकार ऐ० ८ । १७ ॥ में—**अथास्मा औदुंबरीमासंदीं संभरन्ति । तस्या उक्तं ब्राह्मणम्**—यह कहा है । इस से पूर्व ऐ० ५।२४॥ में इस का ब्राह्मण कहा है । यथा—

औदुंबरीं समन्वारभन्त इषमूर्जमन्वारभ इत्यूर्ग्वा अन्नाद्यमुदुंबरो यद्वै तद्देवा इषमूर्जं व्यभजन्त तत उदुंबरः समभवत्तस्मात्स त्रिः संवत्सरस्य पच्यते ।

इस से पता लगता है कि ब्राह्मणों के प्रवक्ता ऋषि इस शब्द का अर्थ ब्रह्म[1] की व्याख्या भी समझते थे ।

४—ब्राह्मण सम्बन्धी विज्ञायते शब्द

श्रौत[2], गृह्य[3], शुल्ब[4], धर्म[5] आदि सूत्रों, निरुक्त[6] और निदान[7] आदि ग्रन्थों में तैत्तिरीयादि संहितास्थ ब्राह्मणवचनों वा ब्राह्मणग्रन्थान्तर्गत वचनों को **इति विज्ञायते** कह कर प्रायः उद्धृत किया गया है ।[8] यह शब्द क्यों ब्राह्मण वचनों का द्योतक माना गया है, इस का अभी तक हमें पता नहीं लगा ।

दुर्ग निरुक्तटीका २ । ११ ॥ और २ । १८ ॥ में इति विज्ञायते का अर्थ—**एवं ब्राह्मणेऽपि विचार्यमाणे ज्ञायते**—करता है ।

५—दो प्रकार के ब्राह्मण

भट्ट भास्कर तैत्तिरीय संहिता भाष्य १।८।१॥ की भूमिका में लिखता है—

द्विविधं ब्राह्मणं । कर्मब्राह्मणं कल्पब्राह्मणं चेति ।

अर्थात् तै० आदि संहिता वा ब्राह्मण ग्रन्थों में दो प्रकार के ब्राह्मण होते हैं । एक कर्म ब्राह्मण और दूसरे कल्प ब्राह्मण । आगे चल कर वह कहता है—'कर्म ब्राह्मण

---

१ अर्थात् वाक्=मन्त्र । सत्य । वेद । यज्ञ । देखो हमारा वैदिक कोष ।

२ आश्व० श्रौ० ३।१३॥ आप०श्रौ०२।५।२॥ २।११।२॥

३ आश्वलायनगृह्य १।१७।२२॥ बोधायनगृह्य १।३।१४॥२।५।७२॥ काठकगृह्य २४।२०॥

४ बौधायन शुल्ब ३०।३॥

५ वासिष्ठ धर्मसूत्र १ ।३६ ॥–१ । ४६ ॥ ४ । ३ ॥ ५ । ८ ॥

६ निरुक्त २।११॥२।१८॥

७ ३ । ५ ॥

८ यह आश्चर्य है कि निरुक्त ४ । ४ ॥ में ऋग्वेदीय मन्त्रस्थ पदों को भी **इति विज्ञायते** कह कर उद्धृत किया गया है । वैसे ही बो०पितृ० सू०१।१३।६॥ में ऋ० १।८६।६॥ को **तदपि दाशतये विज्ञायते** कह कर लिखा है ।

वह है जो केवल कर्मों का विधान करता है और मन्त्रों का विनियोग बताता है। न ही प्रशंसा करता है, न ही निन्दा।'

'कल्प ब्राह्मण में मन्त्रों का पाठ मात्र है, विनियोग नहीं।'

भट्ट-भास्कर प्रदर्शित ये परिभाषाएं कितनी पुरानी हैं, यह चिन्तनीय है।

७—अनुब्राह्मण

अष्टाध्यायी में एक सूत्र है—अनुब्राह्मणादिनिः। ४।२।६२॥

इस का अर्थ करते हुए प्रायः सब ही टीकाकार लिखते हैं—ब्राह्मणसदृशमनुब्राह्मणम्। अर्थात् ब्राह्मण तो नहीं, पर ब्राह्मणों से मिलते जुलते ग्रन्थों को अनुब्राह्मण कहा जाता है। इसी अभिप्राय से कई लोग सामवेद के छोटे २ ब्राह्मणों में से भी किसी को अनुब्राह्मण कह देते हैं। सत्यव्रतसामश्रमी आर्षेय ब्राह्मण को टायटल पेज पर अनुब्राह्मण भी लिखता है। पुनरपि निरुक्तालोचन सन् १६०७ पृ० ६७ पर सत्यव्रतसामश्रमी लिखता है—

ताण्ड्यांशभूतानि, ताण्ड्यपरिशिष्टभूतानि वा अनुब्राह्मणानि वा अपराण्यपि सप्ताधीयन्ते च।

इस लेख से सत्यव्रत का यही अभिप्राय है, कि सामवेद के ताण्ड्य से अतिरिक्त सातों ब्राह्मण अनुब्राह्मण माने जा सकते हैं।[1] निदान सूत्र में भी बहुधा अनुब्राह्मण कह कर कई प्रमाण धरे हैं।

भट्ट भास्कर तै० सं० भाष्य १।८।१॥ की भूमिका में तै० ब्राह्मणान्तर्गत १।६।११।१॥ को लिखता है—

अनुब्राह्मणं च भवति—अष्टावेतानि हवींषि भवन्ति। इति।

माधव अपने तै० ब्रा० भाष्य में १।६।१॥ में आये इस अनुवाक के सारे ब्राह्मणों का नाम ही इस प्रकार लिखता है—

अथ राजसूयस्यानुब्राह्मणं.........।

इस से प्रतीत होता है कि ब्रा० के कुछ अवान्तर विभाग भी अनुब्रा० कहे जाते हैं।

---

१ कुमारिल तो इन सब को ब्राह्मण ही मानता है। तन्त्रवार्तिक १।३।१०॥

द्वितीयाध्याय

उपलब्ध ब्राह्मणों का वर्णन

ऋग्वेदीय ब्राह्मण

१—ऐ त रे य ब्रा ह्म ण[1]

ग्र न्थ प रि मा ण—ऐतरेय ब्राह्मण में आठ पञ्चिकायें हैं । प्रत्येक पञ्चिका में पांच अध्याय हैं । कुल मिला कर सारे ब्राह्मण में चालीस अध्याय हैं ।

वि शे ष ता यें—इस ब्राह्मण में ब्राह्मण प्रवक्ता आचार्यों की सम्मतियां बहुत कम उद्धृत की गई हैं । केवल ७ । ११ ॥ में पैङ्ग्य और कौशीतकि का मत उद्धृत है । इस से कीथ परिणाम निकालता है कि यह अध्याय ही प्रक्षिप्त है ।[2] हमारा ऐसा मत नहीं । प्रतीत होता है महिदास अन्य ब्राह्मणों के प्रवचनकर्ताओं के समान प्राचीन परम्परागत सामग्री में बहुत कम हस्तक्षेप करता था । ऐतरेय ब्रा० की प्रथम ६ पञ्चिकाओं में सोमयाग का वर्णन है । अन्तिम दो पञ्चिकाओं में राज्याभिषेक का कथन है ।

सं क ल न—उस परम्परा के अनुसार जो सायण को ज्ञात थी, इस ब्राह्मण का प्रवक्ता महिदास ऐतरेय है । इस बात के मानने में अणुमात्र भी आपत्ति नहीं कि महिदास ही ने इन चालीस अध्यायों का संकलन किया । पाणिनि को उतने ही ब्राह्मण का ज्ञान था जितना हमारे पास पहुंचा है ।

त्रिंशच्चत्वारिंशतो ब्राह्मणे संज्ञायां डण् । ५।१।६२॥

---

१ क—**ऐतरेय ब्राह्मणम्—मार्टिनहॉग** द्वारा सम्पादित । मुम्बई गवर्नमेण्ट द्वारा प्रकाशित । सन् १८६३ । भाग १ ।

ख—**ऐतरेय ब्राह्मणम्**—सायणभाष्यसमेतम् । सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित । Asiatic Society of Bengal, Calcutta. सम्वत् १९५२-१९६२. भाग १–४

ग—**ऐतरेय ब्राह्मणम्**—Das Aitareya Brahmana सम्पादक Theodor Aufrecht. Bonn. सन् १८७९ ।

घ—**ऐतरेय ब्राह्मणम्**—सायणभाष्यसमेतम् । सम्पादक-काशीनाथ शास्त्री आनन्दाश्रम पूना । १८९६ । भाग १, २ ।

२ देखो कीथ ऋग्वेद के ब्राह्मण पृ० २४ ।

यहां चालीस अध्याय के ब्राह्मण से ऐतरेय ब्राह्मण का ही अभिप्राय पाणिनि को अभिमत है।

ऐतरेय ब्राह्मण के काल के सम्बन्ध में कीथ के कथन की परीक्षा

ऐतरेय ब्रा० दूसरे० ब्रा० की अपेक्षा कुछ अधिक पुराना है, इस पर लिखते हुए कीथ ने कुछ युक्तियां दी हैं। उन का खण्डन यथास्थान स्वयं हो जावेगा। यहां एक युक्ति के सम्बन्ध में हम ने कुछ कहना है। कीथ लिखता है—

The *Aitareya* has no allusion to Svetaketu or the more famous Aruni, and therefore we have another suggestion in favour of its comparatively older date.[1]

अर्थात्—ऐतरेय में श्वेतकेतु अथवा प्रसिद्ध आरुणि का उल्लेख नहीं है। अतः ऐतरेय के कुछ अधिक पुराना होने में यह एक और हेतु हो सकता है।

इस विषय पर हम विस्तारपूर्वक इस ग्रन्थ में आगे लिखेंगे। यहां इतना लिखना पर्याप्त है कि ऐतरेय ६। ३०॥ में '**बुलिल आश्वतराश्वि**' का उल्लेख है। इसी को दूसरे स्थानों में 'बुडिल आश्वतराश्वि'[2] भी कहा गया है। छान्दोग्य ५।११॥ के प्रमाण से यही आचार्य उद्दालक आरुणि का समकालीन है। इस लिए जब महिदास आरुणि के साथी को जानता था तब वह आरुणि को अवश्यमेव जानता था। अतएव ऐतरेय ब्राह्मण के कुछ अधिक पुराना होने में कीथ का अनुमान प्रमाणकोटि में नहीं आ सकता।

ऐतरेय ब्राह्मण के प्रचार के देश

चरणव्यूह कण्डिका २ की टीका में महिदास **महार्णव** से निम्नलिखित श्लोक लेता है—

तुङ्गा कृष्णा तथा गोदा सह्याद्रिशिखरावधि।
आ आन्ध्रदेशपर्यन्तं बह्वृचश्चाश्वलायनी॥

इस का अभिप्राय यही है कि ऋग्वेदीय आश्वलायन शाखाध्यायी ब्राह्मण, जो कि ऐतरेय ब्राह्मण के भी पढ़ने वाले हैं, तुङ्गभद्रा, कृष्णा और गोदावरी (नासिक आदि महाराष्ट्र देशों) वा सह्याद्रि से लेकर आन्ध्र देश पर्यन्त रहते थे। यह बात अभी तक ठीक उतर रही है। प्राचीन ग्रन्थों की खोज करते हुए हम ने देखा है कि आज भी इन्हीं देशों में इस शाखा के पढ़ने वाले सहस्रों की संख्या में मिलते हैं।

---

१ ऋग्वेद के ब्राह्मण पृ० ४८।

२ शतपथ मा० ४।६।१।६॥

२—कौ शी त कि ब्रा ह्म ण[1]

ग्र न्थ प रि मा ण—कौशीतकि ब्राह्मण में कुल तीस अध्याय हैं।

वि शे ष ता यें—लिण्डनर के संस्करण के अन्त में ऋषि नामों की सूची देखने से एक साधारण पुरुष को भी पता लग सकेगा, कि कौशीतकि, कौशीतक और पैङ्ग्य का नाम अथवा मत इस ब्राह्मण में बहुधा मिलता है। २५।१॥ में **पुनर्मृत्यु** शब्द मिलता है। यह शब्द ब्राह्मण काल में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का स्पष्ट द्योतक है।

आगे चल कर हम बतावेंगे कि समुपलब्ध समस्त ब्राह्मणों का सङ्कलन लगभग समकाल में हुआ था। इस लिए एक स्थान में किसी सिद्धान्त के मिल जाने से, उस काल में उस सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार मानना ही पड़ेगा।

सं क ल न—आक्सफोर्ड, बोडलियन पुस्तकालय[2] में इस ब्राह्मण के हस्तलेखों के अन्त में यह पाठ है—

कौषीतकिमतानुसारी शाङ्खायनब्राह्मणम्।

पूना के प्रसिद्ध विद्वान् पं० श्रीधर शास्त्री ने सन् १९२२ में आनन्दाश्रम में शाङ्खायनारण्यक छपवाया था। उस की प्रस्तावना पृ० १–२ पर अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने भी यही निश्चित किया है कि आरण्यकभाग का नाम शाङ्खायनारण्यक ही है।

चरणव्यूह द्वितीय कण्डिका की महिदासकृत टीका में महार्णव से कुछ श्लोक उद्धृत किए गए हैं। उन में से एक श्लोक निम्नलिखित है—

उत्तरे गुर्जरे देशे वेदो बह्वृच ईरितः।
कौषीतकिब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता॥

इस श्लोक के अनुसार शाङ्खायनी शाखा के ब्राह्मण का नाम कौषीतकि कहा गया है।

आचार्य शङ्करस्वामी वेदान्त सूत्र १।१।२८॥ और ३।३।१०॥ पर कौषीतकिब्राह्मण नाम स्वीकार करते हैं।

ऐसी अवस्था में जब कि ग्रन्थ का नामनिर्धारण करना कठिन है, हम नहीं कह सकते कि इस ब्राह्मण का वास्तविक प्रवचनकर्ता कौन है। तो भी कौषीतकि अथवा शांखायन में से कोई एक हो सकता है।

---

१ क—**कौषीतकि ब्राह्मणम्**—सम्पादक—बी० लिण्डनर, जेना. सन् १८८७।

ख—**शाङ्खायन ब्राह्मणम्**—सम्पादक—गुलाबराय वजेशंकर आनन्दाश्रम पूना सन् १९११।

२ सूचीपत्र २।४॥

शाङ्खायन आरण्यक १५।१॥ के वंश से पता लगता है, कि उद्दालक से कहोल कौषीतकि ने विद्या पढ़ी, और कहोल कौषीतकि ने गुणाख्य शाङ्खायन से। शाङ्खायन ही इस विद्या का प्रसिद्ध अन्तिम आचार्य है। अतः कौषीतकि वा शाङ्खायन में से ही किसी ने इस ब्राह्मण का प्रवचन किया होगा।

पूर्वोद्धृत पाणिनीय सूत्र ५। १। ६२॥ से यह भी ज्ञात होता है कि पाणिनि को इस ब्राह्मण का भी पता था।

कौषीतकि ब्राह्मण के प्रचार के देश

गत पृष्ठ पर जो महार्णव का श्लोक उद्धृत किया गया है, तदनुसार उत्तर गुर्जर देश में ऋग्वेदियों की शाङ्खायन शाखा का यह ब्राह्मण प्रचलित था। आज भी इस ब्राह्मण के पुरातन हस्तलेख इसी देश से मिलते हैं।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण

३—शतपथ ब्राह्मण (माध्यन्दिन)[1]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में कुल चौदह काण्ड हैं। जैसा नाम से ही प्रकट है, अध्यायों की संख्या १०० है। वेबर[2] के मतानुसार इस शतपथ में १०० अध्याय (अथवा ६८ प्रपाठक), ४३८ ब्राह्मण, और ७६२४ कण्डिकायें हैं। एगलिङ्ग[3] का मत है कि—'कुछ काण्ड नवीन हैं। प्रथम तो **बारहवां काण्ड मध्यम** कहाता है। इस से प्रतीत होता है कि १०—१४ काण्ड (अथवा कदाचित् ११—१३ काण्ड) ग्रन्थरूप में कभी पृथक् विद्यमान थे। इस के अतिरिक्त पाणिनि ४।२।६०॥ पर पातञ्जल महाभाष्य में एक कारिका है—

अनुसूर्लक्ष्यलक्षणे सर्वसादेर्द्विगोश्च लः।
इकन्पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन्पथः॥

'इस में शतपथ और षष्टिपथ का कथन मिलता है। अब यह आश्चर्य की बात है कि इस शतपथ के प्रथम नौ काण्डों में ६० ही अध्याय हैं। वेबर[4] ने यह सुझाया था कि सम्भवतः प्रथम नौ काण्ड ही कभी षष्टिपथ माने जाते थे।'

---

१ **क—शतपथ ब्राह्मणम्**—माध्यन्दिनीयम्। सम्पादक ए० वेबर, पुनरावृत्ति लाइपज़िग। सन् १९२४।

ख—शतपथ ब्राह्मणम्—माध्यन्दिनीयम्। अजमेर संवत् १९५९।

ग—शतपथ ब्राह्मणम्—सायणभाष्यसहितम्। काण्ड १-३,५-७,९ सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी। सन् १९०३-१९११ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता। भाग १—७।

२ संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ११७।

३ शतपथ ब्राह्मणानुवाद, भाग प्रथम, भूमिका, पृ० २९।

४ संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ११

इस के विपरीत कालेण्ड[1] का मत है कि—'माध्यन्दिन शतपथ के प्रथम ६ काण्ड, काण्व के प्रथम सात काण्डों से मिलते हैं। इन काण्वीय सात काण्डों में ४० अध्याय हैं। अतः शेष वाजसनेय ब्रा० ६० अध्याय का ही होगा। यदि यह सत्य हो तो हमें मानना पड़ेगा कि पतञ्जलि के काल में काण्व ब्रा० के १०० अध्याय ही थे, १०४ नहीं। पर षष्टिपथ शब्द का यह व्याख्यान कल्पना मात्र ही है।'

शतपथ ब्रा० का परिमाण महाभारतानुसार

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३२३ (कुम्भघोण सं०) में कहा है—

ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम्।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेण ह॥ १६॥
सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप॥ २२॥
कर्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया।

अर्थात् याज्ञवल्क्य ने परिशेष, संग्रह और रहस्ययुक्त संपूर्ण शतपथ बनाया। और यह शतपथ अपूर्व बनाया गया है।

अभी कहा गया है कि मा० शतपथ के प्रथम नौ काण्डों में ६० अध्याय हैं। **दशम** काण्ड **अग्निरहस्य** कहाता है। **ग्यारहवां** काण्ड **अष्टाध्यायी** कहाता है। इस में आठ अध्याय हैं। इस में पहले कहे हुए विषयों का **संग्रह** मात्र है। मा० शतपथ के १२–१३ और १४ काण्ड महाभारत के श्लोक में **परिशेष** कहे गये हैं।

शतपथ के शाण्डिल्य काण्ड

मा० शतपथ के चार (६–९) काण्डों में **शाण्डिल्य** का नाम बहुधा आता है। इन अध्यायों में याज्ञवल्क्य का नाम आता ही नहीं। इन से पहले और पिछले अध्यायों में याज्ञवल्क्य का ही मत प्रायः मिलता है। इस से वेबर[2], एगलिङ्ग[3] आदि परिणाम निकालते हैं कि ये काण्ड भिन्न व्यक्ति प्रोक्त हो सकते हैं।

इन काण्डों के साथ ही दशम काण्ड में भी यही विशेषता पाई जाती है। पुराने आचार्यों को लगभग ऐसी बात भले प्रकार विदित थी। शङ्कर वेदान्तसूत्र ३।३।१९॥ के भाष्यारम्भ में लिखता है—

---

१ काण्व शतपथ ब्रा०, भूमिका पृ० ५।
२ संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० १३१, १३२।
३ शतपथानुवाद प्रथम भाग, भूमिका पृ० ३१।

वाजसनेयिशाखायामग्निरहस्ये शाण्डिल्यनामाङ्किता विद्या विज्ञाता ।

इस काण्ड के अन्त में एक वंश भी है । उस में शाण्डिल्य का नाम आता है ।

स ङ्क ल न — पूर्वोक्त सब बातों को दृष्टि में रख कर हमारा यही मत है कि अन्य ब्राह्मणों के समान शतपथ का अधिकांश भी बहुत पुराना है । उस के कुछ भाग शाण्डिल्य प्रोक्त भी माने जा सकते हैं । पर समग्र ब्रा० का अन्तिम सङ्कलन याज्ञवल्क्य ने ही किया है, इस के मानने में कोई सन्देह नहीं । शतपथ के अन्त में कहा है—

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते ।

अर्थात् आदित्य प्रदत्त से शुक्ल यजुः वाजसनेय याज्ञवल्क्य के प्रोक्त हैं । महाभारतादि से भी यही ज्ञात होता है ।

वि शे ष ता यें—जो विद्यार्थी ऋग्वेद पढ़ लेता है, उसके लिये अन्य वेद पढ़ने सरल हो जाते हैं । वह अनायास ही दूसरे वेदों को जान लेता है । इसी प्रकार जो शतपथ ब्रा० पढ़ लेता है, वह याज्ञिक क्रिया का सर्वश्रेष्ठ पण्डित बन जाता है । अन्य सब ब्राह्मणों को वह स्वल्प काल में ही स्वायत्त कर लेता है । इस शतपथ में वेदार्थ की कुञ्जी है, वैदिक विषयों का भरपूर ज्ञान है, वैदिक ऐतिह्य का प्रामाणिक कथन है । महाभारत के पूर्वोक्त प्रमाण में याज्ञवल्क्य का गर्व अनुचित नहीं । उस का बनाया हुआ ब्राह्मण वस्तुतः अपूर्व है ।

मा० शतपथ ११।५।१।१०॥ में कहा है—

तदेतदुक्तप्रत्युक्तं पञ्चदशर्चं बह्वृचाः प्राहुः ।

अर्थात् पुरूरवा और उर्वशी के (आलङ्कारिक) संवाद का यह सूक्त पन्द्रह ऋचा का है, ऐसा ऋग्वेदीय कहते हैं । परन्तु ऋग्वेद १० । ९५॥ में जिस के कुछ मन्त्र यहां उद्धृत हैं अठारह ऋचा हैं । शतपथ का संकेत किस ऋग्वेदीय शाखा की ओर है, यह ज्ञात नहीं ।

शतपथ ११।५।६।९॥ में लिखा है—**अति ह वै पुनर्मृत्युं मुच्यते ।** अर्थात् वह वार२ के मरण से मुक्त हो जाता है । और भी लिखा है—

किं तदग्नौ क्रियते येन यजमानः पुनर्मृत्युमपजयति ।

अर्थात् अग्नि में वह क्या किया जाता है, जिस से यजमान वार वार की मौत को जीत लेता है । इस से स्पष्ट होता है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त ब्राह्मणग्रन्थों में सर्वत्र माननीय था ।

तेरहवें काण्ड में राक्षसराज **कुबेर वैश्रवण** का उल्लेख है ।[१] जहां प्रथम नौ काण्डों में किसी विषय के पूर्व व्याख्यात होने पर या मन्त्रवत् स्पष्ट होने पर, अथवा आगे व्याख्यात किये जाने पर क्रमशः, **तस्योक्तो बन्धुः** ।[२] **सोऽसावेव बन्धुः** ।[३] **यथैव यजुस्तथा बन्धुः** ।[४] **उपरि तस्य बन्धुः** ।[५] आदि कहा गया है ।[६] वहां इस काण्ड में **तस्योक्तं ब्राह्मणम्** ।[७] आदि कहा गया है । इस प्रयोगभेद से पहले नौ काण्डों के प्राचीन होने में कई लोग अनुमान करते हैं । इन नौ काण्डों में याज्ञवल्क्य और उस के साथियों का उल्लेख वैसा ही मिलता है, जैसा अन्तिम चार काण्डों में । इस लिए इतना तो माना जा सकता है कि दूसरे ब्राह्मणों के समान ही शतपथ की भी कुछ सामग्री पर्याप्त पुरानी है, पर सारे ब्राह्मण का पुनः संस्कार और प्रवचन तो याज्ञवल्क्य ने ही किया था । शतपथ में अनेक ऋषियों और पुराने राजाओं का वर्णन है । देखो १३।५।४॥ भारत के कई साम्राज्यों के नाम भी इस में पाये जाते हैं ।

वाजसनेय माध्यन्दिन शतपथ के प्रचार के देश

चरणव्यूह टीका में महार्णव के निम्नलिखित श्लोक मिलते हैं—

अङ्गवङ्गकलिङ्गश्च कानीनो गुर्जरस्तथा ।
वाजसनेयी शाखा च माध्यन्दिनी प्रतिष्ठिता ॥

अर्थात् अङ्ग, बंगाल, उड़ीसा, कानीन और गुजरात में वाजसनेय माध्यन्दिन शाखा प्रचलित थी । इस के साथ ही यह शाखा पञ्जाब और संयुक्त प्रान्त में भी सर्वत्र पढ़ी जाती है । उज्जैन के बड़े २ याजुष विद्वान् **हरिस्वामी, उव्वट** आदिकों की यही शाखा थी ।

४—काण्व शतपथ ब्राह्मण[८]

ग्रन्थ परिमाण—कालेण्ड[९] के मतानुसार इस शतपथ में १०४ अध्याय,

---

१ श० १३।४।३।२०॥
२ श० ६। ४। २। ७॥७। १। १। ४३॥
६ । ४ । ३ । ७ ॥
३ श० ४।१।२।२३॥
४ श० ६।४।२।४॥
५ श० ७।३।२।१३॥
६ तुलना करो **एतावानु साम्नबन्धुः** ।
जैमिनीय ब्रा० १।१२३॥
७ १३।४।१।५॥
८ डाक्टर कालेण्ड द्वारा सम्पादित भाग १, पञ्जाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर सन् १९२६ ।
९ शतपथ भूमिका पृ० ६ ।

४४६ ब्राह्मण और ५८६५ कण्डिकायें हैं। समग्र ब्रा० में १७ काण्ड हैं।

वि शे ष ता यें—काण्ड विभाग वा वाक्यरचना के स्वल्प भेद को छोड़ कर माध्यन्दिन वा काण्व शतपथ में बहुत कम अन्तर है। इस लिए इस के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है।

५—कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण[1]

ग्र न्थ प रि मा ण—तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन अष्टक हैं। इन तीन अष्टकों में २८ प्रपाठक हैं। मैसूर संस्करण के अनुसार अनुवाकों की संख्या प्रथमाष्टक में ७८, दूसरे में ९६ और तीसरे में १७९ हैं। कुल मिला कर तै० ब्रा० में ३५३ अनुवाक हैं।

वि शे ष ता यें—तैत्तिरीय ब्राह्मण तैत्तिरीय संहिता का परिशिष्ट मात्र है। जो विषय संहितास्थ ब्राह्मण में अपूर्ण छोड़े गये हैं, उन्हीं की पूर्त्ति करना इस का उद्देश है। इस में मन्त्रों की बहुलता है। ये मन्त्र सारे ब्राह्मण में आगे पीछे मिश्रित हैं। इसी ब्राह्मण में **यम और नचिकेता** की कथा (३।१०—१२॥) का सूक्ष्म रूप विद्यमान है।[2]

स ङ्क ल न—जैसा नाम से प्रकट है, इस ब्राह्मण का सङ्कलन वैशंपायन-शिष्य तित्तिरि ने किया था। तैत्तिरीयों के ब्राह्मण में काठक भाग ३।१०—१२॥ खटकता है। पर है यह भाग भी अति प्राचीन काल से इसी ब्राह्मण में, क्योंकि काण्डानुक्रम में यही लिखा है।[2]

भट्ट भास्कर इस काठक-भाग को तित्तिरि-प्रोक्त नहीं समझता। वह इस की व्याख्या के आरम्भ में लिखता है—

एवमश्वमेधान्तानि तित्तिरिप्रोक्तानि काण्डानि व्याख्यातानि। अथ काठकाग्निकाण्डान्यष्टौ।

---

१ क—**तैत्तिरीयब्राह्मणम्**-सायणभाष्य-सहितम्। सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र। एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता, भाग १—३ सन् १८५९—१८९०।

ख—**तैत्तिरीयब्राह्मणम्**-सायणभाष्य-सहितम्। सम्पादक—नारायण शास्त्री। भाग १-३। आनन्दाश्रम पूना। सन् १८९८।

ग—**तैत्तिरीयब्राह्मणम्**—भट्टभास्कर भाष्ययुतम्। सम्पादक—महादेव शास्त्री तथा श्रीनिवासाचार्य। भाग १-४। सन् १९०८—१९२१। मैसूर

२ काण्डानुक्रम, प्रथमाध्याय का अन्त।

पुरुषमेध का वर्णन यहीं पाया जाता है।

तैत्तिरीयों के प्रचार के देश।

चरणव्यूह-टीकाकारोद्धृत महार्णव का यह श्लोक है—

आन्ध्रादि दक्षिणाग्नेयी गोदा सागर आवधि।
यजुर्वेदस्तु तैत्तिर्य आपस्तम्बी प्रतिष्ठिता॥

अर्थात् आन्ध्र आदि देश, नर्मदा की दक्षिण तथा आग्नेयी दिशा, गोदावरी के तीरवर्ती देशों में से समुद्र तक सब देशों में तैत्तिरीय शाखा का प्रचार है। यह बात अब तक भी ठीक उतरती है। बर्नल दाक्षिणात्य जनश्रुति लिखता हैं कि—"दक्षिण की घरेलु बिल्लियां भी तैत्तिरीय शाखा जानती हैं।"

सामवेदीय ब्राह्मण

६—ताण्ड्य ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में २५ प्रपाठक और ३४७ खण्ड हैं। सायण अपने भाष्य में, प्रपाठक के स्थान में अध्याय शब्द का प्रयोग करता है। मूल ग्रन्थ के हस्तलेखों में प्रपाठक शब्द ही सर्वत्र पाया जाता है।

विशेषतायें—ताण्ड्य ब्राह्मण को ही **पञ्चविंश, प्रौढ** अथवा **महा** ब्राह्मण कहते हैं। इस ब्राह्मण में सोमयागों का ही वर्णन है। इन यागों के साथ जिन साममन्त्रों का सम्बन्ध है, वे सब यहां उल्लिखित हैं। इस ब्राह्मण में अनेक मन्त्रद्रष्टा वा यज्ञ-क्रिया-द्रष्टा ऋषियों के नाम आते हैं।

आर्षानुक्रमणी वा सर्वानुक्रमणियों के बनाने वाले आचार्यों ने इस ब्राह्मण से पर्याप्त सहायता ली है। यदि अगले स्थलों का सायणभाष्य ठीक है, तो इस ब्राह्मण में कई शाखाओं का कथन है। यथा—

भाल्लवि २।२।४॥ **त्रिखर्व्व** २।८।३॥ **करद्विष** २।१५।४॥ ३।६।४॥ **भरतदेश** में **सौदन्तजाति** का वर्णन इसी ब्राह्मण में है।[2] **कौषीतकियों** के यज्ञ की निन्दा भी यहां मिलती है।[3]

---

१ **ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्**—सायणभाष्य-सहितम। सम्पादक आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७०।

२ तां० १४।३।१३॥

३ तां० १७।४।३॥

अनेक यज्ञ **सरस्वती** और **दृषद्वती** के तटों पर होते लिखे गये है ।[1] इस ब्राह्मण में **व्रात्यों** को आर्य बनाने का विस्तृत वर्णन हैं । **व्रात्य,** वे पतित थे, जो पतित सावित्रीक कहे जाते थे । वे व्रात्य निम्नलिखित प्रकार के कहे गये हैं ।

'जो ब्रह्मचर्य धारण नहीं करते । कृषि अथवा वाणिज्य नहीं करते ।[2]

'ब्राह्मणों के खाने योग्य अन्न खाते हैं । अदण्ड्य को मारते हुए विचरते हैं । दीक्षित न होकर दीक्षित-सदृश वाणी बोलते हैं ।[3]

'वे लाल किनारे वाली पगड़ी आदि पहनते हैं ।[4]

भाषिकसूत्र से पता चलता है कि कभी ताण्ड्यादि सामब्राह्मण सस्वर थे । उसमें लिखा है—

शतपथवत्ताण्डिभाल्लविनां ब्राह्मणस्वरः । ३ । २५ ॥

अर्थात् शतपथ के समान ही ताण्ड्य और भाल्लवियों का ब्राह्मण स्वर था । ऐसा ही नारद शिक्षा में लिखा है—

द्वितीयप्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ ।
तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम् ॥ १ । १३ ॥

इससे यही सिद्ध होता है कि कभी ताण्ड्य आदि ब्राह्मण स्वरसहित पढ़े जाते थे ।

ताण्ड्य २५ । १० । १७ ॥ में **पर आह्लार** (आट्णार)[5] **कोसलराज** का वर्णन है । २५ । १० । १७ ॥ में **वैदेहराज, नमी साप्य** का वर्णन है ।

संकलन—सामविधान ब्राह्मण २।९३॥ के अनुसार **ताण्डि** नाम का एक आचार्य हुआ है । शतपथ ६। १। २। २५॥ में **अथ ह स्माह ताण्ड्यः** कहा है । अर्थात् ताण्ड्य बोला । इस **ताण्डि** आचार्य ने ताण्डय ब्राह्मण का प्रवचन किया था ।

ताण्ड्य ब्राह्मण के प्रचार के देश ।

पूर्वोक्त महार्णव में लिखा है—

माध्यन्दिनी शाङ्खायनी कौथुमी शौनकी तथा ।
नर्मदोत्तरभागे च यज्ञकन्या विभागिनः ॥

अर्थात् यह ब्राह्मण जिसका सम्बन्धविशेष **कौथुम** शाखा से है, गुजरात में प्रचलित था । यही अभिप्राय चरणव्यूह के टीकाकार का है । वह लिखता है—

---

१ तां० २५ । १० । १७ ॥
२ तां० १७ । १ । २ ॥
३ तां० १७ । १ । ९ ॥
४ तां० १७ । १ । १४, १५ ॥
५ तुलना करो श० १३।५।४।४ ॥ **तेन ह पर आट्णार ईजे कौसल्यो राजा ।**

गुर्जरदेशे कौथुमी प्रसिद्धा। अर्थात् ताण्ड्य ब्राह्मण वालों से सम्बन्ध रखने वाली कौथुमी शाखा गुजरात में प्रसिद्ध है। यह बात अभी तक सत्य उतर रही है।

७—षड्विंश ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण में पांच प्रपाठक हैं। सायण अपने भाष्य में प्रपाठक संज्ञा न लिख कर अध्याय ही लिखता है। सायण स्वीकृत मूल में एक और भी भेद है। तीसरे प्रपाठक के वह दो अध्याय बनाता है। इस प्रकार सायणानुसार इस ब्राह्मण में छः अध्याय हैं। पांचवें प्रपाठक को **अद्भुत ब्राह्मण** भी कहते हैं। कई विद्वानों का मत है कि यह प्रक्षिप्त है। यदि यह बात सत्य प्रमाणित हो जाय तो सायण का विभाग ही ठीक होगा। प्रपाठकों का विभाग खंडों में है। पहले प्रपाठक में ७, दूसरे में १०, तीसरे में १२, चौथे में ७, और पांचवें में १२ खंड हैं। इस प्रकार कुल मिला कर सारे ब्राह्मण में ४८ खण्ड हैं। पांचवें प्रपाठक के अन्तिम दो खण्डों पर सायण ने भाष्य नहीं किया। वह दशम खण्ड पर ही ब्राह्मण की समाप्ति मानता है। उस के अनुसार सारे खण्ड ४६ हैं। इस भेद से भी ज्ञात होता है कि अन्तिम प्रपाठक में कुछ गड़बड़ अवश्य हो चुकी है।

विशेषतायें—जैसा षड्विंश नाम से ही प्रतीत होता है, यह ब्राह्मण पञ्चविंश ब्रा० का भागमात्र है। शतपथ ३।३।४।१७—१९॥ में एक सुब्रह्मण्या ऋचा है। इस का व्याख्यान षड्विंश १।१।८॥ से १।२॥ के अन्त तक मिलता है।[2] यज्ञ के समय ऋत्विजों का वेष कैसा होता था, इसके सम्बन्ध में इस ब्राह्मण में कहा है—

लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति[3] ३।८।२२॥

---

१ क—**षड्विंशब्राह्मणम्**—सायणभाष्यसहितम्। सम्पादक जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता। सन् १८८१

ख—**षड्विंशब्राह्मणम्**—विज्ञापनभाष्यसहितम्। सम्पादक एच. एफ. ईलसिंह लाईडन। सन् १६०८।

ग—**षड्विंशब्राह्मणम्**—सायणभाष्यसहितम्। प्रथमः प्रपाठकः। सम्पादक कुर्ट क्लेम्म गटर्स्लोह। सन् १८९४।

२ इस प्रसंग में से शङ्कर भी षड्विंश ब्राह्मण १।१।१५॥ का एक प्रमाण उद्धृत करता हुआ लिखता है—

तथा हि श्रूयते सुब्रह्मण्यार्थवादे—।

३ महाभाष्य १।१।२७॥ २।२।२४॥ में यह पाठ है—**लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति**। यह षड्विंश के पाठ का ही संक्षेप प्रतीत होता है।

अर्थात् लाल पगड़ियों वाले और लाल कपड़ों वाले (लाल किनारे की धोतियों वाले) निवीत ऋत्विज होते हैं।

सायं प्रातः सन्ध्या का वर्णन भी इसी ब्राह्मण में प्रथम वार मिलता है।

तस्माद्ब्राह्मणो ऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते। ४।५।४॥

'इस लिए ईश्वरोपासक दिन और रात की सन्धि-वेला में सन्ध्या को करता है।'

युगों के प्राचीन नाम प्रथम वार इसी ब्राह्मण में मिलते हैं—

पुष्ये चानुमतिर्ज्ञेया सिनीवाली तु द्वापरे।
खार्वायां तु भवेद्राका कृतपूर्वे कुहूर्भवेत् ॥ ४।६।५॥

'पुष्य=कलियुग में अनुमति श्रेष्ठा होती है। द्वापर में सिनीवाली। खार्वा=त्रेता में राका होती है। और कृतयुग में कुहू होती है।'

अन्तिम प्रपाठक अर्थात् अद्भुत ब्राह्मण में दुःखों, रोगों आदि की शान्ति के उपाय कहे गये हैं।

स ङ्क ल न—षड्विंश तथा सामवेद की प्रधान शाखा कौथुमी से सम्बन्ध रखने वाले अगले छः ब्राह्मण भी ताण्डि अथवा उसी के निकटवर्ती शिष्यों के प्रवचन किए हुए हैं।

८—म न्त्र ब्रा ह्म ण[1]

ग्र न्थ प रि मा ण—इस ब्राह्मण में दो प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक में आठ २ खण्ड हैं।

वि शे ष ता यें—इस ब्राह्मण में भिन्न २ वेदों से लिए गए मन्त्रों का संग्रह-मात्र है। कुछ मन्त्र अन्य ब्राह्मणों से ही लिए गए हैं। यही मन्त्र गोभिल गृह्य सूत्र में भिन्न २ संस्कारों में विनियुक्त हुए हैं। यद्यपि कौथुम शाखा के सब ब्राह्मण छान्दोग्य ब्राह्मण के सामान्य नाम से पुकारे जाते हैं, पर इस ब्राह्मण को विशिष्टरूप से छान्दोग्य ब्रा० कहते हैं।

सत्यव्रत सामश्रमी[2] आदि पण्डितों का मत है कि—

---

१ क—**मन्त्रब्राह्मणम्**—सम्पादक—सत्यव्रत सामश्रमी। संवत् १९४७। कलकत्ता।

ख—**मन्त्रब्राह्मणम्**—प्रथमः प्रपाठकः। सम्पादक—हाईन्रिश स्टोनर सन् १९०१।

२ मन्त्रब्राह्मण भूमिका।

पञ्चविंश के	२५ प्रपाठक
षड्विंश के	५ प्रपाठक
मन्त्रब्राह्मण के	२ प्रपाठक
छान्दोग्य उप० के	८ प्रपाठक
	४०

ये सब मिला कर कभी ४० प्रपाठक का एक ही ताण्ड्य या छान्दोग्य ब्राह्मण था। आचार्य शङ्कर स्वामी के वेदान्तसूत्र ३ । ३ । २५॥ ३ । ३। २६॥ ३। ३। ३६॥ के भाष्य में क्रमशः इस प्रकार लिखा है—

ताण्डिनां···**(मन्त्रसमाम्नायः)—देव सवितः**···मन्त्र ब्रा० १।१।१॥
अस्ति ताण्डिनां श्रुतिः—अश्व इव रोमाणि·· छा० उप० ८।१३।१॥
ताण्डिनामुपनिषदि—स आत्मा तत्त्वमसि···छा० उप० ६।८।७ ॥

इस से प्रकट होता है कि शङ्कर स्वामी भी इन दोनों ग्रन्थों को ताण्ड्य सम्बन्धी ही समझता था।

९—दैवत ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—यह ब्राह्मण बहुत छोटा सा है। इस में तीन खण्ड हैं। पहले खंड में २६, दूसरे में ११, और तीसरे में २५ कण्डिकायें हैं । कुल मिला कर कण्डिका-संख्या ६२ है।

विशेषतायें—इस ब्राह्मण में छन्दों का वर्णनविशेष है । छन्द नामों के निर्वचन भी यहीं मिलते हैं। निरुक्त ७।१२, १३॥ में यास्क ने सम्भवतः यहीं से कुछ निर्वचन लिए हैं।

आक्सफोर्ड के सूचीपत्र पृ० ३८३b पर एक हस्तलिखित ग्रन्थ का वर्णन है। इस की संख्या ४६६ है।

इस का नाम **सामगानां छन्दः** अथवा **छन्दोविजिन्ति (विजिनि ?)** है। छन्दोविजिनि नाम पाणिनीय गणपाठ ४।३।७३॥ में मिलता है। इस हस्तलेख के आरम्भ में यह श्लोक आया है—

ब्राह्मणात्ताण्डिनश्चैव पिङ्गलाच्च महात्मनः।
निदानादुक्थशास्त्राच्च छन्दसां ज्ञानमुद्धृतम्॥

---

१ **दैवतब्राह्मणम्**—जीवानन्द विद्या सागर, कलकत्ता। सन् १८८१।

इस श्लोक में पञ्चविंश और देवत ब्राह्मण का ही अभिप्राय ताण्डियों के ब्राह्मण से लिया गया प्रतीत होता है।

इस से प्रकट है कि छन्दःशास्त्र के कर्ता इन ग्रन्थों से सहायता लेते रहे हैं।

१०—आ र्षे य ब्रा ह्म ण[1]

ग्र न्थ प रि मा ण—इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक हैं। पहले प्रपाठक में २८ खण्ड, दूसरे में २५, और तीसरे में २९ खण्ड हैं। कुल मिला कर सारे ब्राह्मण में ८२ खण्ड हैं।

वि शे ष ता यें—यह सारा ब्राह्मण सामों की आर्षानुक्रमणी समझनी चाहिए। यद्यपि सत्यव्रत सामश्रमी प्रकाशित आर्षेय ब्रा० १।१॥ का पाठ कात्यायन ऋक् सर्वानुक्रमणी १।१॥ में उद्धृत एक पाठ से कुछ भिन्न है, तो भी षड्गुरुशिष्य के अनुसार यह पाठ आर्षेय ब्राह्मण का ही है। यदि षड्गुरुशिष्य की बात सत्य है, तो आर्षेय ब्राह्मण पर्याप्त पुराना है।

११—सा म वि धा न ब्रा ह्म ण[2]

ग्र न्थ प रि मा ण—इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक हैं। पहले प्रपाठक में ८ खण्ड, दूसरे में ८, और तीसरे में ९ खण्ड हैं। कुल मिला कर सारे ब्राह्मण में २५ खण्ड हैं।

वि शे ष ता यें—इस ब्राह्मण में अभिचार आदि कर्मों का बहुत वर्णन है। यदि यह ब्राह्मण वस्तुतः प्राचीन है, तो इस में प्रक्षेप का बाहुल्य मानना पड़ेगा।

१२—सं हि तो प नि ष द् ब्रा ह्म ण[3]

ग्र न्थ प रि मा ण—यह बहुत छोटा सा ब्राह्मण है। सारा एक ही प्रपाठक होता है। इस में कुल ५ खण्ड हैं।

वि शे ष ता यें—इस ब्रा० में सामवेद के आरण्य गान और ग्रामगेयगान

---

१ **आर्षेय ब्राह्मणम्**—सम्पादक ए. सी. बर्नल, मंगलोर। सन् १८७६।

२ क—**सामविधानब्राह्मणम्**—सायण-भाष्य सहितम्। सम्पादक—सत्यव्रत सामश्रमी। कलकत्ता संवत् १९५१।

ख—**सामविधानब्राह्मणम्**—सायण-भाष्यसहितम्। सम्पादक—ए. सी. बर्नल लण्डन। सन् १८७३।

३ **संहितोपनिषद् ब्राह्मणम्**—भाष्य सहितम्। सम्पादक—ए. सी. बर्नल, मंगलोर। सन् १८७७।

का नाम लिया गया है। कुछ पुराने ब्राह्मणवाक्यों और श्लोकादिकों का यह संग्रहमात्र है। निरुक्त २।४॥ के प्रसिद्ध वाक्य **विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम** का मूल इसी ब्राह्मण के तीसरे खण्ड में है। सामवेद के प्रातिशाख्यरूप सूत्र सामतन्त्र और फुल्लसूत्रादि हैं। उन का मूल भी इसी ब्रा० के दूसरे, तीसरे खण्ड में है।

१३—वंश ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—यह भी बहुत छोटा सा ब्राह्मण है। इस में कुल तीन खण्ड हैं।

विशेषतायें—सामवेद के आचार्यों की वंश परम्परा ही इस में दी गई है। जैसे वंश शतपथ और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में मिलते हैं, लगभग उसी प्रकार का यह वंश है।

१४—जैमिनीय ब्राह्मण[2]

ग्रन्थ परिमाण—इस के मुख्य तीन भाग हैं। पहले में ३६० खण्ड, दूसरे में ४३७, और तीसरे में ३८५, कुल मिला कर ११८२ खण्ड हैं। यह खण्ड विभाग कुछ विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। बड़ोदा के सूचीपत्र, भाग प्रथम, पृ० १०५ पर उनके कोशानुसार एक और विभाग दिया गया है। वह निम्नलिखित है—

१—महाब्राह्मण	३६० खण्ड
२—द्वादशाह ब्रा०	३८८ ,,
३—महाव्रत ब्रा०	१५२ ,,
४—एकाह ब्रा०	१५३ ,,
५—अहीन ब्रा०	९९ ,,
६—सत्र ब्रा०	३७ ,,
७—आर्षेय ब्रा०	८४ ,,
८—उपनिषद् ब्रा०	१५४ ,,
	कुल १४२७

इस विभाग में संख्या ७, ८ वाले आर्षेय और उपनिषद् ब्रा० भी सम्मिलित

---

[1] **वंशब्राह्मणम्**—सायणभाष्य सहितम्। सम्पादक—सत्यव्रतसामश्रमी। कलकत्ता। संवत् १९४९।

[2] **जैमिनीयब्राह्मणम्**—सम्पादक पं० वेद व्यास एम० ए० लाहौर। शीघ्र छपेगा।

हैं। इन दोनों के कुल खण्ड २३८ हैं। अर्थात् दोनों संख्याओं में सात का अन्तर है। बड़ोदा के पूर्वोक्त सूचीपत्र के पृ० १३० पर सत्र ब्रा० के अन्त में लिखि हुई खण्ड संख्या दी है। तदनुसार पहले छः ब्राह्मणों में ११६० खण्ड हैं। यह कोई बड़ा अन्तर नहीं है। समुचित सम्पादन होने पर यह भेद उड़ जायगा।

शङ्कर स्वामी ने केनोपनिषद् के पदभाष्य के आरम्भ में लिखा है—

केनेषितमित्याद्योपनिषत्परब्रह्मविषया वक्तव्येति नवमस्याध्यायस्यारम्भः। प्रागेतस्मात्कर्माण्यशेषतः परिसमापितानि। समस्तकर्माश्रयभूतस्य च प्राणस्योपासनान्युक्तानि कर्माङ्गसामविषयाणि च। अनन्तरं च गायत्रसामविषयं दर्शनं वंशान्तमुक्तम्।

अर्थात्—केनेषितं, से आरम्भ होने वाली, परब्रह्म विषय के कहने वाली उपनिषद् कही जानी चाहिए। यह नवम अध्याय का आरम्भ है। इस के पूर्व (आठ) अध्यायों में यज्ञकर्म पूरे कहे गये हैं। प्राणोपासना भी कही गई है। तत्पश्चात् गायत्र साम और वंश कहा गया है।

प्रतीत होता है शङ्कर के कोशों के अनुसार उपनिषत् ब्रा० के वंश के अन्त तक आठ अध्याय ही थे। आठवें में उपनिषद् नहीं मिलाया जाता था। उप० का नवमाध्याय पृथक् था। अब निश्चित है कि शङ्कर के पास ठीक वैसा ही जैमिनीय ब्राह्मण था, जैसा हमारे पास विद्यमान है। इस लेख से मेरे पूर्व लेख[1] का खंडन समझना चाहिए। उस समय तक मेरे पास सारा तलवकार ब्रा० नहीं था।

वि शे ष ता यें—इसी ब्राह्मण का दूसरा नाम **तलवकार ब्राह्मण है।** यह ब्राह्मण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। डाक्टर अर्टेल[2] और डा० कालेण्ड[3] ने इस के कुछ खण्ड छपवाये थे। हस्तलिखित सामग्री के अपर्याप्त होने से वे इस समग्र ग्रन्थ का सम्पादन नहीं कर सके। मैंने इस की ओर बहुत सी सामग्री प्राप्त की है। उसी की सहायता से इस ब्राह्मण का सम्पादन मेरे मित्र पण्डित वेदव्यास एम. ए. कर रहे हैं। उन का सम्पादित ग्रन्थ शीघ्र ही छपेगा।

इस ब्राह्मण के वाक्य, ताण्ड्य, षड्विंश, शतपथ और तै० संहिता के वाक्यों

---

१ जै० उप० ब्राह्मण की भूमिका पृ० १९, २०।

२ जर्नल आफ दि अमेरेकन ओरियण्टल सोसायटी आदि के अङ्कों में।

३ **इस जैमिनीय ब्राह्मण इन आऊसवाहल,** अमस्टर्डम, सन् १९१९।

से बहुधा मिलते हैं। इस में ऐसे मन्त्रों की संख्या पर्याप्त है, जो पहली वार इसी में मिले हैं। मुद्रित वैदिक वाङ्मय में वे इस रूप में नहीं मिलते। इस में बहुत सा विषय ऐसा है, जो दूसरे ताण्ड्य आदि ब्राह्मणों में नहीं पाया जाता। सामवेद के कौथुम ब्राह्मणों के अनुसार इस के जो आठ ब्राह्मण बताये जाते हैं, उन का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

इसी ब्राह्मण में वह उक्ति पाई जाती है, जो सारे संसार की भाषाओं में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।[1] अर्थात्—

मोच्चैरिति होवाच-कर्णिनी वै भूमिरिति। १। १२६॥

अर्थ—ऋषि अपनी पत्नी को कहता है कि ऊंचे मत बोलो। भूमि के भी कान होते हैं।

स ङ्क ल न—इस ब्राह्मण का सङ्कलन कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के शिष्य सुप्रसिद्ध सामवेदाचार्य, **जैमिनि** और उन के शिष्य **तलवकार** का किया हुआ है। जैमिनीय ब्राह्मण के कोशों के आरम्भ और अन्त में प्राय: ये निम्नलिखित श्लोक पाये जाते हैं। ये परम्परागत श्लोक सत्य एतिह्य के दर्शक हैं, इस के मानने में अणुमात्र भी आपत्ति नहीं।

उज्जहारागमाम्भोधेर्यो धर्मामृतमञ्जसा।
न्यायैर्निर्मथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः॥
सामाखिलं सकलवेदगुरोर्मुनीन्द्रा-
द्व्यासादवाप्य भुवि येन सहस्रशाखम्।
व्यक्तं समस्तमपि सुन्दरगीतरागं
तं जैमिनिं तलवकारगुरुं नमामि॥

अर्थ—वेद के समुद्र से धर्मरूपी अमृत जिस ने न्यायों में मन्थन करके निकाला, वह भगवान् जैमिनि प्रसन्न हो।

सारे वेदों के गुरु मुनिश्रेष्ठ व्यास से समस्त सामज्ञान प्राप्त करके जिस ने संसार में सहस्रशाखा का प्रकाश किया, और साम के सब गान निकाले, तलवकार के गुरु उस जैमिनि को मेरा नमस्कार हो।

---

१ देखो अर्टल का लेख, अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी का जर्नल, संख्या २८, सन् १९०७, पृ० ८५–९५।

जैमिनीय ब्राह्मण के प्रचार के देश

चरणव्यूहटीका तृतीय कण्डिका में लिखा है—

कार्णाटके जैमिनी प्रसिद्धा

अर्थात् जैमिनीय शाखा कार्णाटक देश में प्रसिद्ध है । आज कल जितने भी हस्तलेख इस शाखा के मिले हैं, वे सब मालाबार, त्रिवन्दरम आदि के निकट से ही मिले हैं ।

१५—जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण[1]

ग्रन्थ परिमाण—जैसा पहले[2] लिखा गया है, इस ब्रा० में ८४ खण्ड हैं।

विशेषतायें—यह छोटा सा ब्राह्मण तलवकार शाखा की ऋष्यनुक्रमणी समझनी चाहिए । आग्नेय आदि सामपर्वों और ग्रामगेयगान और आरण्यगान के ऋषि इस में दिए हैं । इस का पाठ कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण से पर्याप्त भिन्न है । कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण में जो एक ही मन्त्र के दो वा अधिक ऋषि लिखे हैं, उन के स्थान में यहां प्रायः एक ही नाम मिलता है । इस से ज्ञात होता है कि सम्भवतः कौथुम आर्षेय ब्राह्मणों में बहुत प्रक्षेप अथवा पाठान्तर अथवा रूप-परिवर्तन हो चुका है । पर यह कोई दृढ़ परिणाम नहीं है ।

१६—गोपथ ब्राह्मण[3]

ग्रन्थ परिमाण—इस ब्राह्मण के पूर्व और उत्तर दो भाग हैं । पूर्व भाग में ५ प्रपाठक और उत्तर भाग में ६ प्रपाठक हैं । कुल मिला कर इस ब्राह्मण में **११** प्रपाठक हैं । किसी काल में यह ब्राह्मण बड़ा विस्तृत होगा । **आथर्वण परिशिष्ट** ४६ उपनाम आथर्वण चरणव्यूह ४।५॥ में लिखा है—

तत्र गोपथः शतप्रपाठकं ब्राह्मणमासीत् । तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरं चेति ।

अर्थात् गोपथ कभी १०० प्रपाठक का ब्राह्मण था । अब पूर्व और उत्तर उसी के दो ब्राह्मण अवशिष्ट रह गये हैं ।

---

१ **जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मणम्**-सम्पादक ए. सी. बर्नेल मंगलोर । सन् १८७८ ।

२ पृ० २० ।

३ **क-गोपथ ब्राह्मणम्**-सम्पादक— हरचन्द्र वियाभूषण । कलकत्ता । सन् १८७० ।

ख-गोपथ ब्राह्मणम्-सम्पादक— डाक्टर ड्यूकगस्ट्र, लाईडन । सन् १९१९ ।

वि शे ष ता यें—प्रायः सब ही पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि साम के छोटे २ ब्राह्मणों को छोड़ कर अन्य सब ब्राह्मणों की अपेक्षा यह ब्राह्मण ग्रन्थ बहुत नवीन है। इस के प्रमाण में वे भाषा के भेद का प्रमाण देते हैं। उन का कथन है कि इस की भाषा दूसरे ब्राह्मणों के प्रतिपक्ष में नवीन है। हम आगे चल कर बतावेंगे कि भाषा भेद ही काल भेद का प्रमाण न होना चाहिए। यदि दूसरे प्रमाणों से कुछ और परिणाम निकले तो उसे भी दृष्टिगत रखना चाहिए। इस लिए इस विषय पर आगे विचार होगा।

इस ब्राह्मण पू० ५।७॥ में एक ही स्थान पर बहुत से यज्ञों के नाम लिखे गये हैं। पूर्वभाग के अन्त में बहुत से श्लोक एकत्र मिलते हैं। इन्हीं में २।५५॥ बारह वर्ष प्रतिवेद का ब्रह्मचर्य कहा है।[1] मन्त्र, कल्प और ब्राह्मण का एक ही स्थान में उल्लेख है। पू० १।३२–३३॥ में गायत्री मन्त्र का अनेक प्रकार का व्याख्यान है। दूसरे ब्राह्मणों में अथर्ववेद का छन्द, देवता और लोक या स्थान कहीं नहीं लिखा, परन्तु यहां पू० १।२९॥ में अथर्वों का चन्द्रमा देवता, सारे छन्द ही छन्द और जल स्थान कहा है। **सामवेद** की **खिल श्रुति** भी पू० १।२९॥ में कही है।

पू० २।८॥ में विपाट् नदी के मध्य में बड़ी बड़ी शिलाओं पर वसिष्ठ के आश्रमों का वर्णन है। यदि यह वर्णन किसी आध्यात्मिक तत्त्व को नहीं बताता, तो अवश्य ही यह आधुनिक व्यास कुण्ड और कुल्लु के पास के स्थानों का दर्शन कराता है। पू० २।१०॥ में अनेक प्राचीन साम्राज्यों का कथन किया गया है।

अथर्व १०। १२८। १२॥ आदि का प्रतीक—**यदिन्द्रादो दाशराज्ञ** इति धर कर इसे **इन्द्रगाथा** कहा है।

डयूकगस्ट्र के संस्करण की भूमिका के तुलनात्मक प्रमाण देखने से प्रत्येक पाठक सहसा जान सकता है कि अन्य सब ब्राह्मणों की अपेक्षा गोपथ के पाठ दूसरे ब्राह्मणों से अत्यधिक मिलते हैं। इस से ज्ञात होता है कि यद्यपि सङ्कलन काल में इस का सङ्कलन सब के अन्त में ही हुआ है पर यह ब्रा० बहुत नवीन नहीं है।

निरुक्त ८।२२॥ में निम्नलिखित वाक्य है—

यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां मनसा ध्यायेद् वषट्करिष्यन्।

---

[1] पहले भी ऐसा ही कहा है— **अष्टाचत्वारिंशद्वर्षं सर्ववेदब्रह्मचर्यं तच्चतुर्धा वेदेषु व्युह्य द्वादशवर्षं ब्रह्मचर्यम्।** पू० २।५॥

इस से मिलते जुलते वाक्य ऐतरेय ब्रा० ३।८।१॥ और गोपथ ब्राह्मण २।३।४॥ में मिलते हैं—

तां ध्यायेद् वषट्करिष्यन् ।

तां मनसा ध्यायन् वषट्कुर्यात् ।

तां मनसा ध्यायेद् वषट्करिष्यन् । निरुक्त ।

कीथ ऐतरेय आरण्यक की भूमिका पृ० २५ पर लिखता है—'यास्क के सामने गोपथ का पाठ विद्यमान था।' हमारा मत है कि यास्क ने यह वचन किसी और ही ब्राह्मण से उद्धृत किया है, जो अभी तक विलुप्त है ।

गोपथ ब्राह्मण के प्रचार के देश

पीछे पृ० १५ पर महार्णव का जो श्लोक उद्धृत किया गया है, तदनुसार आथर्वण शौनक शाखा के अध्येता गुजरात देश में पाये जाते थे । आज कल भी जो दो चार बचे खुचे आथर्वण घर रह गये हैं, वे गुजरात में ही मिलते हैं ।

इसी ब्राह्मण (पू० १।२५) में सबसे पहली वार ओङ्कार की तीन मात्राओं का वर्णन करते हुए लिखा है—

या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन

या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन

या सा तृतीया मात्रेशानदेवत्या कपिला वर्णेन

अर्थात् ओङ्कार की पहली मात्रा ब्रह्मा देवता वाली और लालवर्णा है ।

द्वितीया मात्रा विष्णु देवता वाली कृष्णवर्णा है ।

तीसरी मात्रा ईशान देवता वाली कपिलवर्णा है ।

इस से प्रकट है कि ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का एक ही स्थान में उल्लेख इसी ब्राह्मण में पहली वार मिलता है ।

व्याकरण महाभाष्य १।१।३८॥ में उद्धृत किया हुआ प्रसिद्ध श्लोक—

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

इसी ब्राह्मण पू० १ । २६ ॥ में मिलता है ।

यद्यपि गस्ट्र महाशय ने भूरि परिश्रम से इस ब्रा० का सम्पादन किया है, तो भी अभी तक इस में भ्रष्ट पाठों की भरमार है ।

तीसरा अध्याय

अनुपलब्ध परन्तु साहित्य में उद्धृत ब्राह्मणग्रन्थ ।

महाविद्वान्, बहुश्रुत मुनि पतञ्जलि अपने महाभाष्य ४।३।१०१॥ में लिखता है—

ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते ।

अर्थात् ग्राम ग्राम में काठक और कालाप शाखाओं का पठन पाठन होता है। अहो क्या सुन्दर समय था । आर्य सभ्यता के रक्षक ब्राह्मण किस प्रकार वैदिक वाङ्मय की रक्षा करते थे। वही वैदिक वाङ्मय जो इस जाति की रीति नीति का, इस के जीवन का प्राण था, इस के ऐश्वर्य का, इस की उन्नति का, इस के संगठन का आधार था। आज उस वैदिक वाङ्मय की कैसी दीन हीन दशा है । इस के कितने ग्रन्थ-रत्न नष्ट हो गये हैं। कुछ मुसलमानों के अत्याचार ने, कुछ कालक्रम ने, कुछ आधुनिक आर्यों के प्रमाद ने, कुछ ब्राह्मणों के अनार्ष-ग्रन्थाभ्यास ने, इन सब ने ही मिल कर हमारे सहस्रों ग्रन्थों का लोप कर दिया है। किसी काल में ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या सैकड़ों तक पहुंचती थी। यदि वे ब्राह्मण ग्रन्थ विद्यमान रहते, तो आज वेदार्थ में इतना भ्रम न होता, वेदों के स्वच्छ गौरवयुक्त अर्थ संसार में पुनः फैल जाते। उन सैकड़ों ब्राह्मणों में से अब तो इस संस्कृत-ग्रन्थ-राशि में नाम भी कुछ एक के ही मिलते हैं। जिन ब्राह्मणों के नाम अथवा जिन ब्राह्मणों से दिए गए प्रमाण आज तक मुझे मिले हैं, वे नीचे दिए जाते हैं। पाठक इतने से ही जान लेंगे कि संख्या में कभी ये ग्रन्थ कितने अधिक थे।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण

(१) चरक ब्राह्मण—इस ब्रा० के प्रमाण विश्वरूपाचार्यकृत बालक्रीडा टीका में मिलते हैं। देखो भाग प्रथम पृ० ४८, ८०। भाग द्वितीय पृ० ८७ पर लिखा है—

तथा अग्निषोमीयब्राह्मणे चरकाणाम्।...

याजुष चरक शाखा का यह प्रधान ब्राह्मण था । इस के **आरण्यक** का एक प्राचीन हस्तलेख (सं० १७५) हमारे पुस्तकालय में है। यह अधिकांश में सप्तप्रपाठकात्मक मैत्र्युपनिषद् से मिलता है।

सायणाचार्य अपने ऋग्वेदभाष्य ८। ६६। १०॥ पर कहता है—

चरकब्राह्मण इतिहास आम्नायते।

तदनन्तर वह इस ब्राह्मण की कई पंक्तियां उद्धृत करता है।

निघण्टु टीकाकार देवराज यज्वा पृ० ६७ पर चरकब्राह्मण का प्रमाण उद्धृत करता है। यह प्रमाण काठक संहिता ३६।७॥ में भी मिलता है। सम्भव है यह प्रमाण काठक संहिता से ही लिया गया हो। चरक शाखा के काठक, मैत्रायणी आदि अवान्तर विभागों के प्रमाण भी बहुधा चरक नाम से ही उद्धृत मिलते हैं।[1] अतः मूल चरक संहिता वा ब्रा० के पाठ जानने में सावधान रहना चाहिए।

शांखायन श्रौत का व्याख्याकार आनर्त पृ० ६६, १५३ पर **चरकश्रौत** को उद्धृत करता है।

(२) श्वेताश्वतर ब्राह्मण—बालक्रीडा टीका भाग १ पृ० ८ पर उद्धृत। श्वेताश्वतरोपनिषद् इसी के आरण्यक का भाग प्रतीत होता है।

(३) काठक ब्राह्मण—तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ अन्तिम भागों अर्थात् अष्टक ३।१०–१२॥ को भी कठ वा काठक ब्राह्मण कहते हैं। यह काठक ब्राह्मण सम्भवतः कभी बृहत् काठक ब्रा० का भाग होता होगा। यह **चरकों** के द्वादश अवान्तर विभागों में से एक है। इस का थोड़ा सा भाग योरुप में विद्यमान है। यूट्रेख्ट हालेण्ड के प्रसिद्ध श्रौतशास्त्र-विद्वान् डाक्टर कालेण्ड ने इस पर लेख लिखा है और इस के कुछ भाग सम्पादन भी किये हैं।[2] इस के आरण्यक का भी कुछ भाग हस्तलिखित रूप में योरुप के कुछ पुस्तकालयों में विद्यमान है। डाक्टर श्रॉडर ने इस पर लेख लिखा था। और उस में इस के कुछ अंश छपवाये भी थे।[3] श्रीनगर कश्मीर में एक ब्राह्मण ने हम से कहा था कि इस का हस्तलेख अब भी मिल सकता है।

एफ० ओ० श्रेडर सम्पादित, "माईनर उपनिषद्स" प्रथम भाग पृ० ३१—४२ तक जो **कठश्रुत्युपनिषत्** छपा है, वह इसी ब्राह्मण का कोई अन्तिम भाग अथवा

---

१ दुर्ग अपनी निरुक्तटीका ३।१६॥ पर **चरकाध्वर्यवः···गृह्णन्ति**। तथा **चारके पुनराध्वर्यवे श्रुतिः**। कह कर मैत्रा० सं० १।३।११॥ और मै० सं० ४।६।३॥ को क्रमशः उद्धृत करता है।

2 "Brāhmana–en Sūtra aanwinsten" in Versl. en Meded. der Kon. Akad. V. Wet., Afd. Lett; Ve R., IVe deel, page 467.

3 "Die Tubinger Katha Hss." in Sitz. Ber der Kais. AK. der Wiss., Wien, Phil. hist. Kl., Band CXXXVII (1898).

खिल प्रतीत होता है। इस उपनिषद् के वचनों को **यतिधर्मसंग्रह** का कर्ता **विश्वेश्वर सरस्वती** आनन्दाश्रम पूना के संस्करण (सन् १९०९) के पृ० २२ पं० २६; पृ० ७६ पं० ९ आदि पर **काठक ब्राह्मण** के नाम से भी उद्धृत करता है।

शुद्धिकौमुदी पृ० २७९ पर काठकब्राह्मण का एक वचन उद्धृत है। यह पाठ संहिता के ब्राह्मण मिश्रित भाग में नहीं मिला। इस लिये अनुमान होता है कि यह वचन मूल काठक ब्राह्मण का ही होगा।

वासिष्ठ धर्मसूत्र १२।२४॥ में लिखा है—

अपि च काठके विज्ञायते। अपि नः……[१]

यही वचन थोड़े से पाठन्तर के साथ महाभाष्य ७।१।१३॥ पर भी उद्धृत है। मुद्रित काठक सं० में यह नहीं मिलता, अतः अवश्य ही ब्राह्मण का पाठ है।

तथा वासिष्ठ धर्मसूत्र ३०।५॥ पर कठ ब्राह्मण की एक लम्बी श्रुति मिलती है।

स्मृति चन्द्रिका, आह्निककाण्ड, पृ० ४४४ पर एक काठक श्रुति उद्धृत है। देखो इसी श्रुति का भ्रष्टपाठ, मनुस्मृति, मेधातिथि भाष्य ५।१६६॥ में।

एक काठक श्रुति गौतमधर्मसूत्र २२।१॥ के मस्करी भाष्य पर मिलती है। यह श्रुति मुद्रित काठक सं० में नहीं है, और यदि मस्करी भूला नहीं, तो अवश्य कठब्राह्मण में होगी।

अपरार्क आनन्दाश्रम संस्करण पृ० १०५९ पर एक काठकश्रुति उद्धृत है॥

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृतग्रन्थमाला में डाक्टर कालेण्ड सम्पादित जो काठकगृह्यसूत्र हम ने छपवाया है, उस में भी कई स्थलों पर कठब्राह्मण के वचन मिलते हैं।

आफरेख्ट, बृहत्सूचीपत्र भाग १ के अनुसार **समयप्रकाश** में **कठ ब्राह्मण** उद्धृत है।

पूना के सूची पत्र में एक भूल

भण्डारकर इन्सटीट्यूट पूना के वैदिक हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्र भाग १ पृ० १५४ पर एक हस्तलेख का विवरण दिया गया है। उसे **तैत्तिरीय ब्राह्मण (काठकम्)** कहा गया है। तैत्तिरीय ब्रा० तो यह हो ही नहीं सकता, क्योंकि

[१] मस्करी इसी वचन को थोड़े से पाठान्तर के साथ गौतमधर्मसूत्र भाष्य ५।१॥ पर उद्धृत करता हुआ लिखता है—**इति वाजसनेयश्रुतिदर्शनात्।**

इस में **स्थानकों** का विभाग है। अधिक से अधिक इसे कोई काठक ब्रा० कह सकता था। है यह वस्तुतः काठक ब्रा० भी नहीं। यह तो काठक संहिता का त्रुटित ग्रन्थ है।

(४) **मैत्रायणी ब्राह्मण**—बौधायन श्रौतसूत्र ३०। ८॥ में उद्धृत। नासिक के वृद्ध से वृद्ध मैत्रायणी-शाखा-अध्येतृ ब्राह्मणों ने हम से कहा था कि उन्हें इस के अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं। उन के कथनानुसार उन की संहिता में ही ब्राह्मण सम्मिलित है। परन्तु पूर्वोक्त बौधायन श्रौत का प्रमाण मुद्रित संहिता में नहीं मिलता। इस लिए ब्राह्मण पृथक् ही रहा होगा। मैत्रायणी उपनिषद् का अस्तित्व भी इस ब्राह्मण का होना बता रहा है। फिर भी पूरा निर्णय होने के लिए मैत्रा० संहिता का पुनः छपना आवश्यक है। बड़ोदा के सूचीपत्र (सन् १९२५) सं० ७६ के टिप्पण में कहा गया है कि उन का मैत्रा० सं० का हस्तलेख मुद्रित मै० सं० से कुछ भिन्न है।

बालक्रीडा, भाग २ पृ० २७ पं० १ पर एक श्रुति उद्धृत है। उस श्रुति को यतिधर्मसंग्रह का कर्ता विश्वेश्वर मैत्रा० श्रुति के नाम से उद्धृत करता है।

सत्याषाढ श्रौतसूत्र का टीकाकार गोपीनाथ पृ० ७९२ पर इस ब्राह्मण को उद्धृत करता है।

(५) **जाबाल ब्राह्मण**—जाबाल श्रुति का एक लम्बा उद्धरण बालक्रीडा भाग २, पृ० ६४, ६५ पर उद्धृत है। यह सम्भवतः ब्राह्मण का पाठ है। बृहज्जाबालोपनिषद् नवीन है, परन्तु जाबाल उपनिषद् का कुछ अंश प्राचीन प्रतीत होता है। जाबालोपनिषद् को शङ्कर वेदान्त सूत्र ३।४।२०॥ पर उद्धृत करता है। शङ्कर ब्रह्मसूत्र ३।३।३७॥ पर **जाबालाः** कह कर एक और प्रमाण लिखता है। जाबाल श्रुति का एक वचन मदनपारिजात पृ० ११२ पर उद्धृत है।

जाबाल श्रुति के उद्धरण गौतमधर्मसूत्र के मस्करी भाष्य के पृ० २८, ६१, ६६, ८५, ८६, २४७ पर मिलते हैं।

इस शाखा का एक गृह्य (जाबालिगृह्य) गौतमधर्म सूत्र के मस्करिभाष्य पृ० २६७, ३८९ पर उद्धृत है।

(६) **खाण्डिकेय ब्राह्मण**—भाषिक सू० ३।२६॥ पर उद्धृत है।

(७) **औखेय ब्राह्मण**—भाषिक सूत्र ३।२६ पर उद्धृत है।

(८) **हारिद्रविक ब्राह्मण**—सायण ऋग्वेदभाष्य ५। ४० । ८ ॥ और निरुक्त १० । ५ ॥ में उद्धृत है। महाभाष्य ४।२।१०४॥ पर भी इस का उल्लेख है ।

(९) **आह्वरक ब्राह्मण**—पञ्जाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरीके हस्तलिखित ग्रन्थ "सम्प्रदाय पद्धति" सं० २६०६ पत्र १७ख पं० ६ पर उद्धृत है। नारदीय शिक्षा का टीकाकार शोभाकर भी इसे उद्धृत करता है। देखो शिक्षासंग्रह काशी संस्करण पृ० ३६७।

दुर्गाचार्य निरुक्तवृत्ति ३।२१॥ पर इसे उद्धृत करता है। देखो आनन्दाश्रम सं० भाग १, पृ० २८६ ॥

तै० प्रातिशाख्य २३।१६॥ में आह्वरकों के स्वर का कथन मिलता है।

(१०) **कंकति ब्राह्मण**—आपस्तम्ब श्रौत १४।२०।४॥ पर उद्धृत है। महाभाष्य ४।२।६६ ॥ कीलहार्न सं० पृ० २८६, पं० १२ में **कांकताः** प्रयोग है। इस से भी **कंकति** शाखा के अस्तित्व का पता लगता है।

(११) **गालव ब्राह्मण**—महाभाष्य १।१।४४॥ कीलहार्न सं० भाग १, पृ० १०५, पर लिखा है—**गालवा एव ह्रस्वान् प्रयुञ्जीरन्**। इस के आगे जो वाक्य मिलते हैं, उन से इस ब्राह्मण के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

सामवेदीय ब्राह्मण

(१२) **भाल्लवि ब्राह्मण**[१]—बृहद्देवता ५ । २३ ॥ ५ । १५६ ॥ भाषिकसूत्र ३। १५ ॥ नारदशिक्षा १। १३ ॥ महाभाष्य ४। २। १०४ ॥ में भाल्लवि ऋषि का मत वा भाल्लवि के ब्राह्मण का नाम कहा है।

कात्यायनकृत उपग्रन्थ सूत्र १। १०॥ पर इस ब्राह्मण का नाम आता है।

द्राह्यायण श्रौतसूत्र ३। ४। २॥ पर भाल्लवि ब्राह्मण उद्धृत है।

शङ्कर वेदान्तसूत्र भाष्य ३। ३। २६॥ पर इसे उद्धृत करता है।

निदानसूत्र ३ । ३॥ ३ । ६॥ ५ । १॥ ७ । ५॥ में भाल्लवि ब्रा० उद्धृत है।

भाल्लवियों के **निदान** ग्रन्थ का एक प्रमाण बोधायन धर्मसूत्र १ । १ । २८ ॥ पर उद्धृत है।

(१३) **शाट्यायन ब्राह्मण**—यह ब्राह्मण बड़ा ही उपयोगी होगा। अनुपलब्ध ब्राह्मणों में से यही सब से अधिक उद्धृत है। प्रसिद्ध विद्वान् अर्टल ने अमैरिकन

---

१ बो० धर्मसूत्र विवरण १ । १ । २७॥ पर गोविन्द स्वामी लिखता है— भाल्लविनः छन्दोगविशेषाः।

ओरियण्टल सोसाइटी के जर्नल, भाग १८ पृ० १५ सन् १८९७ में इस ब्राह्मण के विषय में एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने अनेक स्थलों पर इस ब्राह्मण के प्रमाण बताये हैं। वे हम वहीं से लेकर नीचे देते हैं।

१. शङ्कर वे० सू० ३।३।२५॥
२. ,, ,, ,, ३।३।२६॥
(तस्य पुत्राः...)=३।३।२७॥[1]
=४।१।१६॥
=४।१।१७॥
३. शङ्कर वे० सू० ३।३।२६॥
(औदुम्बराः)
४. आप० श्रौ० सू० ५।२३।३॥
५. ,, ,, ,, १०।१२।१३॥
=का० श्रौ० याज्ञिकदेव ७।५।७॥
६. ,, ,, ,, १०।१२।१४॥
७. ,, ,, भाष्य रुद्रदत्त १४।२३।१४॥
८. आश्वलायन श्रौत सूत्र १।४।१३॥
९. लाट्यायन ,, ,, १।२।२४॥
अग्निस्वामिभाष्यसहित.
९. ,, ,, ,, ४।५।८॥
१०. सायण, ताण्ड्य ब्राह्मण पर ४।२।१०॥
११. ,, ,, ४।३।२॥
१२. ,, ,, ४।५।१४॥
१३. ,, ,, ४।६।२३॥
१४. सायण ऋग्वेद पर १।५१।२३॥
१५. सायण ऋग्वेद पर १।८४।१३॥
= साम भाग १। पृ. ४००॥
सोसाइटी संस्करण= ३। पृ० ५०६॥
१६. सायण ऋग्वेद पर १।१०५।१०॥
१७. ,, ,, ७।३२॥
१८. ,, ,, ७।३३।७॥
१९ *a*. ,, ,, ८।९१।१॥
१९ *b*. ,, ,, ८।९१।३॥
१९ *c*. ,, ,, ८।९१।५॥
१९ *d*. ,, ,, ९।९१।७॥
२०. ,, ,, ९।९५।७॥
= साम पर भाग १।पृ०७१६॥
२१. ,, ऋग्वेद पर ९।५।८३॥
= साम पर भाग ४।पृ० १९॥
२२. ,, ऋग्वेद पर १०।३८।५॥
२३ *a*. ,, ,, १०।५७।१॥
२३ *b*. ,, ,, १०।६०।६॥
२४. ,, ,, १।१०५॥
(मूल का श्लोकबद्ध अनुवाद)
२५. ,, ,, ,, ५।२।१॥

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों पर भी **शाट्यायन ब्राह्मण** उद्धृत है।

२६. उपग्रन्थ सूत्र १।१०॥२।१॥[2]२।८॥
२७. भारद्वाज गृह्य पृ० ८६॥
२८. बौधायन गृह्य २।५।२५॥
२९. ,, ,, २।५।४३॥

---

१ देखो ब्रह्मसूत्र श्रीकण्ठ भाष्य ३।३।२६॥ / २ दो प्रमाण।

३०. वेङ्कटमाधवकृत ऋग्वेदभाष्य[1] १।२३।१६॥ पृ० १४ ॥	३४. ,, १।८४।१३ ॥ पृ० ६७ ॥
	३५. ,, १।१०५ ॥ पृ० १२४ ॥
३१. ,, १।५१ ॥ पृ० ५५ ॥	३६. पुष्पसूत्र ८।८।१८४ ॥
३२. ,, १।५१।१३ ॥ पृ० ५७ ॥	३७. सायण,ताण्ड्य ब्रा० भा० ४।६।८॥
३३. ,, १।५१।१४ ॥ पृ० ५८ ॥	३८. ,, ,, ,, ५।४।१४ ॥

कात्यायन ऋक्सर्वानुक्रमणी ७।३२॥ में भी शाट्यायन ब्रा० उद्धृत है। अभी तक हमारे पास ऋग्वेद का समग्र माधवभाष्य नहीं है। पूर्वोक्त पते प्रथमाष्टक से ही दिये गए हैं।

डाक्टर कालेण्ड ने भी OVER EN UIT HET JAIMINIYA BRAHMANA नाम लेख में शाट्यायन ब्राह्मण के अनेक ग्रन्थों में उद्धृत वचन एकत्र किये हैं। इन में अनुपदसूत्र से कई वचन संगृहीत किये गये हैं। वे सब भी हमारे अनुपलब्ध ब्रा० के बृहत्संग्रह में दे दिये जायेंगे।

शाट्यायन कल्प के प्रमाण बालक्रीडा भाग १, पृ० ३८ ॥ सत्याषाढ श्रौत महादेव व्याख्या ६।५ ॥ पृ० ५३३, गोपीनाथव्या० १०।१० ॥ पृ० ६६६, खादिर गृह्यसूत्र रुद्रस्कन्दव्या० पृ० २५, २६ पर उद्धृत हैं।

(१४) **कालबविब्राह्मण**—आपस्तम्ब श्रौत २०।६।६॥ पर उद्धृत है। उपग्रन्थ सूत्र १।१०॥ पर कालबवी नाम मिलता है। निदान सूत्र ६ ७॥ पर और पुष्पसूत्र ८।८।१८४ ॥ पर भी यह ब्रा० उद्धृत है।

(१५) **रौरुकी ब्राह्मण**—गोभिल गृह्यसूत्र ३।२।५॥ पर उद्धृत है। सायण तांड्य ब्रा० भा० १।४।१ ॥ पर लिखता है—**रौरुकिशाखोक्तानि यजूंषि**। इससे प्रतीत होता है कि यह ब्राह्मण भी अवश्य विद्यमान था।

धन्वी द्राह्यायण श्रौतटीका ४।३।६॥ में लिखता है—

इति मन्त्रशेषो ऽस्माकं रौरिकीणां च समान इत्यर्थः।

द्राह्यायण श्रौत ४।३।१॥ में भी इसका उल्लेख है।

वे ब्राह्मण जिन का शाखा सम्बन्ध हम निश्चित नहीं कर सके

(१६) तुम्बरु ब्राह्मण।

(१७) **आरुणेय ब्राह्मण**—ये १६, और १७ संख्या वाले दोनों ब्राह्मण

१ पृष्ठों के पते हमारे अपने हस्तलिखित ग्रन्थ से दिये गये हैं।

महाभाष्य ४।२।१०४॥ पर उल्लिखित हैं। इस ब्राह्मण का नाम तन्त्रवार्तिक चौखम्बा सं० पृ० १६४ में आता है।

(१८) पैङ्गि ब्राह्मण—इस का ही दूसरा नाम पैङ्ग्य ब्रा० वा पैङ्गायनि ब्रा० है। यह आपस्तम्बश्रौत ५।१८।८॥ ५।२९।४॥ में उद्धृत है।

आचार्य शङ्करस्वामी इसे शारीरिक सूत्र भाष्य १।२।१२॥ १।३।२४॥ ३।३।२६॥ में उद्धृत करते हैं।

सत्याषाढश्रौत ३। ७॥ पृ० ३५६ महादेव व्याख्या, ६। ५॥ पृ० ५३४ मूल, ६। ६॥ पृ० ५३८ महादेव व्या० पर यह ब्राह्मण उद्धृत है।

पैङ्गि कल्प का उल्लेख महाभाष्य ४।२।६६॥ पर है।

पैङ्गि गृह्य गौतम धर्मसूत्र के मस्करीभाष्य के पृ० २२९, २३४ पर उद्धृत है। गृह्यरत्न में भी पैङ्गी गृह्य उद्धृत है।

पैङ्गिरहस्य का जो वचन मदनपारिजात पृ० ३७२ पर उद्धृत है, वह कल्पित प्रतीत होता है।

(१९) सौलभ ब्राह्मण—महाभाष्य ४।२।६६॥ ४।३।१०५॥ पर इसका उल्लेख है।

(२०) शैलाली ब्राह्मण—आपस्तम्ब श्रौत ६।४।७॥ पर यह उद्धृत है।

(२१) पराशर ब्राह्मण—तन्त्रवार्तिक चौखम्बा सं० पृ० ९६४ में इसका नाम मिलता है।

इन के अतिरिक्त दो और शाखा-नाम हैं, जिन के ब्राह्मण सम्भवतः कभी विद्यमान थे।

(२२) माषशरावि ब्रा०—द्राह्यायण श्रौत सूत्र ८।२।३०॥ में उद्धृत है। इस पर धन्वी लिखता है—

माषशराव्यो नाम केचिच्छाखिनः।

(२३) कापेय ब्रा०—सत्याषाढ श्रौतसूत्र १।४॥ पृ० १०२, ९।८॥ पृ० ९८३, ९।८॥ पृ० ९८४॥ में यह शाखा वा ब्राह्मण उद्धृत है।

(२४) अन्वाख्यान ब्राह्मण—अगस्त ११ सन् १९२५ के एक पत्र में डाक्टर कालण्ड ने मुझे लिखा था कि—

I have discovered the most curious fact, that to our Vādhula

sutra belongs a special Brāhmana, called Anvākhyāna. Not only this simple fact but the text itself is of the highest interest The Vādhula sūtra presupposes the Taittiriya Brahmana (or atleast a text nearly identical with it) and the Anvākhyāna contains secondary brāhmanas.

अर्थात्—मुझे इस अत्यन्त अद्भुत बात का पता लगा है कि हमारे वाधूल सूत्र का सम्बन्ध **अन्वाख्यान** नाम के एक ब्राह्मणविशेष से है। यही बात नहीं, प्रत्युत यह ग्रन्थ है भी बहुत रोचक।

वाधूल सूत्र का तैत्तिरीय ब्राह्मण से तो सम्बन्ध है ही, पर अन्वाख्यान भी एक अनुब्राह्मण माना जा सकता है।

इस के पश्चात् सन् १९२६ में डाक्टर कालण्ड ने **एक्टा ओरियण्टेलिया** के चतुर्थ भाग में अन्वाख्यान के ४६ लम्बे उद्धरण अपने अनुवाद सहित प्रकाशित कर दिए हैं।

पीछे पृष्ठ १४ के अन्त में हम लिख चुके हैं कि सायण के अनुसार ताण्ड्य ब्रा० २।८।३॥ २।१५।४॥ और ३।६।४॥ पर **त्रिखर्व** और **करद्विष** शाखाओं का वर्णन है। इन दोनों शाखाओं के भी कोई ब्राह्मण अवश्य होंगे।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती के पुस्तकालय का जो सूचीपत्र बड़ोदा से प्रकाशित हुआ है, उस के प्रथम पृष्ठ पर **बाष्कल ब्राह्मण** और **माण्डूकेय ब्राह्मण** के नाम मिलते हैं।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यत्न करने पर इन ब्राह्मणों में से भी कुछ एक के हस्त-लेख अभी प्राप्त हो सकते हैं।

कुछ और लुप्त ब्राह्मण ग्रन्थ।

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र, बोधायन धर्मसूत्र, वासिष्ठ धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, आदि ग्रन्थों में वाजसनेय और बह्वृच आदि नाम लेकर कई ब्राह्मण वाक्य उद्धृत किये गये हैं। ये ब्राह्मण वाक्य बह्वृचों और वाजसनेयकों के ज्ञात ब्राह्मणों में नहीं मिलते। प्रतीत होता है बह्वृच और वाजसनेय संहिता वालों के भी अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ थे। दोनों शतपथों के अतिरिक्त **जाबाल** ब्राह्मण का उल्लेख हम पहले कर आये हैं। इन तीनों के अतिरिक्त वाजसनेयकों के अवश्य ही और भी ब्राह्मण

ग्रन्थ थे। सम्भव है, उन में से भी कई एक का नाम **शतपथ** हो और किसी का नाम **षष्टिपथ** भी हो।

बोधायन धर्मसूत्र २।६।८॥ में जो ब्राह्मण-प्रमाण दिया गया है, वह वाजसनेयकों के ही किसी लुप्त ब्राह्मण का है, कारण कि वह शतपथ ११।५।६।३॥ से बहुत ही मिलता है। इस ब्राह्मण वाक्य में भी **पुनर्मृत्यु** शब्द से पुनर्जन्म का प्रमाण मिलता है।

इस के अतिरिक्त भी अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं, विशेष कर प्राचीन टीकायें, जिन में बहुत से अज्ञात ब्राह्मणों के वचन पाये जाते हैं। उन में से कई एक तो वैदिक विचारों पर बहुत सा प्रकाश डालते हैं।

यदि अज्ञात ब्राह्मणों के सम्प्राप्त प्रमाण एक स्थल पर एकत्र कर दिए जावें, तो वेदाभ्यासियों का बड़ा उपकार होगा।

चौथा अध्याय

ब्राह्मणग्रन्थों के भाष्यकार

ऐतरेय ब्राह्मण

१—भट्ट गोविन्द स्वामी

(११वीं–१३वीं शताब्दी ईसा) दैव ग्रन्थ की पुरुषकार व्याख्या का कर्ता श्रीकृष्णलीलाशुकमुनि (१३ वीं शताब्दी ईस्वी) १६८ कारिका की व्याख्या में लिखता है—

तथा च बह्वृचब्राह्मणम्—'प्रवल्हिकाः शंसति । प्रवल्हिकाभिर्वै देवा असुरान् प्रवल्ह्याथैनानात्यायन्' इति [ऐ०६।३३॥] व्याकृतं चैतत् गोविन्दस्वामिना—प्रवल्हिकाः प्रहेलिकाः । ······इति ।

यहां पुरुषकार का रचयिता ऐ० ब्राह्मण भाष्यकार गोविन्द स्वामी का स्मरण करता है ।

माधवीय धातुवृत्ति में भी पुरुषकार के पूर्वोक्त वचन को उद्धृत करके गोविन्द स्वामी का नाम लिया गया है ।

गोविन्द स्वामी के ऐ० ब्रा० भाष्य का एक हस्तलिखित ग्रन्थ मैंने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट लाईब्रेरी मद्रास में देखा था ।

अनुमान होता है कि इसी गोविन्द स्वामी ने बौधायन धर्मसूत्र पर **बौधायनीय धर्मविवरण** लिखा है ।

इस विवरण १ । १ । २१ ॥ में यह **भट्टकुमारिल** का नाम और तन्त्रवार्तिक की कई पंक्तियां उद्धृत करता है । १।१।१३ ॥ पर नाम लिये विना यह तन्त्रवार्तिक का एक प्रसिद्ध श्लोक लिखता है । २।२।५१॥ पर यह **यज्ञस्वामी** प्रणीत वासिष्ठ-धर्मसूत्र विवरण को उद्धृत करता है ।

एक और अनुमान है, जिस से गोविन्द स्वामी के काल के विषय में कुछ प्रकाश पड़ सकता है । पर है यह अनुमान भी बहु-सन्देह-पूर्ण । फिर भी इसे विचारास्पद समझ कर हम नीचे लिख देते हैं ।

मेधातिथि अपने मनुभाष्य २ । २५ ॥ पर लिखता है—

इह पञ्चप्रकारो **धर्म इति स्मृतिविवरणकारा** प्रपञ्चयन्ति। वर्णधर्म आश्रमधर्मो वर्णाश्रमधर्मो नैमित्तिको गुणधर्मश्चेति।

गोविन्द स्वामी अपने बोधाययन **विवरण** १।१।३॥ में लिखता है—

स च स्मार्तो धर्मः पञ्च**विधो** भवति। वर्णधर्म आश्रमधर्मो वर्णाश्रमधर्मो गुणधर्मो निमित्तधर्मश्चेति।

मेधातिथि का लेख, गोविन्दस्वामी के लेख से पर्याप्त मिलता है। और गोविन्द स्वामी की टीका का नाम भी **विवरण है**। इस लिए अनुमान किया जा सकता है कि मनु के २।२५॥ श्लोक का भाष्य करते समय मेधातिथि का ध्यान गोविन्द स्वामी के विवरण की ओर था। यदि यह बात भावी अध्ययन से सत्य निकले, तो गोविन्दस्वामी का काल नवम शताब्दी से पहले का हो सकता है। इस बात में मुझे स्वयं सन्देह है। मस्करी भी अपने गौतम भाष्य १।१॥ में यही कहता है—

धर्मः **पञ्चप्रकारः**—वर्णधर्म आश्रमधर्मो गुणधर्मो वर्णाश्रमधर्मो निमित्तधर्म इति।

इस लिये सुनिश्चित नहीं कहा जा सकता कि पूर्वोक्त पंक्तियां लिखते समय मेधातिथि का ध्यान किस की अथवा किन किन की ओर था।

एक और गोविन्द स्वामी है, जिस का एक श्लोक शार्ङ्गधरपद्धति ११६।१॥ में मिलता है।

२—जयस्वामी

रघुनन्दन अपने संस्कारतत्त्व के मलमास प्रकरण में 'आश्वलायन ब्राह्मण, भाष्यकार जयस्वामी को उद्धृत करता है। इस सम्बन्ध में यह नाम हम ने अन्यत्र नहीं पढ़ा। यदि जयन्तस्वामी का ही पाठ भ्रंश होने के कारण जयस्वामी नाम हो, तो भी कोई आश्चर्य नहीं। जयन्त स्वामी ऋग्वेदीय वाङ्मय का प्रसिद्ध टीकाकार है। इसी ने 'आश्वलायन गृह्यसूत्र, पर विमलोदयमाला नाम की टीका लिखी है। इस जयन्त स्वामी को 'आश्वलायनगृह्यकारिका' का कर्ता भट्ट कुमारिल स्वामी बहुधा उद्धृत करता है। यह भट्ट कुमारिल बहुत नवीन काल का है। पुंसवन प्रकरण में वह प्रयोगपारिजात को उद्धृत करता है। प्रयोग पारिजात में विद्यारण्य और हेमाद्रि बहुधा उद्धृत हैं। इस लिए प्रयोगपारिजात लगभग सन् १५०० का ग्रन्थ है। अतः भट्ट कुमारिल अधिक से अधिक १६ वीं शताब्दी में हो सकता है।

जयन्त स्वामी अपनी गृह्य टीका में अग्निशर्मोपाध्याय को स्मरण करता है। जयन्त स्वामी के सम्बन्ध में इस से अधिक मैं और कुछ नहीं जान सका।

यह भी सम्भव है कि जयस्वामी ही कोई ग्रन्थकार हो, क्योंकि हेमाद्रि श्राद्ध-कल्प पृ० ७५ पर हारीतस्मृति पर टीका लिखने वाला जयस्वामी भी स्मरण किया गया है।

३—षड्गुरुशिष्य [सम्वत् १२००–१२५०]

प्रसिद्ध षड्गुरुशिष्य ने ऐ० ब्रा० पर भी एक वृत्ति लिखी थी। इस का नाम **सुखप्रदा** है। यह ग्रन्थ त्रिवन्द्रम् और मद्रास के सरकारी पुस्तकालयों में है। इस के अतिरिक्त षड्गुरुशिष्य ने ऐतरेय आरण्यक, आश्वलायन श्रौत, आश्वलायन गृह्य ऋक् सर्वानुक्रमणी पर भी वृत्तियां लिखी थीं।

इन सब के ग्रन्थ इस समय सुप्राप्य हैं। षड्गुरुशिष्य की सर्वानुक्रमणी वृत्ति का सार प्रो० मैकडानल ने छापा था। शेष ग्रन्थ शीघ्र छपने चाहियें। षड्गुरुशिष्य ने कुछ और वृत्तियां भी लिखी हों, यह ज्ञात नहीं।

षड्गुरुशिष्य ने सर्वानुक्रमणी वृत्ति वेदार्थदीपिका सम्वत् १२३४ में लिखी थी। यह तिथि उस ने अपने वृत्ति के अन्त में निम्नलिखित श्लोक से प्रकट की है—

खगोत्यान्मेषुमायेति कल्यहर्गणने सति।
सर्वानुक्रमणीवृत्तिर्जाता वेदार्थदीपिका ॥१३॥

अर्थात्—कलि के १,५६६,१३२ दिन व्यतीत होने पर यह वृत्ति लिखी गई। अर्थात् कलि सं० ४२८८ अथवा वि० सं० १२३४ में षड्गुरुशिष्य विद्यमान था।

षड्गुरुशिष्य के छः गुरुओं के नाम इस श्लोक से आगे पन्द्रहवें श्लोक में मिलते हैं। वे हैं—(१) विनायक (२) शूलपाणि वा शूलाङ्क (३) मुकुन्द वा गोविन्द (४) सूर्य (५) व्यास (६) शिवयोगी। इन सब नामों से यही प्रतीत होता है कि षड्गुरुशिष्य कोई महाराष्ट्र था।

आन्तरिक साक्ष्य से भी षड्गुरुशिष्य का पूर्वोक्त काल ही निर्धारित होता है।

षड्गुरुशिष्योद्धृत ग्रन्थों वा ग्रन्थकारों की जो सूची प्रो० मैकडानल ने अपने संस्करण के पांचवे परिशिष्ट में दी है, उस में दो नाम रह गये हैं। पहला तो स्पष्ट ही पृ० ८१ पर मिलता है। यह है नारदस्तोत्र। दूसरा नाम स्पष्टरूप से नहीं आया। वेदार्थदीपिका के पृ० ५६ और ६६ पर क्रमशः लिखा है—

यातयामो जीर्णे भुक्तोच्छिष्टेऽपि च, इति निघण्टौ ।

शङ्कावितर्कभययोः, इति निघण्टुः ।

प्रो० मैकडानल दोनों स्थलों पर टिप्पणि में लिखता है—

Not in Yāskas Nighantu अर्थात् यास्कीय निघण्टु में **ये प्रमाण नहीं** मिलते । प्रो० महोदय भूलता है । यास्कीय निघण्टु ही निघण्टु नहीं, प्रत्युत प्रत्येक कोष निघण्टु कहलाता है । और ये दोनों वचन **वैजयन्ती पृ० २७५, और पृ० २२१** पर मिलते हैं । वैजयन्तीकार यादवप्रकाश का काल लगभग विक्रम सम्वत् १०५० है । अतः उसे उद्धृत करने वाला षड्गुरुशिष्य निश्चय है ग्यारहवीं शताब्दी से पीछे का है ।

४—सायण [लग भग १३१५-१३८७ ईसा]

ऐ० ब्रा० का चतुर्थ भाष्यकार सुप्रसिद्ध सायण है । अपने पूर्वज भाष्यकारों की नकल करने में इस ने कोई कसर नहीं की ।

कौषीतकी ब्राह्मण

भट्ट विनायक

१—कौषीतकी अथवा शाङ्खायन ब्रा० पर भट्ट विनायक ने भाष्य लिखा है । यह वृद्धनगर वासी भट्ट माधव का पुत्र था ।

विनायक कौषीतकी ब्रा० भा० ३ । १ ॥ पर कालादर्श को उद्धृत करता है । यह भी बहुत पुराना ग्रन्थकार नहीं ।

शतपथ ब्राह्मण

१—हरिस्वामी [पहली शताब्दी विक्रम]

माध्यन्दिन-शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के अन्तिम अध्यायों पर जो हरि-स्वामी का भाष्य, सत्यव्रत सामश्रमी ने छपवाया है, उस के अध्यायों की समाप्ति पर स्वल्प पाठान्तर के साथ निम्नलिखित श्लोक पाये जाते हैं—

नागस्वामिसुतोऽवन्त्यां पाराशर्यो वसन् हरिः ।
श्रुत्यर्थं दर्शयामास शक्तितः पौष्करीयकः ॥
श्रीमतोऽवन्तिनाथस्य विक्रमार्कस्य भूपतेः ।
धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्यच्छातपथीं श्रुतिम् ॥

अर्थात् पाराशर गोत्र वाले **नागस्वामी** के पुत्र हरिस्वामी ने अवन्ति में रहते

हुए, यथाशक्ति श्रुति का अर्थ दिखाया है। अवन्तिनाथ श्रीमान् विक्रम महाराज के धर्माध्यक्ष हरिस्वामी ने शतपथ का व्याख्यान किया।

यह श्लोक आचार्य हरिस्वामी के अपने लिखे हुए प्रतीत नहीं होते। हमारे पास शतपथ के द्वितीय काण्ड पर हरिस्वामी का भाष्य है। उस में कहीं भी ऐसे श्लोक नहीं पाये जाते। अस्तु, चाहे यह श्लोक हरिस्वामी कृत न भी हों तो भी इन में असत्य का भाव प्रतीत नहीं होता।

उव्वट अपने मन्त्रभाष्य की समाप्ति पर लिखता है—

ऋष्यादींश्च नमस्कृत्य अवन्त्यामुवटोऽवसन्।
मन्त्राणां कृतवान्भाष्यं महीं भोजे प्रशास्ति ॥२॥

अर्थात् ऋषि, मुनियों को नमस्कार कर के, अवन्ति में रहते हुए उव्वट ने मन्त्रों का भाष्य पूर्ण किया, जब कि महाराज भोज पृथिवी पर शासन करते थे। भोज का काल दशम शताब्दी ईसा है। अतः यही काल उव्वट का हुआ। अब उव्वट अपने मन्त्रभाष्य २५। ८॥ में लिखता है—

क्लोमा गलनाडीति कर्कः।

काशी-मुद्रित कात्यायन श्रौत भाष्य ६।१५९॥ में सम्प्रति यह वचन मिलता है—

क्लोमो गलकनाडी प्लीहः प्रसिद्धः।

मन्त्रभाष्य और कर्कभाष्य जिस बुरी रीति से सम्पादित हुए हैं, उसे जानते हुए हम कह सकते हैं, कि उव्वट कात्यायन श्रौत भाष्यकर्ता कर्क को ही उद्धृत कर रहा है।

कर्क का काल जानने के लिए एक और उपाय है, पर वह भी हमें उव्वट से पहले काल तक नहीं ले जाता। हेमाद्रि (१३वीं शताब्दी) अपनी चतुर्वर्ग चिन्तामणि कालनिर्णय पृ० ६१६, ६२२ इत्यादि पर त्रिकाण्डमण्डन को उद्धृत करता है। इससे पता लगता है कि त्रिकाण्डमण्डन का कर्ता कम से कम १२वीं शताब्दी में हुआ होगा। त्रिकाण्ड मण्डन १।१३०॥ १।१३५॥ पर यही कर्क उद्धृत है। इस लिये कर्क ११वीं शताब्दी से पूर्व का ग्रन्थकार है।

कर्क अपने कात्यायन श्रौतसूत्र भाष्य ८।१८१॥ में हरिस्वामी को उद्धृत करता है। इस लिए ज्ञात प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि आचार्य हरि स्वामी दशम शताब्दी से पूर्व का तो अवश्य ही है।

२—उव्वट

बीकानेर के सूचीपत्र पृष्ठ ६९ पर लिखा है कि उव्वट ने भी शतपथ ब्राह्मण पर भाष्य किया था। हमने इस का कोई हस्तलेख अभी तक नहीं देखा।

३—सायण

शतपथ ब्राह्मण पर सायणभाष्य के काण्ड १—३, ५—७ और ९ एशियाटिक सोसाईटी कलकत्ता में छप चुके हैं। सायणभाष्य का ढंग सर्वत्र एक जैसा ही है।

४—कवीन्द्राचार्य

बीकानेर के सूचीपत्र पृष्ठ ७१ संख्या १७६ के नीचे शतपथ के उषासम्भरण अर्थात् छठे काण्ड पर कवीन्द्राचार्य सरस्वतीकृत भाष्य का उल्लेख है। प्रतीत होता है, ग्रन्थकार का नाम जानने में राजेन्द्रलाल मित्र को भूल हुई है। यद्यपि मैंने इस हस्तलेख को नहीं देखा फिर भी अनुमान करता हूं कि यह कवीन्द्राचार्य सरस्वती के पुस्तकालय की विख्यात हस्ताक्षरों की मुहर को इस कोश के ऊपर देख कर ही मित्र महाशय ने भूल की है। यह तो हरिस्वामी का भाष्य दिखता है।

काण्व शतपथ ब्राह्मण

नीलकण्ठ

महाभारत वनपर्व १६२। ११॥ की टीका करते हुए नीलकण्ठ लिखता है—

'सूर्यामासा विचरन्ता दिवि, इति मन्त्रवर्णनात्। सूर्यामासा सूर्याचन्द्रमसावित्यर्थः। निपुणतरमुपपादितमेतदस्माभिः काण्वशतपथभाष्ये एकपादीकाण्डे।

काण्व शतपथ ब्राह्मण की भूमिका पृ० २६ के डाक्टर कालण्ड के लेख से ज्ञात होता है कि काण्व ब्राह्मण के पाठों और विभागों की दृष्टि से मूल के दो भाग हो गए हैं। इन में से एक है उत्तरीय और दूसरा है दाक्षिणात्य। उत्तरीय अथवा बनारस के निकटस्थ देशों में जो काण्व ब्राह्मण के हस्तलेख पाए गए हैं उन में प्रथम काण्ड का नाम **एकपात्** है। दाक्षिणात्य हस्तलेखों में इसी का नाम **एकवायी** काण्ड है। नीलकण्ठ ने पूर्वोक्त लेख में एकपादी काण्ड का नाम लिखा है, इस से प्रकट होता है कि यह नीलकण्ठ उत्तरदेशीय, महाराष्ट्र अथवा बनारस के निकट का ही रहने वाला था। इस का काल लगभग ५०० वर्ष पूर्व का है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण

१–भवस्वामी

भट्टभास्कर तैत्तिरीय संहिताभाष्य प्रथम काण्ड पृ० २ के अन्त में लिखता है–

वाक्यार्थैकपराण्यधीत्य च भवस्वाम्यादिभाष्याण्यतो
भाष्यं सर्वपथीनमेतदधुना सर्वीयमारभ्यते ॥

अर्थात—वाक्यार्थमात्र करने वाले **भवस्वामी** आदि के भाष्यों को पढ़ कर यह सर्वांग पूर्ण भाष्य अब आरम्भ किया जाता है ।

इस से स्पष्ट है कि भवस्वामी भट्टभास्कर से पूर्व का व्यक्ति है । कितने पूर्वकाल का, यह हम नहीं कह सकते । बर्नल तञ्जोर के सूचीपत्र पृ० ७ पर लिखता है कि भट्टभास्कर दशम शताब्दी में हुआ था । इस लिए इतना तो सत्य है कि भवस्वामी दशम शताब्दी से पहले हो चुका था ।

त्रिकाण्ड मण्डन १ । १०१ ॥ में केशवस्वामी का नाम मिलता है । त्रिकाण्ड मण्डन लगभग ११ वीं शताब्दी का ग्रन्थ है । केशवस्वामी इस से कुछ पूर्व हुआ होगा । यह केशवस्वामी अपने बौधायन प्रयोगसार के आरम्भ में लिखता है—

नारायणादिभिः प्रयोगकारैरेकं पक्षमाश्रित्य दर्शपूर्णमासादीनां प्रयोग उक्तः । आचार्यपादैः द्वैधे पक्षान्तराण्युक्तानि । भवस्वामिमतानुसारिणा मया तु उभयमप्यङ्गीकृत्य प्रयोगसारः क्रियते ।

अर्थात्—नारायणादि प्रयोगकारों ने एक पक्ष का ही आश्रय ले कर प्रयोग कहा है । आचार्यपाद ने द्वैध में पक्षान्तर भी कहे हैं । **भवस्वामी** मतानुसारी मैं दोनों को अङ्गीकार कर के प्रयोगसार लिखता हूं ।

इस से भी निश्चित होता है कि भवस्वामी दशम शताब्दी से पूर्व का है ।

भवस्वामी ने तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण और बौधायन श्रौत पर अपने भाष्य वा विवरण लिखे थे । इन में से अब श्रौतविवरण के ही भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न पुस्तकालयों में मिलते हैं ।

२–कौशिक भट्ट भास्कर मिश्र

ऋग्वेद के सायण भाष्य के स्वकीय संस्करण के प्राक्कथन में मैक्समूलर लिखता है—

"सायण भट्ट भास्कर का निम्नलिखित स्थलों में उल्लेख करता है—

ऋ० भा० १ । ६३ । ४ ॥

ऋ० „ १ । ७१ । ४ ॥

ऋ० „ १ । ८४ । १५ ॥

ऋ० „ ६ । १ । १३ ॥

ऋ० „ ७ । १ । ७ ॥

इस के आगे मैक्समूलर लिखता है कि 'भट्ट भास्कर के ये प्रमाण सायण ने सम्भवतः उस के तैत्तिरीय–भाष्यों में से लिए होंगे ।'[1]

मैक्समूलर ने यह लेख सन् १८७४ में लिखा था। सन् १९०६ में, सायण और भट्ट भास्कर भाष्ययुक्त रुद्राध्याय की भूमिका में वामन शास्त्री ने लिखा था—

भट्टभास्करोऽयं माधवाचार्यान्न प्राचीन इति तु निश्चितमेवेति ।

अर्थात्–यह भट्टभास्कर माधवाचार्य (सायण) से प्राचीन नहीं, यह निश्चित ही है।

सन् १९२१ में आर. शामशास्त्री ने भट्टभास्कर भाष्ययुक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण द्वितीयाष्टक के उपोद्घात में लिखा था—

"...स क्रिस्ताब्दानां पञ्चदशशतकस्यान्ते प्रायेण समासीदिति संभाव्यते । ...एष निष्पावके...... ।[2]

इत्ययं श्लोकस्तृतीयकाण्डभाष्यस्यादौ दृश्यते । अत्र 'निष्पावके शाके' इति शब्दयोजना कादिनवेत्याद्यक्षरगणितानुसारेण १४२० तमशकाब्दसमकालिकत्वं ग्रन्थकर्तुर्द्योतयतीति संभाव्यते ।......भट्टभास्करेण कृतं भाष्यं तदीयसायणभाष्यस्यैवानुवाद इति भाति ।"

अर्थात्—भट्टभास्कर ईसा की १५वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। इस में प्रमाण भास्कर का अपना श्लोक है । उस श्लोक के **निष्पवाके शाके** का अर्थ १४२० शकाब्द बनता है। भट्ट भास्कर का भाष्य सायणभाष्य का अनुवादमात्र है।

यह बहुत विस्मय का स्थान है कि वामन शास्त्री, अथवा शाम शास्त्री में से किसी ने भी बर्नल और मैक्समूलर के लेखों का खण्डन किये विना, अपने मत की स्थापना की। सम्भवत: उन्होंने बर्नल और मैक्समूलर के लेख देखे ही नहीं।

---

१ ऋग्वेदभाष्य, दूसरा एडीशन, भाग ४, पृ० १३० ।

२ यह श्लोक अन्तिम पदके थोड़े से परिवर्तन के साथ तैत्ति० ब्रा० भट्ट भास्कर भा० के दूसरे अष्टक के पृ०-४३ पर भी मिलता है ।

तै० संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक पर भट्ट भास्करभाष्य का सम्पादन करने वाले महादेव शास्त्री और शाम शास्त्री ने भट्ट भास्कर का काल जानने के लिए सहायक सामग्री को एकत्र करने में अणुमात्र भी प्रयास नहीं किया, ऐसा कहने में हमें कोई संकोच नहीं। अन्यथा हमारे मित्र शाम शास्त्री जैसा विद्वान् ऐसी भूल कदापि न करता।

भट्ट भास्कर सायण का पूर्ववर्त्ती है

मैक्समूलर के अनुमान की पुष्टि

भट्ट भास्कर भाष्य से लिए हुए पांच प्रमाणों में से, जिन्हें मैक्समूलर ने ऋग्वेद के सायणभाष्य में पाया, मैं ने तीन ठीक उन्हीं शब्दों में भट्ट भास्कर के भाष्यों में ढूंढ लिए हैं। वे निम्नलिखित हैं—

१—ऋग्वेद १।६३।४॥ सायण—पराचैरित्येतद**व्ययं, नीचैरुच्चैरिति-वदति** भट्टभास्करमिश्रः।

तै० सं० १।४।३६[२]॥ भट्टभास्कर—पराचैः··· **उच्चैरादिवदव्ययं** द्रष्टव्यम्।

तै० सं० १।८।२२[४२]॥ ,, पराचैः··· **निपातोयं यथा उच्चैः नीचैः।**

२—ऋग्वेद १।८४।१५॥ सायण—**अपीच्यो ऽप्रकाश** इति भट्टभास्करमिश्रः।

तै० सं० ७।४।१६[५८]॥ भास्कर—**अपीच्यः अप्रकाशः।**

३—ऋग्वेद ६।१।१३॥ सायण—भट्टभास्करमिश्रो ऽप्येकपदं **सम्बुध्यन्तं** (वसुताते) **चकार।**

तै० ब्रा०[१] ६।१०[१३]॥ भास्कर—हे **वसुताते**! वसूनां धनानां कर्तः।

सायणीय ऋग्वेदभाष्यान्तर्गत ७।१।७॥ पर उद्धृत चौथा प्रमाण तै० सं० के चतुर्थ काण्ड से लिया गया प्रतीत होता है। निघण्टु भाष्यकार देवराज यज्वा भी २।१४।३७॥ पर भास्कर के इसी प्रमाण को उद्धृत करता है। तै० सं० चतुर्थ काण्ड पर अभी तक भास्कर का भाष्य नहीं मिला। इस लिए हम इस प्रमाण के खोजने में अशक्त हैं।

ऋग्वेद १।७१।४॥ वाला प्रमाण हम नहीं खोज सके। इतने से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि भट्टभास्करमिश्र सायण से पूर्वकाल का था। वामन शास्त्री और शामशास्त्री की भूल तो इसी से प्रकट है।

---

१ तै० सं० में यह मन्त्र नहीं है।

भट्ट भास्कर देवराज यज्वा का पूर्ववर्ती है

देवराज यज्व सायण से कुछ पूर्वकालीन है। सायण ऋग्वेद भाष्य १। ६२। ३॥ में **इति निघण्टुभाष्यं** कह कर एक वचन उद्धृत करता है। वह वचन देवराज यज्व के निघण्टुभाष्य में **उस्रा** पद के व्याख्यान में मिल जाता है। इस से कुछ २ निश्चित होता है कि देवराज सायण से पूर्वकाल का है। पर इस प्रमाण पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों की टीकाओं के पढ़ने से हम जानते हैं कि एक के पीछे दूसरा टीकाकार प्राय: वैसे ही शब्द रखता हुआ, टीका करता चला जाता है। इसी प्रकार सम्भव है कि देवराज यज्व ने यह वचन निघण्टु के किसी पूर्वकाल के टीकाकार से ले लिया हो. और सायण भी उसे ही उद्धृत करता हो। पर एक और बात है, जो इस सन्देह की उपस्थिति में भी निश्चित कराती है कि देवराज यज्व सायण से तीस चालीस वर्ष पहले हो चुका था।

देवराज यज्व अपने निघण्टुभाष्य की भूमिका में चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ तक के भरतस्वामी आदि भाष्यकारों को उद्धृत करता है। पर सायणमाधव के भाष्यों को उस ने कहीं भी उद्धृत नहीं किया। यद्यपि किसी को उद्धृत न करना इस बात को सिद्ध नहीं करता कि ग्रन्थकार उसे जानता ही नहीं, अथवा वह व्यक्ति ग्रन्थकार के काल से उत्तरवर्ती है, पर इस स्थानविशेष पर हम जानते हैं, कि सायणमाधव को उद्धृत न करने वाला देवराज यज्व उन से पहले का है।

यही देवराज यज्व अपने निघण्टुभाष्य में भट्ट भास्कर को बहुधा उद्धृत करता है। उन उद्धरणों में से चार प्रमाण हम नीचे लिखते हैं।

१—निघण्टु १।१।१६॥ देवराज—**सर्वार्थपोषणात् पूषा** इति भट्टभास्करमिश्रः।

तै० सं० १।२।२[४] ॥ भास्कर—पृथिवी **पूषा सर्वार्थपोषणात्।**

२—निघण्टु १।१।१६॥ देवराज—भट्टभास्करमिश्रेण—**ब्रध्नं परिवृढम्।** अरुष-**मारोचनम्** इति।

तै० सं० ७।४।२०[४] ॥ भास्कर—**ब्रध्नं परिवृढमश्वं अरुषं अरोषणम् ?**

तै० ब्रा० ३।६।४[१] ॥ भास्कर—**आरोचनादरुषः।**

३—निघण्टु २।१४,५६॥ देवराज—अग्ने **संवेषिष....समन्तात्प्रापय,** इति भट्ट-भास्करमिश्रः।

तै० सं० २।६।११[११] ॥ भास्कर—**सुसंवेषिषः सुष्ठु समन्तात्प्रापय।**

४—निघण्टु १।११।२४॥ देवराज—भट्टभास्करमिश्रः—स्वयं सरस्वती आह ब्रूते । स्वैव ते वागित्यब्रवीत् । इति ब्राह्मणम् ।

तै० सं० १।१।३[५] ॥ भास्कर—स्वाहा स्वयमेव सरस्वती आह ब्रूते । स्वैव ते वागित्यब्रवीत् । इत्यादि ब्राह्मणम् । [तै० ब्रा० ३।२।३॥]

इस तुलना से पूरा निश्चित हो जाता है कि भट्ट भास्कर देवराज यज्व से भी कुछ पहले कालका था ।

सायण से कुछ ही पहले काल का[१] **अस्यवामीय** सूक्त का भाष्यकार **आत्मानन्द** भी अपने ग्रन्थ की भूमिका में वेदभाष्यकारों में भट्ट भास्कर का नाम लिखता है ।

भट्टभास्कर के भाष्यों में उस के काल पर प्रकाश डालने वाली सामग्री

तै० सं० भाष्य १।८।१०[१९] ॥ पर भट्ट भास्कर लिखता है—

तस्मादिममामुष्यायणं **सिंहवर्मणः पुत्रं नन्दिवर्माणं**...सुवध्वम् ।

पुन: तै० सं० भाष्य १।८।११[१] ॥ पर दो राजाओं के नाम मिलते हैं ।

राजसिंहवर्मा । राजेन्द्रवर्मा ।

पुनः तै० सं० भाष्य १।८।१२[२२] ॥ पर लिखा है—

अयं च यजमानः असौ **नरसिंहवर्मा** आमुष्यायणः **राजेन्द्रवर्मणो ऽपत्यमिति**...पितुर्नाम गृह्यते, राजेन्द्रायण इति यथा ।

पुनः तै० सं० भाष्य २।३।४॥ में राजा **वीरसिंहवर्मा** नाम मिलता है ।

दुब्रेऊइल महाशय ने पल्लव राजाओं की जो परम्परा दी है[२], तदनुसार नन्दिवर्मा नाम के तीन राजा हुए हैं । उन में से **नन्दिवर्मा प्रथम** (सन् ५२५–५५०) से

१ देखो, मैक्समूलर कृत प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० १२३। **अस्यवामीय** सूक्त भाष्य के ज्ञात पुस्तकालयों में तीन हस्तलेख हैं। (१) इण्डिया आफिस लण्डन में (२) पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर में (३) बड़ोदा में ।

2 Ancient History of the Deccan, 1920, p. 70.

पूर्व स्कन्दवर्मा (सन् ५००–५२५) और उस से पूर्व **सिंहवर्मा** (सन् ४७५–५००) का नाम मिलता है। सम्भवतः यही **सिंहवर्मा** है, जिस के पुत्र **नन्दिवर्मा** का उल्लेख भट्ट भास्कर ने स्वयं, या किसी पूर्व ग्रन्थकार को देख कर किया है। इन दोनों का मध्यवर्ती **स्कन्दवर्मा** कौन है, यह इतिहासज्ञ स्वयं विचारें। सिंहवर्मा और भी हुए हैं, पर इस सम्बन्ध में यही युक्त राजा है। **नरसिंहवर्मा** नाम के दो राजा हुए हैं। पहला (सन् ६३०–६६८) और दूसरा (सन् ६९०–७१५)। **राजेन्द्रवर्मा** और **वीरसिंहवर्मा** नाम डुब्रेऊइल-महाशय-शोधित परम्परा में नहीं मिलते। सम्भव है कोई सिंहवर्मा ही वीरसिंहवर्मा कहाता हो। **राजेन्द्रवर्मा**, सम्भवतः महेन्द्रवर्मा (सन् ६००–६३०) हो।

इन ऐतिहाहिक नामों से हमें पता चलता है कि भट्ट भास्कर छठी और सातवीं शताब्दी के राजाओं के नाम लेता है। यदि यह नाम उस ने स्वयं लिखे हैं, तो बहुत सम्भव है कि वह इन में से किसी राजा का समकालीन हो। और यदि उस ने पुराने भाष्यकारों से ही ले कर ये नाम लिख दिए हैं, तो वह इन का कितना ही उत्तरवर्ती हो सकता है। ऐसी दशा में बर्नलकथित दशम शताब्दी ही अभी तक भट्ट भास्कर का काल मानना पड़ता है।

बर्नल तञ्जोर के सूचीपत्र पृ० ७, प्रथम कालम में लिखता है कि—**निष्पवाके शाके** का अर्थ ही **अनुमुल भट्ट भास्कर** है। वह तैलुगु ब्राह्मण था। तैलुगु ब्राह्मण ही अपने कुलनामों के स्थान में पौधों के नाम लेते हैं। शामशास्त्री ने दाक्षिणात्य होते हुए भी इस बात का ध्यान नहीं किया, अतः उस का **निष्पावके शाके** का १४२० शकाब्द अर्थ, कल्पनामात्र है।

भट्ट भास्कर अपने भाष्यों में एक २ शब्द के बहुधा दो २, तीन २ अर्थ देता है। अपने काल का यह अच्छा विद्वान् होगा। स्वरप्रक्रिया का इसे प्रशस्त ज्ञान था। कहीं २ मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थ भी कर जाता है। पूर्व भाष्यकारों को **केचित्, अपरे, अन्ये** आदि कह कर ही उद्धृत करता है।

३—रामाण्डार=रामाग्निचित्

त्रिकाण्डमण्डन प्रथम काण्ड में लिखा है—

> **दुर्ब्राह्मणं समाचष्टे कर्कः शाखान्तरश्रुतेः ॥१२५॥**
>
> **पक्षमङ्गीकरोत्येनं मन्त्रब्राह्मणभाष्यकृत् ॥१२६॥**

अर्थात्—शाखान्तर श्रुति के प्रमाण से कर्क उसे दुर्ब्राह्मण कहता है। इसी पक्ष को **मन्त्रब्राह्मण** भाष्यकार स्वीकार करता है।

त्रिकाण्डमण्डन का टीकाकार लिखता है—

मन्त्रब्राह्मणभाष्यकृत् रामाण्डारः।

यदि यह[1] टीकाकार भूलता नहीं, तो रामाग्निचित् ने आपस्तम्ब श्रौत सूत्र के समान तैत्तिरीयसंहिता और ब्राह्मण पर भी वृत्ति वा भाष्य किया होगा। रामाण्डार ने धूर्तस्वामी के आपस्तम्ब श्रौत भाष्य पर वृत्ति लिखी थी। उस वृत्ति के आरम्भ में वह लिखता हैं—

आपस्तम्बं नमस्कृत्य धूर्तस्वामीप्रसादतः।
तद्भाष्यवृत्तिः क्रियते यथाशक्ति निरूपिता ॥२॥
कौशिकेन तु रामेण श्रद्धामात्रविजृंभिताः।
वेदार्थनिर्णये यत्नः क्रियते शक्तितोऽधुना ॥४॥

अर्थात्—आपस्तम्ब को नमस्कार कर के धूर्तस्वामी की कृपा से यथाशक्ति उस के भाष्य की वृत्ति की जाती है।

कौशिक गोत्र वाले राम ने केवल श्रद्धा से प्रेरित होकर अब वेदार्थ का शक्ति भर यत्न किया है।

हमारे ज्ञान में अभी तक इस भाष्य का कोई हस्तलेख नहीं आया।

४—सायण (लगभग १३१५–१३८७ ईसा)

सायण ने इस ब्राह्मण पर भी भाष्य लिखा था जो कलकत्ता और पूना में छप चुका है।

ताण्ड्य महाब्राह्मण

१—जयस्वामी

पीटर्सन अपनी दूसरी रिपोर्ट, एप्रिल सन् १८८३–मार्च १८८४, पृ० १७६, संख्या २१ पर **ताण्ड्यब्राह्मणभाष्यटीका** नाम का एक कोश दर्ज करता है। वह इस का कर्ता हरिस्वामीपुत्र बताता है। यह ग्रन्थ अलवर के राजकीय पुस्तकालय का है। यह पूर्वोक्त रिपोर्ट सन् १८८४ में छपी थी। १८९२ में पीटर्सन महाशय ने ही अलवर के ग्रन्थों का एक बड़ा सूचीपत्र छपवाया था। उस में संख्या २४३ पर इसी ग्रन्थ को **ताण्ड्यब्राह्मण भाष्य** लिखा है। इस का कर्ता **हरिस्वामीपुत्र**

जयस्वामी है। वह अपने भाष्य की समाप्ति पर लिखता है—

पञ्चविंशार्थमालेयं या जयस्वामिना कृता।
हरिस्वामिसुतेनास्यां दशाहः परिसंस्थितः॥

अर्थात्—हरिस्वामिसुत जयस्वामी की बनाई हुई **पञ्चविंशार्थमाला** में दशाह समाप्त हुआ।

इस से ज्ञात होता है कि इस भाष्य का नाम **पञ्चविंशार्थमाला** है।

जयस्वामी के विषय में इस से अधिक हम अभी तक कुछ नहीं जान सके।

२—सायण

सायणाचार्य का भाष्य कलकत्ता में छप चुका है।

३—नारायणाचार्य

इस आचार्य के भाष्य का एक हस्तलिखित ग्रन्थ मैसूर के सूचीपत्र सन् १९२२, पृ० ६ पंक्ति १ पर दर्ज है।

षड्विंश ब्राह्मण

१—सायण

सायण ने इस ब्राह्मण पर विज्ञापनभाष्य नाम की टीका लिखी है।

मन्त्रब्राह्मण

१—भट्ट गुणविष्णु

हाईनूरिश स्टोन्नर अपने मन्त्रब्राह्मण की भूमिका पृ० ३१ पर लिखता है—

"मन्त्रब्राह्मण पर दो भाष्य हैं। पुराना भाष्य **दामुक** के पुत्र गुणविष्णु का है और नया सायण का। सायण अपने पूर्वज के ग्रन्थ को बहुधा काम में लाता है। गुणविष्णु का सुनिश्चित काल जानना असम्भव है।...वह १४वीं शताब्दी से थोड़ा सा पहले हो सकता है।"

सायण ने कहीं नाम लेकर गुणविष्णु का प्रमाण दिया हो, ऐसा स्टोन्नर महाशय ने नहीं लिखा।

मन्त्रार्थदीपिका का कर्ता **शत्रुघ्न** अपने ग्रन्थ की भूमिका में लिखता है—

उवटे मन्त्रव्याख्या गुणविष्णौ ब्राह्मणीयसर्वस्वे।

अर्थात् उव्वट भाष्य में जो मन्त्रव्याख्या है, तथा **गुणविष्णु** के भाष्य में, और ब्राह्मणसर्वस्व में।

शत्रुघ्न का काल निश्चित है। वह अपनी भूमिका में लिखता है—

आदेशादथ राज्ञस्तस्य श्रीधर्मचन्द्रस्य ॥८॥

अर्थात् महाराज श्री **धर्मचन्द्र** की आज्ञा से । इस से पूर्व वह **प्रयागचन्द्र,** और **श्रीरामचन्द्र** का नाम लिख चुका है। ये सब **त्रिगर्त**=काङ्गड़ा के राजा थे। प्रयागचन्द्र का काल सन् १४९५, रामचन्द्र का १५१० और **धर्मचन्द्र** का काल सन् १५२८ है। इस लिए हम इतना तो निश्चय से कह सकते हैं, कि **गुणविष्णु** १६ वीं शताब्दी से पहले का था।

दैवत ब्राह्मण

सायण

सायण—भाष्य के सिवा इस ब्राह्मण पर दूसरा भाष्य अभी तक नहीं मिला।

आर्षेय ब्राह्मण

१—सायण

सायण का आर्षेय ब्राह्मण भाष्य छप चुका है।

२—काश्यप भट्ट भास्करमिश्र

काश्यप भट्टभास्करने **सामवेदार्षेयदीप** नाम का भाष्य लिखा था। यह कौशिक भट्ट भास्कर से भिन्न व्यक्ति है । बर्नल तञ्जोर के सूचीपत्र पृ० ७, टिप्पणी १ में लिखता है कि, "इस ने सामब्राह्मणों पर भाष्य लिखे थे, ऐसा कहा जाता है। मैं ने वे नहीं देखे। यह भट्ट भास्कर **भरतस्वामी** को उद्धृत करता है।" बर्नल के सूचीपत्र पृ० ११ के अनुसार १३ वीं शताब्दी के अन्त में भरतस्वामी जीवित था। अतः काश्यप भट्ट भास्कर लगभग सायण का समकालीन होगा।

मैसूर के सूचीपत्र सन् १९२२, पृ० ४ पर इस के एक हस्तलेख की सूचना दी गई है।

सामविधान ब्राह्मण

१—भरतस्वामी

भरतस्वामी सामवेदादि ग्रन्थों का प्रसिद्ध भाष्यकार है । इस के पिता का नाम **नारायण** और माता का नाम **यज्ञदा** था। अपने सामवेदभाष्य की भूमिका में वह लिखता है—

होसलाधीश्वरे पृथ्वीं रामनाथे प्रशासति ।
व्याख्या क्रियते ऽयं क्षेमेण श्रीरङ्गे वसता मया ॥

अर्थात्—होसलाधीश्वर रामनाथ के राजत्व काल में श्रीरङ्गपटम में निवास करते हुए मैंने यह व्याख्या की है।

इस भरतस्वामी के सामविधान-ब्राह्मण-भाष्य का एक हस्तलेख अलवर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। उस के अन्त में निम्नलिखित लेख है—

इति सामविधाने आचार्यभरतस्वामिकृतौ पदार्थमात्रविकृतौ तृतीयो ऽगात् प्रपाठक इति सामविधानभाष्यं समाप्तम्।

होसलाधीश्वर राम का काल बर्नेल के कथनानुसार सन् १२६१—१३१० है।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण

१–सायण

२–विष्णुपुत्र

विष्णुपुत्र के भाष्य का एक हस्तलिखित ग्रन्थ बड़ोदा के सूचीपत्र भाग १, पृ० १७ पर दर्ज है।

सायण ने सभी कौथुम सामब्राह्मणों पर भाष्य लिखे थे। वंशब्राह्मण पर भी उसका भाष्य मिलता है।

जैमिनीय ब्राह्मण

भवत्रात

मेरे मित्र संस्कृत वाङ्मय के अद्वितीय जीर्णोद्धारकर्ता श्री आर. अनन्तकृष्णशास्त्री ४ अगस्त सन् १९२७ के अपने पत्र में लिखते हैं—

"Yesterday I was at the Jaiminiya village.................
Fortunately I discovered the following mss.........................

"3. अष्ट ब्राह्मण On last page it was written भवत्रात-भाष्य on ब्राह्मण available at..........."

अर्थात्—कल (८-३-२७) मैं जैमिनीय ब्राह्मणों के ग्राम में था। सौभाग्य से मैंने निम्नलिखित ग्रन्थ खोज लिए।.........

(३) अष्टब्राह्मण[1]—इसके अन्तिम पत्र पर लिखा है कि ब्राह्मण पर **भवत्रात** भाष्य.........में विद्यमान है।

एक **देवत्रात** ने आश्वलायन श्रौतसूत्र पर भाष्य लिखा था। ऐशियाटिक सोसाईटी कलकत्ता के सूचीपत्र सन् १९२३ के ग्रन्थ संख्या ३०७ में इसी का अपर नाम **वराहदेव** भी लिखा है। इससे आगे एक दूसरे हस्तलेख का हवाला दे कर लिखा है—**वराहकाय देवत्रात**। बीकानेर के सूचीपत्र सं० १८७ में इसी का

---

१ इस का अभिप्राय जैमिनीय ब्रा० के आठ विभागों से है।

नाम **वराहदेवस्वामी** लिखा है । कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र पृ० १ पर आश्वलायन श्रौत पर देवत्रात के भाष्य का नाम मिलता है । देवत्रात एक पुराना भाष्यकार प्रतीत होता है । आश्वलायन श्रौतसूत्र पर इसके भाष्य का कुछ भाग अग्निहोत्रचन्द्रिका (आनन्दाश्रम पूना सन् १९२१) में छप चुका है । क्या भवत्रात इसी का कोई सम्बन्धी था ?

ब्राह्मणभाष्यकारों पर एक सामान्य दृष्टि

जितने भी भाष्यकारों का हमने पूर्व वर्णन किया है, उनमें से कोई भी महाराज विक्रम के काल से पहले का नहीं है। इन भाष्यकारों और ब्राह्मणों के सङ्कलन कर्ताओं में कम से कम तीन सहस्र वर्ष का अन्तर हो चुका था । इन से पहले भी अनेक भाष्यकार हो चुके होंगे, पर उन के सम्बन्ध में अब हम कुछ नहीं जानते । ये सब भाष्यकार प्रायः एक ही ढंग का अर्थ करते हैं । इन में से जितने पुराने हैं, वे तो शब्दार्थ मात्र करके ही सन्तुष्ट रहते हैं । हां, सायणादि नवीन भाष्यकर कहीं कहीं व्याख्यान भी करते हैं । पर क्या व्याख्या और क्या शब्दार्थ, इन में ब्राह्मणों के रहस्यों का तात्पर्य बहुत कम दिखाया गया है । ईश्वरीय सृष्टि के आधिदैविक तत्त्वों के निदर्शन का, जो ब्राह्मणों में सर्वत्र मिलता है, ये भाष्यकार स्पष्टीकरण नहीं करते । यही कारण है, कि मध्यमकाल के दुर्गाचार्य के सिवा सब वेदभाष्यकार आधिदैविक तत्त्वों को छूते तक नहीं । उनके वेद वा ब्राह्मण के भाष्य शब्दार्थ जानने में तो कुछ २ सहायता कर सकते हैं, पर पुराने ऋषियों के भावों का ज्ञान नहीं करा सकते । हमें इन ब्राह्मणों के भाष्यों को बड़ी सावधानी से पढ़ना चाहिये । उपयोगी सामग्री को हम काम में ला सकते हैं, और भाष्यकारों की निज कल्पनाओं का त्याग कर सकते हैं ।

चौथे अध्याय का परिशिष्ट

कौषीतकि ब्राह्मण

मिताक्षरा टीका

आफ्रेक्ट बृहत्सूची भाग १, पृ० १३२ के अनुसार बनारस संस्कृत कालेज में कौषीतकि ब्राह्मण पर **मिताक्षरा** नाम की टीका का एक हस्तलेख है ।

शतपथान्तर्गत मण्डल ब्राह्मण

नारायणेन्द्र सरस्वती

बड़ोदा के सूचीपत्र भाग १, पृ० १२, संख्या ७३४ पर **नारायणेन्द्र सरस्व-**

तीकृत मण्डलब्राह्मणभाष्य की विद्यमानता बताई गई है। इस भाष्य का नाम **पण्डितमण्डन** भाष्य है।

शतपथान्तर्गत पिण्डब्राह्मण

कात्यायनश्राद्धसूत्र पर श्राद्धकाशिका (सम्वत् १५०५) का लिखने वाला कृष्णमिश्र दूसरी कण्डिका की व्याख्या में लिखता है—

पिण्डब्राह्मणभाष्यकारोऽपि--अथ नीवीमुद्वृह्य नमस्करोतीति कण्डिकाव्याख्याने नाभेर्दक्षिणत एव नीवीस्थानमित्यमंस्त।

अर्थात्—**अथ नीवीम्** (मा० शतपथ २।४।२।२४॥) की व्याख्या में पिण्डब्राह्मणभाष्यकार भी मानता है कि नाभि के दक्षिण में ही नीवी स्थान है। इस प्रकार का वचन सायणभाष्य में नहीं मिलता। श्राद्धकाशिकाकार का अभिप्राय किस ब्राह्मणभाष्यकार से है, यह विचारणीय है।

पांचवां अध्याय

ब्राह्मणकाल के समकालीन आचार्य वा राजा

ब्राह्मणग्रन्थों के प्रवक्ता सैंकड़ों आचार्य थे। उन में से बहुतों का इतिहास तो अनेक ब्राह्मणग्रन्थों के लुप्त हो जाने से नष्ट हो गया है। उपलब्ध ब्राह्मणों में जिन आचार्य और राजाओं का वर्णन है, उन में से बहुत से समकालीन हैं। उन सब का थोड़ा २ इतिवृत्त जानने से ब्राह्मणों के काल का जानना सरल हो जाता है। इस लिए उन समकालीन आचार्यों और राजाओं का उल्लेख हम इस अध्याय में करेंगे। समकालीन शब्द से मेरा अभिप्राय प्राय: तीन पीढ़ियों अथवा लगभग २०० वर्षों से है।

(क) शतपथ ब्राह्मण ११। ६। २। १॥ में कहा है—

जनको ह वै वैदेहो ब्राह्मणैर्धावयद्भिः समाजगाम। श्वेतकेतुनारुणेयेन, सोमशुष्मेण सात्ययज्ञिना, याज्ञवल्क्येन।

अर्थात्—विदेह के राजा जनक का एक साथ जाते हुए श्वेतकेतु आदि ब्राह्मणों से समागम हुआ।

इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि—

(१) जनक।

(२) श्वेतकेतु आरुणेय।

(३) सोमशुष्म सात्ययज्ञि[1]। और

(४) याज्ञवल्क्य

समकालीन थे। यही परिणाम और प्रकार से भी निकलता है।

(ख) शतपथ ब्राह्मण १४। ९। ३। १५–२०॥ में निम्नलिखित वाक्य से आरम्भ करके एक गुरुशिष्य परम्परा दी है[2]—

तꣳ हैतमुद्दालक आरुणिः वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाच.........

अर्थात्—उस को उद्दालक आरुणि अपने शिष्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य के लिए बोला।......

---

१ सम्भवतः इसी सात्ययज्ञि का उल्लेख शतपथ १३। ५। ३। ९॥ में है— **तदु होवाच सात्ययज्ञिः।**

२ तथा देखो शतपथ १४।९।४। ३३॥

इस परम्परा का चित्र नीचे दिया जाता है—

(५)	१—उद्दालक आरुणि
(४)	२—वाजसनेय याज्ञवल्क्य
(६)	३—मधुक पैङ्ग्य[1]
(७)	४—चूड भागवित्ति
(८)	५—जानकि आयस्थूण
(९)	६—सत्यकाम जाबाल
	अनेक अन्तेवासी
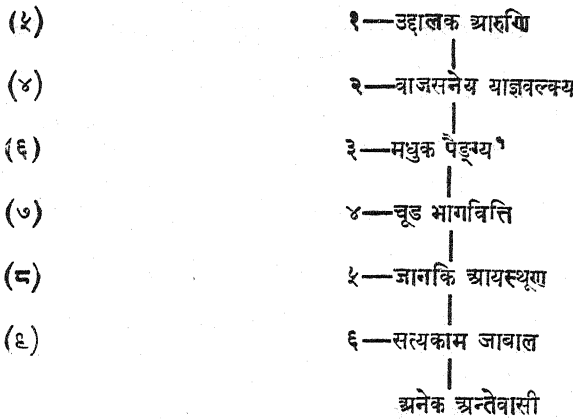
संख्या (२) का श्वेतकेतु आरुणेय संख्या (५) के उद्दालक आरुणि का पुत्र था। अतः गुरु-पुत्र होने से वह याज्ञवल्क्य का भ्राता[2] ही है।

(ग) उद्दालक आरुणि श्वेतकेतु का पिता था। इसमें छान्दोग्य उपनिषद् का प्रमाण है—

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस। तꣳह पितोवाच……। ६। १। १॥

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच……। ६। ८। १॥

(घ) चित्त शैलन संख्या (१) वाले जनक का समकालीन है, क्योंकि जैमिनीय ब्रा० १। २४५॥ में लिखा है—

चित्तो ह वै शैलनो जनकं वैदेहं समूदे।

अर्थात्—चित्त शैलन जनक वैदेह से बोला।

---

१ सम्भवतः यही पैङ्ग्य शतपथादि ब्राह्मणों में उद्धृत है। देखो शतपथ १२। २। २। ४॥ और १२। ३। १। ८॥ में लिखा है—

एतद्ध स्म तद्विद्वानाह पैङ्ग्यः।

अर्थात्—यह जानते हुए पैङ्ग्य बोला। तथा मधुक नाम से इसी का उल्लेख कौ० १६। ९॥ में है। बृहद्देवता १। २४॥ में भी इस का उल्लेख है।

२ याज्ञवल्क्य के समान यह भी संन्यासी हो गया था। देखो जाबाल उपनिषद्—

परमहंसानाम संवर्तक-आरुणिः श्वेतकेतुः ॥६॥

देखो, नारदपरिव्राजकोपनिषद् ८६।

(१०) चित्त शैलन

(ङ) आजातशत्रु भद्रसेन संख्या (५) वाले उद्दालक आरुणि का समकालीन था। शतपथ ५।५।५।१४॥ में लिखा है—

भद्रसेनमाजातशत्रवमारुणिरभिचचार।

अर्थात्—आजातशत्रु के पुत्र भद्रसेन पर आरुणि ने अभिचार कर्म किया।

(११) भद्रसेन

(च) इसी उद्दालक को चित्र गार्ग्यायणि ने स्वयज्ञार्थ वरा था—

चित्रो ह वै गार्ग्यायणिर्यक्ष्यमाण आरुणिं वव्रे। स ह पुत्रं श्वेतकेतुं प्रजिगाय याजयेति। कौषीतकि उप० १।१॥

अर्थात्—यज्ञ करने की इच्छा करने वाले चित्र गार्ग्यायणि ने आरुणि को वरा। वह पुत्र श्वेतकेतु को बोला, तुम यज्ञ कराओ।

(१२) चित्र गार्ग्यायणि।[1]

(छ) जनक की महती सभा में गुरु उद्दालक[2] भी शिष्य याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछता है—

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्य। श० १४। ६। ७।१॥

(१३) कहोल कौषीतक

इसी उद्दालक आरुणि का शिष्य था। शांखायन आरण्यक १५।१॥ में लिखा है।

कहोलः कौषीतकिरुद्दालकादारुणेः।

(ज) संख्या (६) का सत्यकाम जाबाल[3] ही जनक को कुछ उपदेश दे गया था। उसी उपदेश को याज्ञवल्क्य जनक से सुन रहा है। जनक कहता है—

अब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालः। शतपथ १४। ६। १०। १४॥

(झ) इसी संख्या (६) वाले सत्यकाम जाबाल का एक गुरु—

स (सत्यकामो जाबालः) ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच।

छा० उ० ४। ४। ३॥

(१४) हारिद्रुमत गौतम था।

---

१ कई सम्पादकों ने यहां गाङ्गायनि पाठ शुद्ध माना है। परन्तु जै० ब्रा० २।३॥ में गार्ग्यायणि पाठ ही मिलता है।

२ इसी का पिता अरुण औपवेशि था। देखो शतपथ १४। ६। १३॥ तथा— **ऐतद्ध स्म वा आहारुण औपवेशिः।** मै० सं० १।४।१०॥३।६।४॥

३ इसी का कथन शतपथ १३।५।३।१॥ में किया गया है—

इति ह स्माह सत्यकामो जाबालः

(ञ) एक वार श्वेतकेतु आरुणेय ने वैश्वासव्य को अपना होता बनाया था। शतपथ १०।३।४।१॥ में लिखा है—

श्वेतकेतुर्हारुणेयः यक्ष्यमाण आस।............

स होवाचार्यं न्वेव मे वैश्वासव्यो होतेति।

(१५) वैश्वासव्य।

(ट) श्वतकेतु आरुणेय ही

(१६) पञ्चालाधिपति प्रवाहण जैवलि के समीप गया था—

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय। तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच। छा० उ० ५। ३। १॥[1]

लगभग ऐसा ही पाठ बृहदारण्यक ६।२।१॥ में भी है।

(ठ) मनुभाष्यकार मेधातिथि ३।१४०॥ में किसी लुप्त ब्राह्मण से श्वेतकेतु सम्बन्धी एक पाठ उद्धृत करता है—

श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः। अस्ति मे पञ्चालेषु क्षत्रियो मित्रम्, इति।

(ड) इसी जाबाल के पास शातपर्णेय धीर गया था। शतपथ १०। ३।३।१॥ में लिखा है—

धीरो ह शातपर्णेय. महाशालं जाबालमुपोत्ससाद।

(१७) धीर शातपर्णेय

(ढ) यही श्वेतकेतु जब ब्रह्मचारी था, तब—

(१८) अश्विद्वय ने इस की चिकित्सा की थी। देखो विश्वरूपाचार्यकृत बालक्रीडा टीका १।३२॥ में चरकों का उद्धृत पाठ—

तथा च चरकाः पठन्ति—

श्वेतकेतुं हारुणेयं ब्रह्मचर्यं चरन्तं किलासो जग्राह। तमश्विनावूचतुः। 'मधुमांसौ किल ते भैषज्यम्' इति।

अर्थात्—श्वेतकेतु आरुणेय को, जब वह ब्रह्मचारी ही था, किलास (एक प्रकार का कुष्ट) रोग हुआ। उसे अश्विद्वय बोले—मधु और मांस तेरा औषध है।

(ण) संख्या (१६) वाले प्रवाहण जैवलि का

(१९) शिलक शालावत्य, और

---

१. तुलना करो शतपथ १४।६।१।१॥

(२०) चैकितायन दाल्भ्य[1] से संवाद हुआ था। क्योंकि बृहदारण्यक में निम्नलिखित वाक्य से आरम्भ कर के उन का संवाद कहा है—

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः। शिलकः शालावत्यः। चैकितायनो दाल्भ्यः। प्रवाहणो जैवलिः। ६। २। ३॥

अर्थात्—तीनों ही उद्गीथ में कुशल थे। शिलक शालावत्य, चैकितायन दाल्भ्य और प्रवाहण जैवलि।

(त) संख्या (२०) वाले चैकितायन दाल्भ्य का भ्राता

(२१) बक दाल्भ्य प्रतीत होता है।

(थ) इस बक दाल्भ्य तथा

(२२) ग्लाव मैत्रेय[2]

का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् में है—

अथातः शौव उद्गीथः। तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्व्राज। १।१२।१॥

(द) ग्लाव मैत्रेय का गुरु

(२३) मौद्गल्य

था। यह गोपथ पू० १। ३१॥ में लिखा है—

एतद्ध स्मैतद्विद्वांसमेकादशाक्षं मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयोऽभ्याजगाम।

(ध) इन्हीं (२०) और (२१) संख्या वाले दोनों व्यक्तियों का भ्राता

(२४) केशी दार्भ्य[3] प्रतीत होता है।

केशी ह दार्भ्यो दीक्षितो निषसाद। कौ० ७। ४॥

(न) इसी केशी दार्भ्य को

(२५) केशी सात्यकामि ने उपदेश दिया था।

मै० सं० १। ६। ५॥ में लिखा है—

---

१ इसी व्यक्ति का कथन छा० उ० १। ८। १॥ में किया गया है।

२ इसी का उल्लेख षड्विंश १। ४। ६॥ में मिलता है।

३ दाल्भ्य और दार्भ्य में कोई भेद नहीं। देशविशेषों में ग्रन्थों के लिखे जाने के कारण ही ल् और र् का भेद हो गया है। मैत्रा० सं० २। १। ३॥ में एक रथप्रोत दार्भ्य का उल्लेख है।

एतद्ध स्म वा आह केशी सात्यकामिः केशिनं दार्भ्यम् ।

तै० सं० २ । ६ । २[१०] ॥ में भी लिखा है—

केशिनꣳ ह दार्भ्यं केशी सात्यकामिरुवाच ।

(प) इसी केशी दार्भ्य ने

(२६) षण्डिक औद्धारि को कहा था ।

मै० सं० १ । ४ । १२ ॥ में लिखा है—

ततः केशी षण्डिकमौद्धारिमभ्यवदत् ।

(फ) इन्हीं दार्भ्यों के पिता

(२७) दर्भ का वर्णन जै० ब्रा० २।१००॥ में मिलता है ।

दर्भमु ह वै शातानीकं पञ्चाला राजानं सन्तं नापचायं चक्रुः ।

(ब) केशी दार्भ्य

(२८) सुत्वा याज्ञसेन का समकालीन था । जै० ब्रा० २ । ५३ ॥ में लिखा है—

केशी ह दार्भ्यो दर्भपर्णयोर्दिदीक्षे । अथ ह सुत्वा याज्ञसेनो हंसो हिरण्मयो भूत्वा यूप उपविवेश ।

(भ) संख्या (२४) के केशी दार्भ्य और (२५) के केशी सात्यकामि का पुरोहित

(२९) अहीनस् आश्वत्थि था । जै० ब्रा० १। २८५॥ में लिखा है—

अथ हाहीनसमाश्वत्थिं केशी दार्भ्यः केशिनः सात्यकामिनः पुरोधाया अपरुरोध । स हि स्थविरतरोऽहीन आस कुमारतरः केशी ।

(म) संख्या (५) वाले उद्दालक आरुणि का विचार—

(३०) शौनक स्वैदायन से हुआ । देखो—

उद्दालको हारुणिः...... । हन्तैनं ब्रह्मोद्यमाह्वयामहा इति । केन वीरेणेति । स्वैदायनेनेति । शौनको ह स्वैदायन आस ।[१]

शतपथ ११ । ४ । १ । १ ॥

(य) इसी उद्दालक आरुणि के समीप—

---

१ इसी भाव का पाठ गोपथ पू० ३ । ६॥ में भी है ।

(३१) शौचेय प्राचीनयोग्य आया था—

शौचेयो ह प्राचीनयोग्यः । उद्दालकमारुणिमाजगाम ।
श० ११ । ५ । ३ । १ ॥

(र) इसी उद्दालक के समीप

(३२) प्रोति कौशाम्बेय कौसुरबिन्दि ने ब्रह्मचर्य वास किया था—

प्रोतिर्ह कौशाम्बेयः ।[1] कौसुरुबिन्दिरुद्दालक आरुणौ ब्रह्मचर्यमुवास । श० १२ । २ । २ । १३ ॥

(ल) इस प्रोति कौसुरुबिन्दि का पिता—

(३३) कुसुरुबिन्द ।

उद्दालक का पुत्र वा शिष्य ही था । क्योंकि तैत्तिरीय संहिता में निम्नलिखित वाक्य मिलता है—

कुसुरुबिन्द औद्दालकिरकामयत । ७ । २ । २ ॥[2]

ऐसा ही भाव ता० ब्रा० २२ । १५ । १० ॥ पर है ।

एतेन वै कुसुरुविन्द औद्दालकिरिष्ट्वा भूमानमाश्नुत ।

इसी का नाम जैमिनीय ब्रा० १ । ७५ ॥ में भी मिलता है ।

कुसुरविन्दे हौद्दालकिस्सोमानामुज्जगौ ।

(व) इसी आरुणि का समकालीन

(३४) जीवल चैलकि

था । क्योंकि शतपथ २ । ३ । १ । ३४ ॥ में लिखा है ।

तदु होवाच जीवलश्चैलकिः । गर्भमेवारुणिः करोति न प्रजनयतीति ।

(श) इसी उद्दालक आरुणि के समीप—

---

१ इसी को गोपथ, पू० ४२।४॥ में ऐसे लिखा है—**प्रेदिर्ह वै कौशाम्बेयः**··· । इन दोनों में से शतपथ का पाठ शुद्ध और प्राचीन प्रतीत होता है ।

२ इसी का नाम षड्विंश १ । ४ । १६॥ में मिलता है । ब्राह्मणों को वेद मानने वाला शबरस्वामी मीमांसासूत्र १ । १ ।२८॥ पर लिखता हुआ यही तै० सं० का प्रमाण पूर्वपक्ष में रख कर लिखता है, कि यह व्यक्तिविशेष का नाम नहीं है ।

(३५) प्राचीनशाल औपमन्यव ।

(३६) सत्ययज्ञ[1] पौलुषि ।

(३७) इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय ।

(३८) जन शार्कराक्ष्य ।

(३९) बुडिल आश्वतराश्वि ।[2]

ये पांच महाश्रोत्रिय गये थे । क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विः ······ ॥ १ ॥ ते ह संवादयां चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमभ्येति ॥२॥ ५ । ११ ॥

लगभग ऐसा ही पाठ शतपथ १०।६।१।१॥ में पाया जाता है—

अथ हैत ऽरुणे औपवेशौ समाजग्मुः । सत्ययज्ञः पौलुषिर्महाशालो जाबालो बुडिल आश्वतराश्विरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यः··· । ते होचुः । अश्वपतिर्वा अयं कैकेयः सम्प्रति वैश्वानरं वेद ।

छान्दोग्य उप० में जिसे **प्राचीनशाल औपमन्यव**[3] कहा है, उसे ही शतपथ में **महाशाल जाबाल** कहा है । ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के प्रतीत होते हैं । शतपथ के इसी प्रमाण के आगे छठी कण्डिका में लिखा है—

अथ होवाच महाशालं जाबालम् । औपमन्यव !

यह औपमन्यव विशेषण दोनों स्थानों में समान है । इस से भी हमारे इस अनुमान की पुष्टि होती है, कि प्राचीनशाल औपमन्यव=महाशाल जाबाल है ।

(५) इन्हीं आरुणि और इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय के साथी

(४०) जीवल कारीरादि, और

---

१ संख्या (३) वाला सोमशुष्म इसी सत्ययज्ञ का पुत्र प्रतीत होता है ।

२ इसी का संख्या (१) वाले जनक से संवाद हुआ था । देखो—

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच । श० १४ । ८ । १५ । ११ ॥

३ क्या गोपथ पू० ३।११॥ में **प्राचीनयोग्य** इसी का नाम है ।

(४१) आषाढ सावयस[1]

थे। जै० ब्रा० १। २७१॥ में लिखा है—

अथैतेषां महतां ब्राह्मणानां समुदितम्। आरुणेर्जीवलस्य कारीरादेराषाढस्य सावयसस्येन्द्रद्युम्नस्य भाल्लवेयस्येति। जीवलश्च ह कारीरादिरिन्द्रद्युम्नश्च भाल्लवेयस्तौ हारुणेराचार्यस्य सभाग आजग्मतुः।...स होवाचषाढ आमारुणे यत्सहैव ब्रह्मचर्यम चराव।

(स) इन संख्या (३५-४०) वाले पांचों जिज्ञासुओं को साथ लेकर उद्दालक आरुणि—

(४२) महाराज अश्वपति के समीप गये थे—

तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति। छा० उ० ५।११।४॥

(४३) बर्कु वार्ष्ण[2]

(४४) प्रिय जानश्रुतेय

भी आरुणि आदि के समकालीन थे। जै० ब्रा० १। २२॥ में लिखा है—

आरुणिर्वाजसनेयो बर्कुर्वार्ष्णः प्रियो जानश्रुतेयो बुडिल आश्वतराश्विर्वैयाघ्रपद्य इत्येते ह पञ्च महाब्राह्मणा आसुः। ते होचुर्जनको वा अयं वैदेहो ऽग्निहोत्रे ऽनुशिष्टः।

इस प्रमाण से बहुत ही स्पष्ट हो जाता है, कि उद्दालक आरुणि, याज्ञवल्क्य वाजसनेय, **बर्कु वार्ष्ण**, प्रिय जानश्रुतेय और बुडिल आश्वतराश्वि, जनक वैदेह के समकालीन थे।

'ऐतरेय ब्रा० के कुछ अधिक पुराना होने में' डाक्टर कीथ के हेतु का खण्डन करते हुए पृ० ७ पर हम ने लिखा था, कि ऐतरेय ६। ३०॥ में **बुलिल आश्वतराश्वि** का उल्लेख है। पूर्वोक्त जै० ब्रा० के प्रमाण में तो साक्षात् ही यह बुडिल आश्वतराश्वि, आरुणि का समकालीन है, इस लिए कीथ के कथन का कोई आदर नहीं हो सकता।

---

१ तुलना करो जै० ब्रा० (प्रो० कालण्ड का सार १६४) **तदु होवाचारुणिराषाढं सावयसमुन्मृजमानम्।**

२ इसी का उल्लेख श० २।१।४।६॥ में है।

(ह) संख्या (२८) वाले केशी सात्यकामि के

(४५) खर्गल

(४६) उद्धार

(४७) गङ्गिना राहच्चित

(४८) लुषाकपि खार्गलि

समकालीन थे। जै० ब्रा० २। १२२॥ में लिखा है—

अथैष परिक्रीः। खण्डिकश्च हौद्धारिः केशी च दार्भ्यः पञ्चालेषु पस्पृधाते। स ह खण्डिकः केशिनमभिप्रजिघाय।...तस्य हैते ब्राह्मणा आसुः। अहीना आश्वत्थिः केशी सात्यकामिर्गङ्गिना राहक्षितो लुषाकपिः खार्गलिरिति।

यह खण्डिक औद्धारि संख्या (३७) वाला षण्डिक औद्धारि ही है।

(क[१]) संख्या (१) वाले जनक वैदेह का समकालीन

(४९) सुदक्षिण चैमि

था। जै० ब्रा० २। ११३॥ में लिखा है—

तेन हैतेन जनको वैदेह इयक्षां चक्रे। तमु ह ब्राह्मणा अभितो निषेदुः। स ह प्रप्रच्छ। कस्तोम इति। स होवाच सुदक्षिणः क्षैमिः।

(ख[१]) संख्या (२४) वाले केशी दार्भ्य का साथी

(५०) हिरण्मय शकुन

था। कौषीतकि ब्रा० ७। ४॥ में लिखा है—

केशी ह दार्भ्यो दीक्षितो निषसाद। तं ह हिरण्मयः शकुन आपत्योवाच।

(ग[१]) संख्या (२८) वाले सुत्वा याज्ञसेन का भ्राता

(५१) शिखण्डी याज्ञसेन

प्रतीत होता है। इसी शिखण्डी के साथी

(५२) आसोल वार्ष्णिवृद्ध, और

(५३) इटन् काव्य

थे। कौ० ब्रा० ७। ४॥ में लिखा है—

स ह स आसोलो वा वार्ष्णिवृद्ध इटन्वा काव्यः शिखण्डी वा याज्ञसेनो यो वा स आस स स आस ।

(घ[१]) संख्या (३६) वाले बुडिल आश्वतराश्वि का साथी

(५४) गौश्ल

था । ऐतरेय ६ । ३० ॥ में लिखा है—

स ह बुलिल आश्वतर आश्विर्वैश्वजितो होता सन्नीत्तां चक्रे ।··· ···तद्ध तथा शस्यमाने गौश्ल आजगाम ।

यही परिणाम और प्रकार से भी निकलता है । गौश्ल और गौश्र एक ही नाम है । संख्या (६) में हम एक मधुक पैङ्गय का नाम लिख चुके हैं । वही मधुक इस गौश्र का समकालीन है । देखो, कौषीतकि ब्रा० १६।९॥ में लिखा है—

किंदेवत्यः सोम इति मधुको गौश्रं पप्रच्छ ।

(ङ[१]) संख्या (५) वाले आरुणि का साथी

(५५) गलुना आर्क्षाकायण

था । जै० ब्रा० १ । ३१६ ॥ में लिखा है—

ता हैता गलुना आर्क्षकायणः शालापतय आरुणेरधि जगे ।

(च[१]) इसी संख्या (५५) वाले गलुना आर्चकायण का साथी

(५६) ब्रह्मदत्त चैकितानेय

और समकालीन

(५७) ब्रह्मदत्त प्रासेनजित राजा

था । जै० ब्रा० १ । ३३७ ॥ में लिखा है—

तद्ध तथा गायन्तं ब्रह्मदत्तं चैकितानेयं गलुना आर्क्षाकायणो ऽनुव्याजहार ।···अथ ह ब्रह्मदत्तं चैकितानेयं ब्रह्मदत्तः प्रासेन-जितः कौसल्यो राजा पुरो दधे ।

(छ[१]) संख्या (९) वाले सत्यकाम जाबाल का शिष्य

(५८)[१] उपकोसल कामलायन

था । छान्दोग्य उप० ४ । १० । १ ॥ में लिखा है—

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास ।

---

१ इनमें से कुछ नाम पारजिटर ने अपने ग्रन्थ A.I.H. Traditon पृ० ३२७ और ३२८ पर दिए हैं ।

अब कहां तक लिखें। सैंकड़ों ही और नाम हैं, जो इस सूची में जोड़े जा सकते हैं। ये अठावन महाश्रोत्रिय, सत्यवक्ता महाशय आचार्य वा राजगण लगभग समकालिक ही थे। इन में से (१) पुलुष (२) अजातशत्रु (३) शतानीक पहली पीढ़ी में, और (१) उद्दालक (२) सत्ययज्ञ (३) भद्रसेन (४) हारिद्रुमत गौतम (५) जीवल (६) दर्भ (७) मौद्गल्य (८) यज्ञसेन (९) शौनक स्वैदायन (१०) शौचेय प्राचीनयोग्य आदि दूसरी पीढ़ी में और शेष आचार्य और राजगण लगभग तीसरी पीढ़ी में होते हैं।
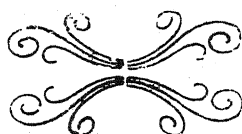
छठा अध्याय

ब्राह्मणों का संकलन काल

ब्राह्मण-ग्रन्थों की मौलिक सामग्री प्राचीनतम कालों से चली आई है। शतपथ १०।६।५।६॥१४।७।३।२८॥ वा बृहदारण्यक ४।६।३॥६।५।४॥ के वंश ब्राह्मणों के अनुसार ब्राह्मण-वाक्यों का ज्ञात आदि-प्रवचनकर्त्ता ब्रह्मा=स्वयम्भु ब्रह्म हुआ है। प्रजापति[1], मन्वादि[2] महर्षियों ने भी अनेक ब्राह्मण-वाक्यों का प्रवचन किया था। ऐसे ही अन्य ऋषि लोग भी समय २ पर इन ब्राह्मणों के पाठों का प्रवचन करते आये हैं। इन सब का संकलन महाभारत-काल[3] अर्थात् द्वापर के अन्त या कलि के आरम्भ में भगवान् कृष्ण-द्वैपायन वेद-व्यास वा उन के शिष्य प्रशिष्यों ने किया था। इसमें प्रमाण भी है। शतपथादि ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं, जो महाभारत-काल से कुछ ही पहले के थे। देखो—

> तेन हैतेन भरतो दौःषन्तिरीजे……… ।
> तदेतद् गाथयाभिगीतम्—
> अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु ।
> गङ्गायां वृत्रघ्ने ऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतꣳ हयान् ॥इति॥११॥
> शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे… ॥ १३ ॥
> महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
> दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः ॥इति॥१४॥

शतपथ १३। ५। ४॥

---

१ आधानं ब्राह्मणं प्रजापतेः। इष्टि-ब्राह्मणानि प्रजापतेः॥ चारायणीय मन्त्रार्षाध्यायः ६, ११॥

२ आपो वा इदं निरमृजन्। स मनुरेवोदशिष्यत। स एतामिष्टिमपश्यत्तामाहरत्तयायजत… ॥ काठक सं० ११। २,॥ तथा देखो तै० सं० ३। १। ६। ३०॥

३ महाभारत काल से हमारा अभिप्राय महाभारत-युद्ध के लगभग १०० वर्ष पूर्व और १०० वर्ष उत्तर का है। महाभारत-युद्ध विक्रम संवत् से ३००० वर्ष से कुछ पूर्व हुआ था।

शतानीकः समन्तासु मेध्य१ँ सात्राजितो हयम् ।
आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिव ॥ इति ॥

शत० १३।५।४।२१॥

तथा च—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण
दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच ।
.........तदप्येते श्लोका अभिगीताः ।
हिरण्येन परीवृतान् कृष्णान् शुक्लदतो मृगान् ।
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च ॥
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचिगुणे चितः ।
यस्मिन्त्सहस्रं ब्राह्मणा बद्वशो गावि भेजिरे ॥
अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां वृत्रघ्ने ऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान् ॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजा ऽश्वान् बध्वाय मेध्यान् ।
दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायावत्तरः ॥
महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः ॥ इति

ऐतरेय ब्रा० ८ । २३ ॥

इन गाथाओं=यज्ञगाथाओं=श्लोकों[1] में वर्तमान दौष्यन्ति भरत, शतानीक और शकुन्तला नाम स्पष्ट महाभारत-काल से कुछ ही पहले होने वाले व्यक्तियों के हैं । अतः शतपथादि ब्राह्मण महाभारत-काल में ही संकलित हुए, ऐसा मानना युक्तियुक्त है ।

पूर्वपक्षी कहता है—(क) ये सब नाम यौगिक होने से अपने धात्वर्थ मात्र का निर्देश करते हैं । (ख) दुःष्यन्त, भरत, शतानीक, शकुन्तला आदि नाम व्यक्ति-वाची

१ ऐतरेय ८।२३॥ जिसे श्लोक कहता है शतपथ १३। ५। ४। १४॥ उसे गाथा कहता है, और जैमिनीय १। २५८॥ जिसे श्लोक कहता है, ऐतरेय ३।४३॥ उसे ही यज्ञगाथा कहता है । अतएव श्लोक, गाथा और यज्ञगाथा, यह तीनों शब्द लगभग पर्याय ही हैं ।

नहीं है, प्रत्युत जातिवाची हैं। जैसे गौ, अश्व, पुरुष, हस्ति आदि नाम जातिवाची हैं, ऐसे ही अनेक कल्पों में होने वाले दुःष्यन्त, भरत आदिकों के लिये, यह भी जातिवाची नाम हैं। अतएव ऐसे नामों के ब्राह्मणों में आने से ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत-कालीन नहीं कहे जा सकते।

इस पर हमारा कथन है, कि—(क) जो यज्ञगाथायें हमने प्रमाणार्थ उद्धृत की हैं, वे सब पौरुषेय हैं। उनके पौरुषेय होने में जो प्रमाण हैं, वे आगे "क्या ब्राह्मण वेद हैं" इस अध्याय में दिये जायेंगे। अतः पौरुषेय वाक्यों को "श्रुतिसामान्यमात्र" मान कर अर्थ करना कल्पनामात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मन्त्र-संहिताओं में जो नियम चरितार्थ होते हैं वे मनुष्य रचित ग्रन्थों में नहीं हो सकते। (ख) दुःष्यन्त भरत आदि शब्दों को हम जातिवाची भी नहीं मान सकते। क्योंकि वहां भी वही पौरुषेय की आपत्ति आयेगी। जिन नवीन मीमांसकों ने "वेदों" में विश्वामित्र आदि शब्दों को जातिवाची माना है, उन्होंने भी अपौरुषेय वेदों में ही माना है। और हम तो उनकी इस कल्पना को भी निराधार ही मानते हैं।

देखो, इन के अतिरिक्त महाभारत युद्धसे कुछ ही पूर्व काल के और भी अनेक व्यक्तियों के नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

एतेन हैन्द्रोतो दैवापः शौनकः। जनमेजयं पारिक्षितं याजयां चकार.................. ॥ १ ॥

तदेतद्गाथयाभिगीतम्—

आसन्दीवति धान्यादꣳ रुक्मिणꣳ हरितस्रजम्।

अबध्नादश्वꣳ सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥ इति ॥ २ ॥

शतपथ १३।५।४॥

तथा च—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो[1] जनमेजयं[2] पारिक्षितमभिषिषेच। ...तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते—

आसंदीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्।

अश्वं बबंध सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥ इति

ऐतरेय ८। २१॥

---

१ इसी **तुरः कावषेय** का उल्लेख शतपथ ६।८।३।१५॥ में है।

२ इसी जनमेजय का नाम ऐ० ब्रा० ७।२७॥७।३४॥ में आता है।

यद्यपि महाभारत-काल में भी पाण्डवों की सन्तति में "पारिक्षित जनमेजय" हुआ है, तथापि यह व्यक्ति उससे कुछ पूर्वकालीन है। देखो महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय १५६ में कहा है—

भीष्म उवाच—

> **अत्र ते वर्तयिष्यामि पुराणमृषिसंस्तुतम्।**
> **इन्द्रोतः शौनको[1] विप्रो यदाह जनमेजयम्॥ २॥**
> **आसीद्राजा महावीर्यः पारिक्षिज्जनमेजयः।**

तथा अध्याय १५१ में—

> **एवमुक्त्वा तु राजानमिन्द्रोतो जनमेजयम्।**
> **याजयामास विधिवद् वाजिमेधेन शौनकः॥ ३८॥**

यहां भीष्म जी महाराज युधिष्ठिर को कह रहे हैं कि—

"महावीर्यवान् राजा पारिक्षित् जनमेजय हुआ था।"

अतः ब्राह्मणान्तर्गत गाथास्थ 'पारिक्षित जनमेजय'[2] महाभारत-काल से कुछ पहले हो चुका था।

प्रो॰ घाटे अपने Lectures on the Rigveda में लिखते हैं—

जनमेजय the celebrated King of the कुरु s in the महाभारत is mentioned here for the first time in this शतपथ ब्राह्मण (दूसरा संस्करण, पृ॰ ३६)

अर्थात्—महाभारत का प्रसिद्ध सम्राट् जनमेजय यहां शतपथ में पहली वार वर्णन किया गया है।

घाटे महाशय का अभिप्राय पाण्डवों के पौत्र जनमेजय से प्रतीत होता है। यदि उन का भाव ऐसा ही था, तो यह उन की भूल थी। शतपथ में जिस जनमेजय का उल्लेख है, वह युधिष्ठिर जी से भी कुछ काल पहले हो चुका था।

अथर्ववेद २०। १२७। ७-१०॥ में महाराज परिक्षित् का वर्णन है। उसे कौरव्य भी कहा है। पं॰ भगवान दास पाठक अपने ग्रन्थ Hindu Aryan

---

१ शतपथ १३। ५। ३। ५॥ में **इन्द्रोत शौनक** का नाम मिलता है।

२ गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग २। ५॥ में जिस **जनमेजय पारीक्षित** का वर्णन आया है, वह भी यही व्यक्ति प्रतीत होता है।

Astronomy and Antiquity of Aryan Race (सन् १९२०) पृ० ४६ पर अथर्ववेद के महाभारतोत्तर-कालीन होने में यह एक युक्ति देते हैं।

हम ऐसा स्वीकार नहीं करते। अथर्ववेद के जिस सूक्त में परिक्षित् शब्द आया है वह कुन्ताप सूक्तों में से पहला है। कुन्ताप सूक्त अथर्वसंहितान्तर्गत नहीं हैं। इन सूक्तों का पदपाठ भी नहीं है। अनुक्रमणिका में इन्हें खिल कहा है। इन सूक्तों में परिक्षित शब्द के आ जाने से सारी संहिता महाभारतोत्तर-कालीन नहीं कही जा सकती। और वस्तुतः इन मन्त्रों में भी परिक्षित आदि पदों का अर्थ संवत्सर तथा अग्नि ही है। देखो ऐ० ब्रा० ६। ३२॥ और गो० उ० ६। १२॥ यहां किसी राजा आदि का वर्णन नहीं है। विस्तरभय से मन्त्रार्थ नहीं किये गये।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के महाभारत-कालीन[१] होने में और भी प्रमाण देखो।

(क) महाभारत आदिपर्व अध्याय ६४ में लिखा है—

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाङ्क्षया।
विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥१३०॥
वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥१३१॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥१३२॥

अर्थात् वेदव्यास के सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल चार शिष्य थे। इन्हीं

---

१ महाशय L. A. Waddell अपने पुस्तक Indo-Sumerian Seals Deciphered (सन् १९२५) पृ० ३ पर महाभारत-युद्ध का काल बताते हुए सब पाश्चात्य लेखकों को मात कर गये हैं। वे लिखते हैं—

....at the time of the Mahabharata War about 650 B. C., was the Bharat Khattiyo (क्षत्रिय) King Dhritarashtra,...

यह लिखते समय वे उस भारतीय ऐतिह्य को भूल गये हैं, जिस पर अपने पुस्तक के अन्य स्थलों में वे बड़ी श्रद्धा दिखाते हैं। क्या उन्हें इतना भी स्मरण नहीं रहा कि धृतराष्ट्र तो गौतम बुद्ध के काल से सैकड़ों ही नहीं, सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था। समस्त भारतीय राज-वंशावलियां इस बात का अकाट्य प्रमाण हैं।

चारों को उन्हों ने मुख्यतः से वेदादि पढ़ाये। वैशंपायन को ही चरक कहते हैं। काशिकावृत्ति ४। ३। १०४॥ में लिखा है—

वैशंपायनान्तेवासिनो नव।......

चरक इति वैशंपायनस्याख्या।

तत्संबन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते।

पुनः महाभाष्य ४। ३। १०४॥ पर पतञ्जलि मुनि लिखता है—

वैशंपायनान्तेवासी कठः। कठान्तेवासी खाडायनः।

वैशंपायनान्तेवासी कलापी।

यह शिष्य-परम्परा निम्नलिखित प्रकार से सुस्पष्ट हो जायगी।
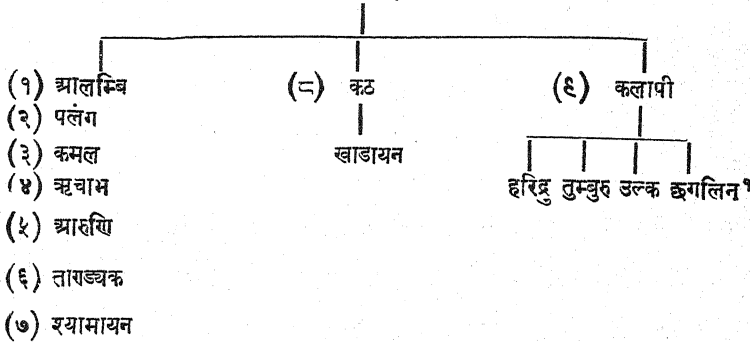
इन में से १—३ प्राच्य; ४—६ उदीच्य और ७—९ माध्यम हैं। देखो महाभाष्य ४।२।१३८॥ और काशिकावृत्ति ४। ३। १०४॥[2] पूर्वोक्त नामों में से—

(१) हारिद्रविणः[3]।

---

१ श्रीपाद कृष्ण बेल्वल्कर ने जो Four Unpublished Upanisadic Texts (सन् १९२५) में छागलेयोपनिषद् छापा है। वह इसी ऋषि का प्रवचन प्रतीत होता है। इस उपनिषद् के आर्ष होने में सन्देह नहीं। पाणिनि सूत्र "छगलिनो ढिनुक्" ४। ३। १०९॥ में इसी ऋषि के प्रोक्त-ब्राह्मण का वर्णन है।

२ वायु पुराण पू० ६०। ७—९॥ में इस से स्वल्पभेद है।

३ यही हारिद्रविक हैं जिनकी संहिता वा ब्राह्मण का प्रमाण निरुक्त १०।५॥ में ऐसे दिया है—"यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्" इति हारिद्रविकम्।

(२) तौम्बुरविणः ।

(३) आरुणिनः ।

ये तीन महाशय महाभाष्य ४ । २ । १०४ ॥ में ब्राह्मण-ग्रन्थ प्रवचनकर्त्ता कहे गये हैं । अतः यह निर्विवाद है कि साम्प्रतिक सब ब्राह्मण-ग्रन्थ जिन के प्रवक्ता वेदव्यास के शिष्य प्रशिष्य आदि हैं, महाभारत-काल में ही संगृहीत हुए ।

वेदसर्वस्व के कर्ता स्वामी हरिप्रसाद लिखते हैं—

"पतञ्जलि ने···कठ ऋषि को **वैशम्पायन** का शिष्य लिखा है ।···। चरण-व्यूह के कर्ता ने कठ को **चरक** ऋषि का शिष्य लिखा है । उक्त दोनों मतों में अमुक ठीक और अमुक अठीक, यह सहसा कहना यद्यपि उचित प्रतीत नहीं होता, तथापि न्यायदृष्टि से देखा जाय तो चरणव्यूह के कर्ता का मत ही ठीक कहना पड़ता है, पतञ्जलि मुनि का नहीं ।"

स्वामी हरिप्रसाद की महाभ्रान्ति का कारण यही है कि वह चरक और वैशंपायन को दो व्यक्ति मानते हैं । हमारे पूर्वोक्त लेख से यह निश्चित हो चुका है कि वैशंपायन का ही दूसरा नाम चरक है । इस लिए स्वामी हरिप्रसाद ने जो पतञ्जलि को दोषी ठहराया है, यह पतञ्जलि का तो नहीं, उन का अपना ही दोष है ।

अनेक इतिहास-ज्ञान-शून्य "पण्डित" कहते हैं, कि ये सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल किसी पहले युग वाले व्यास के शिष्य थे । वे पाराशर्य व्यास के शिष्य न थे, अतः यही ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत से बहुत पहले काल के हैं ।

परन्तु यह सर्वथैव निराधार कल्पना है । यह आर्येतिहास के विरुद्ध है । देखो महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३३५ में कहा है—

विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः ।

वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान् महातपाः ॥२६॥

सुमन्तुं च महाभागं वैशंपायनमेव च ।

जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥२७॥

यहां स्पष्ट ही कहा है कि ये सुमन्त्वादि पाराशर्य व्यास के शिष्य थे । और क्योंकि ये सब ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रवचनकर्त्ता थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ द्वापरान्त में ही एकत्र किए गए थे ।

(ख) याज्ञवल्क्य भी महाभारत-कालीन ही है । महाभारत सभापर्व, अध्याय ४ में लिखा है—

बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनः शुकः ।
सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम् ॥१७॥
तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षणः ।

अर्थात्—बक दाल्भ्य, स्थूलशिर, कृष्णद्वैपायन, शुक, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, तित्तिरि, याज्ञवल्क्य, ये सब महाशय ऋषि महाराज युधिष्ठिर की सभा को सुशोभित कर रहे थे ।

शतपथ ब्रा० याज्ञवल्क्य-प्रोक्त है । उसके विषय में काशिकावृत्ति ४।३।१०५॥ पर लिखा है—

ब्राह्मणेषु तावत्—भाल्लविनः । शाट्यायनिनः । ऐतरेयिणः ।
......पुराणप्रोक्तेष्विति किम् । याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि ।
...... । याज्ञवल्क्यादयो ऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता ।

जयादित्य का यह लेख महाभाष्य से विरुद्ध है । हम अपने "ऋग्वेद पर व्याख्यान" पृ० ५८ पर यह बता चुके हैं । जयादित्य के सन्देह का कारण कोई प्राचीन "आख्यान" है । परन्तु उससे जयादित्य का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता । ब्राह्मण-ग्रन्थों के अवान्तर भागों को भी ब्राह्मण कहते हैं । शतपथ ब्राह्मण के अनेक अवान्तर ब्राह्मण अत्यन्त प्राचीन हैं । वे ब्राह्मण प्रजापति आदि ऋषियों ने कहे थे । उनकी अपेक्षा याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण नवीन हैं । आख्यानान्तर्गत लेख का अभिप्राय समग्र शतपथ ब्राह्मण से नहीं, प्रत्युत उसके अवान्तर ब्राह्मणों से है । शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन तो तभी हुआ था जब कि भाल्लवि, शाट्यायन और ऐतरेय आदि ब्राह्मणों का प्रवचन हुआ था । इनमें से ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता महिदास, सुमन्तु आदि से कुछ उत्तरकालीन है । देखो आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।४॥ यहां ऐतरेय आदि सुमन्तु आदि से उत्तर गण वाले होने से उत्तर कालीन हैं । भगवान् याज्ञवल्क्य इन्हीं का सहकारी है । अतः याज्ञवल्क्य और तत्प्रोक्त शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन ही है ।

पूर्व पृ० ७ पर हम लिख चुके हैं, कि ऐ० ब्रा० ६ । ३० ॥ में याज्ञवल्क्यादि के समकालिक **बुलिल आश्वतराश्वि** का उल्लेख है । इस लिए भी उन का नाम

लेने वाला ऐ० ब्रा० महाभारत कालीन याज्ञवल्क्य के समय में, अथवा उस से थोड़े ही वर्ष पीछे बना।

जो पक्ष अभी कहा गया है, उसके स्वीकार करने में कई लोग एक भारी आपत्ति मानते हैं। उस आपत्ति की उपेक्षा भी नहीं हो सकती। तदनुसार शतपथ ब्राह्मण महाभारत-काल का तो क्या, उस से लाखों वर्ष पुराना अर्थात् अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होता है। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३१५ में कहा है—

भीष्म उवाच—

> अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्।
> याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत ॥३॥
> याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशः।
> पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदांवरः ॥४॥

तथा अध्याय ३२३ में—

याज्ञवल्क्य उवाच—

> यथार्षेणेह विधिना चरताऽवमतेन ह।
> मयाऽऽदित्याद्वाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप ॥२॥
> ....
> सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ॥२२॥
> कर्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया।
> यथाभिलषितं मार्गं तथा तच्चोपपादितम् ॥२३॥

अर्थात् शतपथ ब्राह्मण के प्रवचनकर्ता भगवान् याज्ञवल्क्य का संवाद देवराति जनक से हुआ था। वाल्मीकीय-रामायण बालकाण्ड, सर्ग ७१[१] में लिखा है—

> सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः।
> देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥६॥

अर्थात् देवराति बृहद्रथ जनक था। यह जनक सीता के पिता महाराज सीरध्वज जनक से भी बहुत प्राचीन हुआ है। इसी के साथ शतपथ के प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य का संवाद हुआ, अतः शतपथ ब्राह्मण अति प्राचीन-काल का ग्रन्थ है।

यह बात भ्रम मात्र है। देवराति जनक अनेक हो सकते हैं। महाभारत-काल में भी

---

१ सीरामपुर संस्करण, सन् १८०६, सर्ग ४८ ॥

तो एक प्रसिद्ध जनक था। उसी से वैयासकि शुक का संवाद हुआ। देवराति जनक वही या उस से कुछ ही पूर्वकालीन हो सकता है, क्योंकि महाभारत में इसी प्रकरण की समाप्ति पर भीष्म जी कहते हैं कि याज्ञवल्क्य और देवराति जनक के संवाद का तथ्य उन्हों ने स्वयं देवराति जनक से प्राप्त किया था।

भीष्म उवाच—

> **एतन्मयाऽऽप्तं जनकात् पुरस्तात्**
> **तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात्।**
> **ज्ञातं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा**
> **ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः॥१०९॥**

शान्तिपर्व, अ० ३२३॥

अर्थात्—भीष्म जी कहते हैं, यह ज्ञान मैंने पहले जनक से प्राप्त किया था। और हे राजन् जनक जी ने याज्ञवल्क्य से पाया था। ज्ञान यज्ञों से बढ़ कर है। ज्ञान से कठिन मार्ग तय कर लेता है, यज्ञों से नहीं।

शान्तिपर्व के उपदेश के समय भीष्म जी का आयु २०० वर्ष से कुछ कम ही था। इस गणनानुसार देवराति जनक महाभारत-युद्ध से १५० वर्ष के अन्दर २ ही हो सकता है। अतएव शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-काल में ही 'प्रोक्त' हुआ था, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

(ग) शतपथ ब्राह्मण और उसका प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य महाभारत-कालीन ही हैं, और किसी पहले युग के नहीं, इस में शतपथान्तर्गत एक और भी साक्ष्य है। देखो—

अथ पृषदाज्यं तदु ह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रे ऽभिधारयन्ति प्राणः पृषदाज्यमिति वदन्तस्तदु ह याज्ञवल्क्यं चरकाध्वर्युरनुव्याजहार।

शतपथ ३।८।२।२४॥

ता ऽउ ह चरकाः। नानैव मन्त्राभ्यां जुह्वति प्राणोदानौ वा ऽस्यैतौ नानावीर्यौ प्राणोदानौ कुर्म इति वदन्तस्तदु तथा न कुर्यात्।

शतपथ ४।१।२।१६॥

यदि तं चरकेभ्यो वा यतो वानुब्रुवीत।

शतपथ ४।२।४।१॥

तदु ह चरकाध्वर्यवो विगृह्णन्ति।

शतपथ ४।२।३।१५॥

प्राजापत्यं चरका आलभन्ते ।

शतपथ ६ । २ । २ । १ ॥[१]

इति ह स्माह माहित्थिर्य चरकाः प्राजापत्ये पशावाहुरिति

शतपथ ६ । २ । १ । १० ॥

तदु ह चरकाध्वर्यवः ।[२]

शतपथ ८ । १ । ३ । ७ ॥

इत्यादि स्थलों में जो "चरक" अथवा "चरकाध्वर्यु" कहे गये हैं, वे सब वैशंपायन-शिष्य हैं ।[३] हम पूर्व प्रदर्शित कर चुके हैं कि चरक=वैशंपायन महाभारत-कालीन था, अतः उसका वा उसके शिष्यों का उल्लेख करने वाला ग्रन्थ महाभारत-काल से पहले का नहीं हो सकता । वह महाभारत-काल का ही है ।

(घ) याज्ञवल्क्य और शतपथ ब्रा० के महाभारत-कालीन होने में एक और प्रमाण भी है—

महाराज जनक की सभा में याज्ञवल्क्य का ऋषियों के साथ जो महान् संवाद हुआ था, उसका वर्णन शतपथ काण्ड ११—१४ में है । ऋषियों में एक विदग्ध शाकल्य ११ । ४ । ६ । ३ ॥ था । याज्ञवल्क्य के एक प्रश्न का उत्तर न देने से उसकी मूर्धा गिर गई १४ । ५ । ७ । २८ ॥ यह शाकल्य ऋग्वेद का प्रसिद्ध आचार्य हुआ है । यही पदकारों में सर्वश्रेष्ठ था ।[४] इसका पूरा नाम देवमित्र शाकल्य था । ब्रह्मवाहसुत याज्ञवल्क्य (वायुपुराण, पूर्वार्ध ६०।४१ ॥) के साथ इसका जो वाद हुआ था, उसका उल्लेख वायुपुराण पूर्वार्ध अध्याय ६० श्लोक ३२—६० में भी है । वायुपुराण के पूर्वार्ध अध्याय ६० के अनुसार इस देवमित्र शाकल्य (विदग्ध) के पूर्वोत्तर कुछ ऋग्वेदीय आचार्यों की गुरुपरम्परा का चित्र निम्नलिखित है ।

---

१ यह चरकाध्वर्युओं के वाक्य किस याजुष ग्रन्थ से सम्बन्ध रखते हैं, इसके विषय में काण्व शतपथ की भूमिका पृ० ६६ पर डाक्टर कालण्ड का लेख देखो ।

२ देखो काण्व शतपथ की भूमिका, पृ० ६२ ।

३ देखो वायुपुराण पू० अध्याय ६२—

ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः । वैशंपायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः ॥ २३ ॥

४ वायुपुराण, पू० ६० । ६३ ॥

"पदवित्तमः" ।
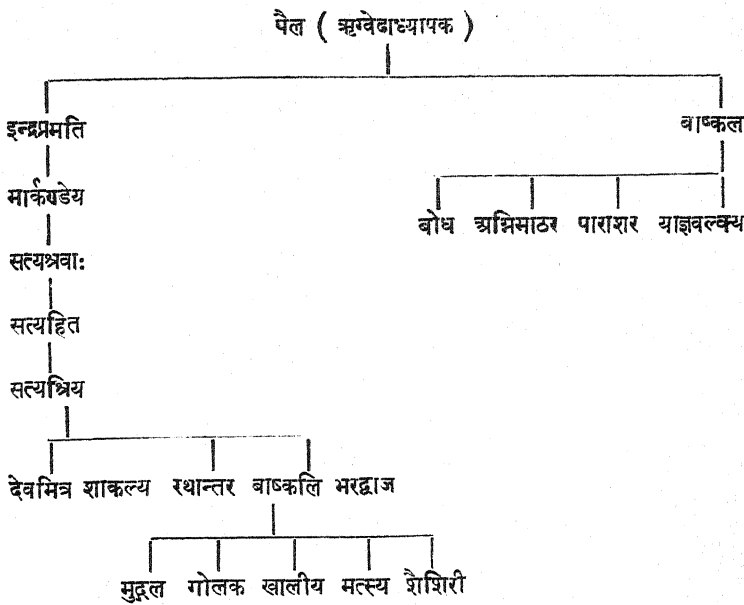
पैल के शिष्य प्रशिष्य होने से ये शाकल्य आदि आचार्य महाभारत-कालिक ही हैं। इन में से शाकल्य का विस्तृत वर्णन शतपथ में मिलता है। और शतपथ के प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य के साथ इसका संवाद भी हुआ था, अतः याज्ञवल्क्य और शतपथ दोनों महाभारत-कालिक हैं।

इस विषय में और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, पर विद्वानों के लिये इतने ही पर्याप्त होंगे।

(ङ) ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन महाभारत काल में हुआ, इस में एक और प्रमाण है। काठक संहिता १०। ६॥ के आरम्भ का यह वचन है—

नैमिष्या वै सत्रमासत त उत्थाय सप्तविंशतिं कुरुपञ्चालेषु वत्सतरानवन्वत तान्बको दाल्भिरब्रवीद्यूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि।

इसी कथा का उल्लेख महाभारत शल्य पर्व अध्याय ४१ में है—

ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात्।
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः॥२॥

अर्थात्—हे राजन्, तब बलराम जी बक के आश्रम के समीप गये। जहां दाल्भ्य बक ने तीव्र तप किया, ऐसी श्रुति है।

तथा अध्याय ४२ में—

यत्र दाल्भ्यो बको राजन्पश्वर्थं सुमहातपाः।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं कोपसमन्वितः ॥१॥
....

तानब्रवीद्बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति ॥५॥

इस से निश्चय होता है कि काठक संहिता में विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र का वर्णन है। वह भी लगभग महाभारत-कालीन ही था। उस का उल्लेख करने वाली संहिता और तदुपरान्त प्रवचन होने वाला ब्राह्मण अवश्य महाभारत काल के हैं।

धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य कोई पुराकाल का राजा हो सकता है। उसी का यहां वर्णन है।

कोई एक ऐसी कल्पना कर सकते हैं। पर यह कल्पना असत्य है। काठक संहिता में धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य के साथ जिस ऋषि "बक दाल्भ्य"[1] का कथन है, वह महाराज युधिष्ठिर के समय में विद्यमान था। देखो महाभारत वनपर्व, अध्याय २६—

अथाब्रवीद्बको दाल्भ्यो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
सन्ध्यां कौन्तेयमासीनमृषिभिः परिवारितम् ॥१॥

इत्यादि। और मनु के—

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वात् दीर्घमायुरवाप्नुयुः। ४। ९४॥

इस वचन के अनुसार यद्यपि ऋषि जन दीर्घजीवी थे, तथापि उनका आयु १०० वर्ष से लेकर ३०० या ४०० वर्ष तक ही होता था।[2] पतञ्जलि के काल में आयु का परिणाम १०० वर्ष ही रह गया था। यदि इस से अधिक आयु होता तो भगवान् पतञ्जलि यह यह क्यों लिखता—

---

१ सम्भवतः यही बक दाल्भ्य छान्दोग्य उपनिषद् १। १२। १॥ में स्मरण किया गया है। इसी बक दाल्भ्य का वर्णन जै० उपनिषद् ब्राह्मण १।३।६॥ ४। ७। २॥ में भी है।

२ अपि हि भूयांऽसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।
शतपथ १।६।३।१९॥

किं पुनरद्यत्वे यः सर्वथा चिरं जीवति स वर्षशतं जीवति।

(महाभाष्य कीलहार्न सं० प्रथम भाग पृ०५)

अर्थात्—फिर आजकल की बात का क्या कहना, जो बहुत चिर जीता है, वह सौ वर्ष तक जीता है।

और भगवान् कात्यायन यह क्यों लिखता —

सहस्रसंवत्सरममनुष्याणामसम्भवात्[1] ॥१३८॥

नादर्शनात् ॥ १४३ ॥

श्रौतसूत्र अध्याय १ ॥

अर्थात्—मनुष्य का सामान्य आयु १०० वर्ष ही श्रुति आदि में दिखाई देता है। इसलिए जब बक दाल्भ्य युधिष्ठिर कालीन है, तो इसी बक दाल्भ्य का युधिष्ठिर के पूर्वज धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य से वार्तालाप हुआ था। अत: उसकी कथा का प्रसंग कठसंहिता में आ जाने से कठब्राह्मण धृतराष्ट्र के कुछ पीछे अर्थात् महाभारत-काल में संकलित हुआ। हम कह चुके हैं कि सब ब्राह्मण ग्रन्थों का सङ्कलन एक समय में हुआ था। अतः यदि कठब्राह्मण महाभारत कालीन हो, तो दूसरे ब्राह्मण भी उसी काल में संगृहीत हुए।

हम पूर्व पृ० ७३ पर लिख चुके हैं, कि बक दाल्भ्य याज्ञवल्क्य आदि का समकालिक है। उस से भी पूर्वोक्त परिणाम ही पुष्ट होता हैं।

(च) काठक संहिता ७। ८॥ में लिखा है—

दिवोदासो भैमसेनिरारुणिमुवाच।

अर्थात्—भीमसेन का पुत्र दिवोदास (उद्दालक) आरुणि को बोला।

पिछले अध्याय से स्पष्ट हो चुका है, कि उद्दालक याज्ञवल्क्यादि का सहवर्ती है। और यह दिवोदास उसी भीमसेन का पुत्र है, जो पारिक्षित था। शतपथ १३।५।४३॥ में लिखा ह—

एतेऽएव पूर्वे ऽअहनी।......तेन भीमसेनं......तेनोग्रसेनं......तेन श्रुतसेनमित्येते पारिक्षितीयाः।

---

१ यहां मनुष्य शब्द का प्रयोग देव के मुकाबले में है। दैवी सृष्टि में तो कल्प पर्यन्त ही यज्ञ हो रहा है। मनुष्य में ऋषियों की गणना भी है। मीमांसा सूत्र ६। ७। ३१–४०॥ का भी यही अभिप्राय है।

अर्थात्—भीमसेन, उग्रसन और श्रुतसेन, ये पारिक्षितीय थे। ये महाशय लोग महाभारत काल से एक पीढ़ी पहले के थे। इस लिए इन का उल्लेख करने वाले ग्रन्थ काठकसंहिता और शतपथ ब्राह्मण महाभारत काल, अथवा उस के कुछ पीछे सङ्कलित हुए होंगे।

(छ) आरण्यक ग्रन्थ या तो ब्राह्मणों के विभाग हैं, या उन के साथ के ही ग्रन्थ हैं। तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय ब्राह्मण का साथी ग्रन्थ है। इस में १।६।२॥ पर **पाराशर्य व्यास** का एक मत उद्धृत किया है। तैत्तिरीय आरण्यक का प्रवक्ता **तित्तिरि**[1] भी महाभारत कालीन था[2], अतः तित्तिरि का प्रवचन होने वा पाराशर्य व्यास का कथन करने से तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण वा आरण्यक महाभारत कालीन ही हैं।

(ज) भगवान् जैमिनि सामवेद की जैमिनीय संहिता का प्रवक्ता है। यही जैमिनि पाराशर्य व्यास का प्रिय शिष्य था।[3] इसे ही वेदव्यास ने साम शाखाओं का सब से पहले पाठ पढ़ाया था। इसी ने तलवकार-जैमिनीय ब्राह्मण का प्रवचन किया था। पाराशर्य व्यास शिष्य होने से यह महाभारत-कालीन है और इसका प्रवचन किया हुआ ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन ही है। जैमिनीय ब्राह्मण में भी अनेक नाम ऐसे हैं जो केवल महाभारत कालीन ही हैं। उन में से कुछ एक का वर्णन गत अध्याय में हो चुका है। अधिक का वर्णन विस्तरभय से नहीं किया गया। विद्वान् लोग उन्हें स्वयं देखलें।

इन्हीं भगवान् जैमिनीय ने मीमांसा शास्त्र भी बनाया था। इसी कारण जैमिनीय ब्राह्मण के कई हस्तलेखों के प्रारम्भ में प्राचीन परम्परागत ऐतिह्य का द्योतक यह श्लोक विद्यमान है—

उज्जहारागमाम्भोधेर्यो धर्मामृतमञ्जसा।
न्यायैर्निर्मथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः॥

इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ आर्थर बैरीडेल कीथ अपने पुस्तक The Karma

---

१ इसी तित्तिरि का उल्लेख अष्टाध्यायी ४।३।१०२॥ **तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्।** में है। इसी के कहे हुए किन्हीं श्लोक-विशेषों के सम्बन्ध में पतञ्जलि ४।२।६६॥ पर कहता है—**तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोका इति।**

२ देखो इसी ग्रन्थ का पृ० ७३।

३ देखो सामविधान ब्राह्मणम्—**व्यासः पाराशर्यो जैमिनिये। ३।९।३॥**

Mimansa (सन् १९२१) पृ ४–५ पर लिखते हैं–

A Jaimini is credited with the authorship of a Srauta and Gṛhya Sutra, and the name occurs in lists of doubtful authenticity in Asvalāyana and Sānkhayana Grhya Sutras; a Jaiminiya Samhita and a Jaiminiya Brahmana of the Sama Veda are extant.

It is, then, aplausible conclusion that the Mimansa Sutra does not date after 200 A. D; but that it is probably not much earlier......

उनके इस लेख के भावानुसार––

(१) जैमिनीय ब्राह्मण का प्रवक्ता जैमिनि, मीमांसा सूत्रों का प्रणेता नहीं।

(२) मीमांसा सूत्र ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में ही बने थे। ये विचार जैमिनि की कृति के विषय में भ्रमोत्पादक हैं, इस लिये हम यहां इन की विवेचना करते हैं।

कीथ महाशय का यह कथन सत्य तो क्या, सत्य से कोसों दूर है। क्योंकि––

(१) जैमिनीय ब्राह्मण के अनेक हस्तलेखों के आरम्भ में आने वाला जो श्लोक हम पूर्व उद्धृत कर चुके हैं, वह परम्परागत ऐतिह्य का स्पष्ट द्योतक है। और आर्यावर्त के पण्डित आज तक अविच्छिन्न रूप से इसे मानते आये हैं कि तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता, भगवान् वेदव्यास का शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्रों का प्रणेता था। कीथ साहेब के भ्रम का कारण यह है कि वे मीमांसा सूत्रों को ईसा की पहली वा दूसरी शताब्दी में रचा गया मानते है।

(२) मीमांसा सूत्र ईसा से सैंकड़ों वर्ष पहले विद्यमान थे। वेदान्तसूत्र ३। ३। ५३॥ पर शङ्करभाष्य के प्रमाण से कीथ स्वयं मानता है कि भगवान् उपवर्ष ने मीमांसा सूत्रों पर भाष्य लिखा। शङ्कर ही नहीं कौशिक सूत्र पद्धतिकार आथर्वणिक केशव भी मीमांसा भाष्यकार उपवर्ष का स्मरण करता है––

उपवर्षाचार्येणोक्तं। मीमांसायां स्मृतिपादे कल्पसूत्राधिकरणे ....इति भगवानुपवर्षाचार्येण (!) प्रतिपादितम्।

(कौशिकसूत्र, पृ० ३०७

भास्कर वेदान्तसूत्र १ । १ । १ ॥ के भाष्य में इसी उपवर्ष को उद्धृत करता है। सायण भी अथर्ववेद भाष्य के उपोद्घात (पृ० ६) पर उपवर्ष के मीमांसा भाष्य का नाम लेता है।

यह भगवान् उपवर्ष पाणिनी से पहले हो चुका था। कथा सरितसागर आदि के अनुसार तो यह पाणिनि का गुरुभ्राता था। उपवर्ष पाणिनि से पूर्व हो चुका था, इस में एक और भी प्रमाण है। राजशेखर (नवम शताब्दी) अपनी काव्यमीमांसा पृ० ५५ में लिखता है—

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा—
अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः।
वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः ॥

इस श्लोक में सारे शास्त्रकारों के नाम काल-क्रम से ही आये हैं। पतञ्जलि से पहले वररुचि, और उस से कुछ पहले होने वाले वा साथी पाणिनि और पिङ्गल[१] थे। इन से कुछ पहले वर्ष, और उपवर्ष थे। यही उपवर्ष शास्त्रकार है। इसी ने मीमांसा सूत्रों पर आदि भाष्य लिखा था।

प्रश्न—यह उपवर्ष कोई और शास्त्रकार होगा।

उत्तर—यदि यह कोई और शास्त्रकार है, तो इस के शास्त्र का कोई उद्धरण कोई पता, कोई चिन्ह चक्र तो बताओ। जब तुम यह बता ही नहीं सकते, तो ऐसी अलीकतम कल्पनाओं से परे रहो।

प्रश्न—राजशेखरप्रदर्शित श्लोक में आने वाले नाम काल-क्रमानुसार नहीं हैं।

उत्तर—ऐसे ही पूर्वपक्षों से तुम्हारा हठ और दुराग्रह सिद्ध होता है। जब शेष सब नाम काल-क्रमानुसार हैं, तो पहले दो नामों के ऐसा होने में क्या सन्देह है? और जब आद्यन्त आर्ष ऐतिह्य भी यही मानता है, तो तुम्हारे इस कहने से क्या? योरुप में तुम पण्डित बने रहो। आर्यावर्त्तीय विद्वान् तुम्हारा कुछ मान न करेंगे।

इस प्रकार जब मीमांसा सूत्रों का भाष्यकार ही इतना पुराना है, तो मूल सूत्र क्यों नवीन होंगे?

---

१ आचार्य पिङ्गल पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता था। देखो! मेरा लेख, मासिक पत्र आर्य्य, आषाढ १९८२ पृ० २६-२८, लाहौर।

हम पाणिनि को कलियुग की लगभग दूसरी शताब्दी में मानते हैं।[1] कई एतद्देशीय और पाश्चात्य लेखक विक्रम से चार शताब्दी पहले पाणिनि का काल मानते हैं। अतः पाश्चात्यों के अनुसार भी मीमांसा सूत्र विक्रम की पांचवीं शताब्दी से पहले होना चाहिए। इस से यह स्पष्ट हो गया कि कीथ का लेख भ्रमपूर्ण है। और व्यास-शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्र का कर्ता वा तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता है। इस लिए भी तलवकारादि ब्राह्मण महाभारत कालीन हैं।

(क) छान्दोग्य उपनिषद्, छान्दोग्यों के ताण्ड्य ब्राह्मण का अन्तिम भाग ही है। छान्दोग्य-उपनिषद् ३। १६। ६॥ में कहा है—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः।.................।
स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्।

यही महिदास ऐतरेय, ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है। आश्वलायन गृह्य सूत्र ३। ४। ४॥ में भी इसी का उल्लेख है।[2] महिदास ऐतरेय व्यास और शौनक

---

१ प्रश्न—पाटलिपुत्र बहुत पुराना नगर नहीं है। इसे महाराज अजातशत्रु (विक्रम से लगभग ५०० वर्ष पूर्व) ने बसाया था। जब यह नगर ही बहुत पुराना नहीं, तो उस में परीक्षा देने वाले शास्त्रकार पाणिनि आदि कैसे कलियुग की दूसरी शताब्दी में हो सकते हैं?

उत्तर—यद्यपि पाटलिपुत्र नवीन नगर है, तथापि मगध देश में इससे पहले गिरिव्रज राजधानी थी। गिरिव्रज के सम्राट् ही पहले शास्त्रकारों की परीक्षा कराया करते थे। राजशेखर के काल में पाटलिपुत्र नाम प्रसिद्ध हो चुका था, अतः उस ने यही लिख दिया। राजशेखर का वास्तविक अभिप्राय सम्राट् से है, नगर से नहीं, यह उसके पूर्वापर प्रकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है।

२ पूर्वोद्धृत (पृ० ८१) वाक्य में कीथ साहेब आश्वलायन गृह्यसूत्र की इन सूचियों को प्रक्षिप्त सा मानते हैं। ऐतरेय आरण्यक पृ० १७ (सन १९०९) के प्रथम टिप्पण में भी वे इन सूचियों को "सम्भवतः नया" मानते हैं। स्वप्रयोजन सिद्ध होता देख कर ही, वे ऐसा मानने पर बाधित हुए हैं, अन्यथा इन वाक्यों के ग्रन्थान्तर्गत होने में कोई सन्देह नहीं।

तथा आश्वलायन के बीच में आता है। पाणिनीय सूत्र—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ ४ । ३ । १०६ ॥

से हम जानते हैं कि शौनक किसी शाखा वा ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है। सम्भवतः यह शाखा आथर्वणों की थी।[१] आश्वलायन इसी शौनक का शिष्य था।[२] शौनक-शिष्य होने से ही आश्वलायन अपने श्रौतसूत्र वा गृह्यसूत्र के अन्त में—

नमः शौनकाय। नमः शौनकाय॥

लिखता है।

शाखा प्रवर्तक होने से भगवान् शौनक व्यास का समीपवर्ती ही है। अतएव महिदास ऐतरेय भी कृष्ण-द्वैपायन व्यास से अनतिदूर है। इस महिदास ऐतरेय का प्रवचन होने से ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत-कालीन है। और इसी महिदास का उल्लेख करने से छान्दोग्य उपनिषद् वा ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन है। हां उपनिषद् भाग कुछ पीछे का भी हो सकता है। याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने एक दिन में ही तो सारा ब्राह्मण नहीं कह दिया था। इन के प्रवचन में कई कई वर्ष लगे होंगे। इस से प्रतीत होता है कि ताण्ड्य आदि ऋषि जब छान्दोग्यादि उपनिषदों का प्रवचन अभी कर रहे थे, तो महिदास ऐतरेय का देहान्त हो चुका था। महिदास इन दूसरे ऋषियों की अपेक्षा कुछ कम ही जिया। अथवा छान्दोग्य उप० और जै० उप० ब्रा० के महिदास की आयु से सम्बन्ध रखने वाले वाक्य प्रक्षिप्त हो सकते हैं। इस प्रक्षेप के विषय में आगे इसी (भ) प्रमाण के अन्त में कुछ लिखा जायगा।

जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण ४ । २ । ११ ॥ के निम्नलिखित वाक्य की भी यही संगति है—

---

१ शौनक का शिष्य आश्वलायन, प्रधानतया ऋग्वेदी है। शौनक ने आप भी अनेक ऋग्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे थे। इससे यह सन्देह न होना चाहिए कि उसने आथर्वण शाखा का प्रवचन कैसे किया। महाभारत-काल के आचार्य किसी शाखाविशेष से ही सम्बद्ध न रहते थे। शौनक-शिष्य कात्यायन ने चारों ही वेदों पर अपने ग्रन्थ लिखे हैं।

२ देखो षड्गुरुशिष्य कृत सर्वानुक्रमणी-वृत्ति की भूमिका—

शौनकस्य तु शिष्योऽभूत भगवानाश्वलायनः।

एतद्ध तद्विद्वान् ब्राह्मण उवाच महिदास ऐतरेयः। .... । स ह षोडशशतं वर्षाणि जिजीव।

ऐतरेय आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही अन्तिम भाग है। उस में भी महिदास ऐतरेय का नाम आया है—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः। २। १। ८॥

इस से हमारा पूर्वोक्त कथन ही सिद्ध होता है।

इसी आरण्यकस्थ वाक्य के अनुवाद के एक नोट (पृ० २१० टिप्पण २) में कीथ महाशय लिखते हैं —

"This mention is enough to prove that Mahidāsa did not write the Aranyaka. But it is quite probable that he was the redactor of the Brāhmana, in its form of forty chapters,"

अर्थात्—आरण्यक में महिदास का नाम आने से यह निश्चित होता है, कि उस ने आरण्यक नहीं लिखा।

कीथ महाशय का अभिप्राय विश्वासनीय नहीं है।

क्योंकि इस विषय में सब विद्वान् सहमत हैं कि शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन याज्ञवल्क्य ने ही किया था। जब उसी शतपथ ब्राह्मण में—

तदु होवाच याज्ञवल्क्यः।

१। ३। ४। २१॥ २। ३। १। २१॥
२। ४। ३। २॥ १२। ४। १। १०॥

इति ह स्माह याज्ञवल्क्यः।

१। १। ३। १०॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः।

१२। ६। ३। २॥

इन लेखों के आने से किसी विद्वान् को शतपथ ब्राह्मण के याज्ञवल्क्य प्रोक्त होने में सन्देह नहीं हुआ, तो ऐतरेय आरण्यक में महिदास का नाम आ जाने से कीथ को सन्देह न होना चहिये था। और यदि यह कहो कि ग्रन्थ-कर्ता स्वयं अपने को "विद्वान्" अर्थात्–"जानते हुए" कैसे कह सकता है, तो इस में कोई हानि नहीं। एक सत्यवक्ता ग्रन्थकार अपने विषय में कह सकता है, कि अमुक समय पर सब कुछ "जानते हुए" ही वह अमुक बात बोला था।

प्रश्न—छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्य का अर्थ ११६ वर्ष नहीं, प्रत्युत १६०० वर्ष है। तदनुसार महिदास ऐतरेय १६०० वर्ष जीवित रहा। न जाने उसने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन इतने लम्बे जीवन के किस भाग में किया। अतः उस के प्रवचन किये हुए ब्राह्मण को महाभारत-कालीन मानना उचित नहीं। मनु १।८३॥ पर भाष्य करते हुए मेधातिथि लिखता है—

ननु "स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्" इति परममायुर्वेदे श्रूयते।

इस का अभिप्राय १६०० वर्ष प्रतीत होता है। महामहोपाध्याय पं० गङ्गानाथ झा मेधातिथिभाष्य के अङ्गरेजी अनुवाद में लिखते हैं—

"But we find the highest age described as 1600 years, in the Chhandogya Upanisad (3: 16. 7) where it is said he lived for sixteen hundred years."

राजेन्द्रलाल मित्र भी ऐतरेय आरण्यक के Introduction पृ० ३ के नोट में छान्दोग्य के वाक्य का अर्थ 'For sixteen hundred years' करते हैं।

इतने बड़े २ विद्वानों का अर्थ कैसे अशुद्ध हो सकता है?

उत्तर—'षोडशं वर्षशतं का अर्थ ११६ वर्ष ही है। पं० गङ्गानाथ झा ने अनुवाद में भूल की है। यही भूल राजेन्द्रलाल मित्र ने दिखाई है। मेधातिथि का अभिप्राय भी पं० गङ्गानाथ झा वाला नहीं है। वहां अर्थ तो लिया ही नहीं। यह कल्पना झा महाशय की अपनी ही है। छान्दोग्य के उपस्थित वाक्य का अर्थ सब प्राचीन आर्यों ने भी ११६ वर्ष ही किया है। देखो—

षोडशोत्तरवर्षशतम्—शङ्कर।
षोडषाधिकं वर्षशतम्—रामानुज।
षोडशोत्तरं शतम्—मध्व।

मैक्समूलर का भी यही अर्थ है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में Hanns Oertel ने भी ११६ वर्ष ही अर्थ किया है। बहुत खेंच तान करके १६०० अर्थ यदि कर भी लें तो एक और आपत्ति आ पड़ती है। छान्दोग्य के इस प्रकरण में पुरुष को यज्ञरूप मान कर उसे सवनों से तुलना दी है। तीनों सवनों के कुल वर्ष भी २४+४४+४८=११६ ही बनते हैं। अतः १६०० वर्ष अर्थ प्रकरणानुकूल भी नहीं।

झा महाशय यहीं नहीं, अन्यत्र भी ऐसे ही अर्थ करते हैं। मेधातिथि के शाखाभेद-निरूपक—

एक शतमध्वर्यूणाम्।

वाक्य का अर्थ "a hundred Recensions" करते हैं। परन्तु समस्त आर्य वाङ्मय में ऐसे वाक्य का अर्थ **१०१** ही लिया गया है। अतः ऐसे अनुवादों के लिए झा महाशय को ही साधुवाद। उन की भूल से हम ११६ से १६०० का असम्भव अर्थ नहीं मान सकते।

ब्राह्मणों के सङ्कलन सम्बन्ध में एक विशेष ध्यान देने योग्य बात

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि प्रायः सारे ही ब्राह्मणों का सङ्कलन महाभारत काल में हुआ था। हां, इस के साथ एक और बात ध्यान देने योग्य है। मा० शतपथ के अन्त में जो वंश सूची दी गई है, उस में याज्ञवल्क्य के उत्तरवर्ती **४५** आचार्यों के नाम मिलते हैं। उन सब के अन्त में पैंतालीसवें नाम के स्थान में **वयं** लिखा है। **वयं** पद से निर्दिष्ट वे अन्तिम लोग थे, जिन्हों ने शतपथ के साथ खिल भाग जोड़ा, या सारे ही याज्ञवल्क्य-प्रोक्त ब्राह्मण में प्रक्षेप किया। हमारा अपना विचार है कि उन्हों ने प्रक्षेप थोड़ा ही किया होगा। खिल तो अवश्य उन्हीं के हैं। ये लोग महाभारत काल से दो तीन सौ वर्ष पीछे के हो सकते हैं। ब्राह्मणों का काल निर्णय करने में जो कहीं २ ऐतिहासिक अड़चन आ पड़ती है, वह इन्हीं के प्रक्षिप्त भागों से सम्बन्ध रखने वाली मानी जा सकती है। छान्दोग्य उप० और जै० उप० ब्रा० के महिदास की आयु से सम्बन्ध रखने वाले वाक्य ऐसे ही प्रक्षेपों में से हो सकते हैं।

इस वंश के सम्बन्ध में **शङ्कर** बृ० उप० भाष्य के अन्त में लिखता है—

अथेदानीं समस्तप्रवचनवंशः ॥

द्विवेदगङ्ग माध्यन्दिनारण्यक की व्याख्या के अन्त में लिखता है—

अयं वंशः समस्तस्यैव प्रवचनस्य भवति न व्यवहितखिल-काण्डस्य।

अर्थात—यह वंश समस्त ब्राह्मण के प्रवचन-कर्ताओं का है, खिलकाण्ड वालों का ही नहीं।

दोनों टीकाकारों की यह खैंच तान है। जब सारा इतिहास उच्च स्वर से कहता

है, कि शतपथ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य-प्रोक्त है, तो उस के प्रवक्ता "वयं" पद से अभिप्रेत अनेक आचार्य कैसे हो सकते हैं। अवश्य इन आचार्यों ने समय २ पर इस ब्राह्मण में प्रक्षेप किए होंगे, चाहे वे प्रक्षेप थोड़े ही हों। हो सकता है, इस विचार को कई लोग स्वीकार न करें, पर यह वंश तो उन को भी प्रक्षिप्त मानना ही पड़ेगा।

(ञ) सामविधान ब्राह्मण ३ । ६ । ३ ॥ में एक वंश कहा है । वह निम्न-लिखित प्रकार से है—

(१) प्रजापति
|
(२) बृहस्पति
|
(३) नारद
|
(४) विष्वक्सेन
|
(५) व्यास पाराशर्य
|
(६) जैमिनि
|
(७) पौष्पिण्ड्य
|
(८) पाराशर्यायण
|
(९) बादरायण
|
(१०) ताण्डि (११) शाट्यायनि

इन्हीं अन्तिम दो व्यक्तियों ने ताण्ड्य और शाट्यायन ब्राह्मणों का प्रवचन किया था। ये आचार्य पाराशर्य व्यास से कुछ ही पीछे के हैं। अतः इनके कहे हुए ब्राह्मणग्रन्थ भी महाभारत-कालीन ही हैं। सम्भवतः शतपथ ६ । १ । २ । २५ ॥ में

अथ ह स्माह ताण्ड्यः ।

जिस ताण्ड्य का कथन है, वह इसी का सम्बन्धी है।

(ट) पं० अभयकुमार गुह ने सन् १९२१ में एक ग्रन्थ लिखा था । नाम है उसका Jivatman in the Brahma Sutras. इस ग्रन्थ में एक विषय का बड़ा अच्छा प्रतिपादन है। गुह महाशय ने यह सिद्ध कर दिया है कि कृष्ण द्वैपायन

वेद व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे। हम इस विषय में गुह की युक्तियों से पूरे सहमत हैं। वेदान्तसूत्र, वेदव्यास का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है। वेदान्त सूत्रों में उपनिषदों, आरण्यकों, ब्राह्मणों और मन्त्र-संहिताओं का स्पष्ट कथन किया गया है। देखो—

१—ईक्षतेर्नाशब्दम्। १। १। ५॥

२—श्रुतत्वाच्च। १। १। ११॥

३—मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते। १। १। १५॥

४—अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्। १। २। १८॥

५—शारीरश्चोभयोऽपि हि भेदेनैनमधीयते। १। २। २०॥

६—आमनन्ति चैनमस्मिन्। १। २। ३२॥

७—परात्तु तच्छ्रुतेः। २। ३। ४१॥

८—अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ३। १। ४॥

९—पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात्। ३। ३। २४॥

१०—शब्दश्चातोऽकामकारे। ३। ४। ३१॥

इन सूत्रों में छान्दोग्य उप०, श्वेताश्वतर उप०, तैत्तिरीय उप०, बृहदारण्यक उप०, काण्व और माध्यन्दिन शतपथ ब्रा०, जाबाल उप०, कौषीतकि उप०, बृहदारण्यक उप०, ताण्डी और पैङ्गी लोगों के ब्राह्मण, तथा काठक संहिता की श्रुतियों का क्रमशः वर्णन है।

हम कह चुके हैं कि व्यास और उन के शिष्य प्रशिष्यों ने ही ब्राह्मणों का सङ्कलन आरम्भ किया था। वेदान्त सूत्रों में इन सब के प्रमाण आ जाने से यह निश्चय होता है कि व्यास जी के जीवन काल में ही यह सङ्कलन समाप्त हो चुका था। वेदान्त सूत्र भगवान् व्यास का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है। इस प्रकार भी यही निश्चय होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ महाभारत काल में ही सङ्कलित हुए।

प्रश्न—वेदान्त सूत्र ३। ४। ३०॥ ३। ४। ३८॥ इत्यादि में मनुस्मृति का उल्लेख है। मनुस्मृति तो बहुत नया ग्रन्थ है। पाश्चात्य लेखक इसे ईसा की प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं। मनु का उल्लेख करने से वेदान्तसूत्र भी बहुत नवीन ठहरते हैं। ऐसे सूत्रों के साक्ष्य के आधार पर ब्राह्मण-ग्रन्थों का काल निश्चय करना क्या भूल नहीं है।

उत्तर—मनुस्मृति के कुछ श्लोक अवश्य नवीन हैं, परन्तु मूल ग्रन्थ महाभारत से सहस्रों वर्ष पूर्व का है। इस लिए ऐसी कल्पनाएं निरर्थक हैं। इस विषय पर अधिक विचार इस ग्रन्थ के किसी अगले भाग में होगा।

(ठ) महाभारत आदि पर्व अध्याय ६३ में कहा है—

प्रतीपस्तु खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम। तस्यां त्रीन् पुत्रानुत्पादयामास। देवापिं शन्तनुं बाह्लीकं चेति। ४७॥

अर्थात्—प्रतीप ने सुनन्दा से विवाह किया। उस में उस ने तीन पुत्र देवापि, शन्तनु और बाह्लीक उत्पन्न किए।

प्रतीप के इस तीसरे पुत्र बाह्लीक का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है—

तदु ह बल्हिकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा।

१२। ९। ३। ३॥

यह व्यक्ति महाभारत कालीन ही है, और इसका उल्लेख करने से शतपथ भी लगभग उसी काल का ठहरता है।

प्रश्न—और तो सब बातें उचित प्रतीत होती हैं, पर वाल्मीकीय रामायण में एक ऐसा स्थल है जो ब्राह्मण-ग्रन्थों को महाभारत-कालीन नहीं मानने देता। दाशरथि राम का काल महाभारत से लाखों वर्ष पहले का है। कठ, कालाप और तैत्तिरीय आदि लोग जब राम के काल में थे, तो ये ब्राह्मण-ग्रन्थ जो इन्हीं ऋषियों का प्रवचन हैं, महाभारत काल के कैसे हो सकते हैं। देखो रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ३२ (दाक्षिणात्य संस्करण) में क्या लिखा है—

कौसल्यां च य आशीर्भिर्भक्तः पर्युपतिष्ठति।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणामभिरूपश्च वेदवित्॥ १५॥
पशुकाभिश्च सर्वाभिर्गवां दशशतेन च।
ये च मे कठकालापा बहवो दण्डमाणवाः॥ १८॥

उत्तर—ये श्लोक अवश्यमेव प्रक्षिप्त हैं। वङ्गीय वाल्मीकीय रामायण सर्ग ३२ में ये ऐसे हैं—

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते तु देवलः।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम्॥ १७॥
ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चापि परिचारकाः।

सर्वास्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥ २० ॥

और पश्चिमोत्तरीय वाल्मीकीय रामायण सर्ग ३५ में ये श्लोक ऐसे हैं ।

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते सदैव सः ।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥ १७ ॥
ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चान्ये परिचारिकाः ।
सर्वास्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥ २० ॥

इन दो श्लोकों में से पहला श्लोक तीनों पाठों में कुछ २ मिलता है । परन्तु लाहौर संस्करण के सर्वोत्तम कोष में यह नहीं है । और दूसरा श्लोक केवल दाक्षिणात्य पाठ में ही है । उसके स्थान में दूसरे दोनों पाठ कुछ और ही लिखते हैं । इस का प्रक्षिप्त होना निर्विवाद है । पहला श्लोक और उस में **तैत्तिरीयाणां** पाठ किसी कृष्ण-यजुर्वेद-भक्त दाक्षिणात्य का मिलाया हुआ प्रतीत होता है । महाभारत और महाभाष्य के प्रमाण से [1] हम बता चुके हैं कि ब्राह्मणकार तित्तिरि और कठ आदि आचार्य महाभारत काल में ही थे, अतः उन को राम के काल में कहने वाला श्लोक किसी इतिहासानभिज्ञ व्यक्ति का मिलाया हुआ है ।

प्रश्न—हम तो ब्राह्मण-ग्रन्थों को बहुत पुराना समझते थे, पुराना ही नहीं, काल की दृष्टि से वेदों के समीपतम समझते थे । आर्यों का इतिहास महाभारत-काल से भी लाखों वर्ष पहले का है । वेद भी तभी से चले आये हैं । यदि ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत काल के हैं, तो इन लाखों वर्षों में अग्रा-बुद्धि रखने वाले ब्रह्मवर्चस्वी, सर्वविद्यावित् ऋषियों ने क्या कोई भी ग्रन्थ न बनाये थे ।

उत्तर—हम ने कब कहा है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों की सब सामग्री महाभारत काल में ही बनी । इस के विपरीत हम कह चुके हैं कि ब्रह्मा के काल से ही ब्राह्मण वाक्यों का प्रवचन होना आरम्भ हो गया था । वह प्रवचन इन लाखों वर्ष पर्यन्त होता रहा । तदनन्तर महाभारत काल में कुछ नया प्रवचन हुआ । और सब प्रवचन का आद्यन्त संग्रह करके महाभारत कालीन ऋषियों ने ये साम्प्रतिक ब्राह्मण-ग्रन्थ बनाये ।

---

[1] जब तित्तिरि ही वैशंपायन का प्रशिष्य है तो तैत्तिरीय लोग राम-काल में कैसे हो सकते हैं । देखो काण्डानुक्रमणिका—

वैशम्पायनो यास्कायैतां प्राह पैङ्गये । यास्कस्तित्तिरये प्राह उखाय प्राह तित्तिरिः ॥ १५ ॥

महाभारत के पूर्व लाखों वर्षों तक इन ब्राह्मण-ग्रन्थों की मौलिक सामग्री का ही केवल प्रवचन नहीं हुआ, प्रत्युत आर्य ऋषि मुनि सब ही विद्याओं के ग्रन्थ बनाते रहे हैं। इस में प्रमाण भी देखो। न्याय भाष्यकार महामुनि वात्स्यायन न्यायसूत्र ४। १। ६२॥ पर भाष्य करते हुए किसी ब्राह्मण-ग्रन्थ का यह प्रमाण देते हैं—

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते। ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन् .... य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।

अर्थात्—प्रमाणरूप ब्राह्मण से इतिहास और पुराण की प्रामाणिकता जानी जाती है। वे यह अथर्वाङ्गिरस थे, जिन्हों ने इतिहास और पुराण कहा था। जो मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् मन्त्रार्थ के द्रष्टा हैं, वही प्रवक्ता हैं, इतिहास पुराण और धर्मशास्त्र के। पुनः सूत्र २। २। ६७॥ पर लिखते हैं—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामिति।

किसी विलुप्त ब्राह्मण, वा वात्स्यायन के इस लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारत-काल से बहुत पहले, आदि सृष्टि अर्थात् अथर्वाङ्गिरस ऋषियों के काल में ही, तथा मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों के काल में भी ये ग्रन्थ विद्यमान थे।

१—इतिहास

२—पुराण—सृष्ट्युत्पत्ति आदि विषयक बातें बताने वाले ग्रन्थ।

३—धर्मशास्त्र—मानवादि।

४—आयुर्वेद

शतपथ ब्राह्मण ११। ५। ६। ८॥ में जो निम्नलिखित वाक्य है, उस के अनुसार इन ब्राह्मण-ग्रन्थों के सङ्कलन से पहले ये ग्रन्थ भी विद्यमान थे।

यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंस्यः।[१]

अर्थात्—

---

[१] तुलना करो महाभारत आश्वमेधिकपर्व १११। ५८॥

इतिहासपुराणं च गाथाश्चोपनिषत्तथा।
आथर्वणानि कर्माणि चाग्निहोत्रकृते कृतम्॥

५—अनुशासन ग्रन्थ

६—वाकोवाक्य ,,

७—गाथा ,,

८—नाराशंसी ,,

तथा शतपथ १४ । ६ । १० । ६ ॥ के अनुसार—

इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि ।

९—उपनिषद् (मौलिक उपनिषद्)

१०—श्लोक ग्रन्थ

११—सूत्र ग्रन्थ[1]

१२—अनुव्याख्यान ग्रन्थ

१३—व्याख्यान ,,

और ऐतरेय ब्रा० ३ । २५ ॥ के अनुसार—

इत्याख्यानविद आचक्षते ।

१४—आख्यान ग्रन्थ

तथा छान्दोग्य उपनिषद् ७ । २ ॥ के अनुसार—

इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।

१५—भूत विद्या

१६—क्षत्र विद्या[2]

१७—नक्षत्र विद्या

१८—सर्पदेवजनादि विद्या

और मुण्डकोपनिषद् १ । ५ के प्रमाण से—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम्, इति ।

---

१ इन सूत्रों में व्याकरण, श्रौत, गृह्य, धर्म आदि सब ही विषयों के सूत्र हो सकते हैं ।

२ इस से धनुर्विद्या के ग्रन्थ धनुर्वेद अभिप्रेत हो सकते हैं ।

१९—शिक्षा

२०—कल्प

२१—व्याकरण

२२—निरुक्त

२३—छन्दः शास्त्र

२४—ज्योतिष

तथा तैत्तिरीयारण्यक २ । ९ ॥ के अनुसार—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ।

२५—ब्राह्मण (मौलिक ब्राह्मण)

भासकवि को हम बहुत प्राचीन मानते हैं । कई विद्वान् उसे नवीन भी मानते हैं । पर एक बात निश्चित है । कोई विद्वान् नाटककार, और फिर भास जैसा कवि अपने पात्र के मुख से असमयोचित शब्द नहीं निकलवा सकता । प्रतिमा नाटक चाहे भास का अथवा और किसी का बनाया हुआ हो, पर उस में जो वाक्य रावण के मुख से कहाया गया है, वह महाभारत काल से सहस्रों वर्ष पहले का इतिहास बताता है । तदनुसार—

रावणः—"...काश्यपगोत्रोऽस्मि साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्याय-शास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च । प्रतिमा नाटक पृ० ७९

२६—उपाङ्ग ग्रन्थ

२७—माहेश्वर योगशास्त्र

२८—बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र

२९—न्याय शास्त्र मेधातिथि विरचित

३०—प्राचेतस श्राद्धकल्प

वाल्मीकीय रामायण निश्चय ही महाभारत से बहुत पहले काल का ग्रन्थ है । अतः—

---

१ किसी काल में चार उपवेदों को भी उपाङ्ग कहते होंगे । सुश्रुत के आरम्भ में ही लिखा है—

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्ग-मथर्ववेदस्य ।

अर्थात् यह आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है

३१—वाल्मीकीय रामायण[1] इत्यादि ।

कहां तक गिनावें, महाभारत काल से सहस्रों लाखों वर्ष पहले आर्यों के वाङ्मय में प्रायः सब ही विद्याओं के ग्रन्थ थे । आर्यों में जब कोई—

नाविद्वान्[2] ।

अविद्वान् ही न था, तो पुनः विद्या सम्बन्धी ग्रन्थों का क्या कहना । अतः ऐसा प्रश्न निरर्थक है ।

प्रश्न—इन ब्राह्मणों की भाषा वेदों की भाषा के बहुत समीप है । अतः ब्राह्मणों से पहले लौकिक भाषा में ग्रन्थों का होना एक असम्भव बात है ।

---

१ महाशय हेमचन्द्र राय चौधुरी अपने ग्रन्थ Political History of Ancient India (सन् १९२३) में लिखते हैं—but large portions of which (Ramayana etc.), in the opinions of competent critics, belong to the post—Bimbasarian period, The present Ramayaha not only mentions Buddna Tathagat (II. 109. 34) etc. P. iii.

चौधुरी महाशय जैसे विद्वानों को इतनी शीघ्रता से सम्मति न देनी चाहिए थी । रामायण के कुछ श्लोक प्रक्षिप्त तो अवश्य हैं, पर रामायण का अधिकांश भाग ऐसा नहीं । न ही रामायण महाभारत-काल से पीछे का ग्रन्थ है । जो श्लोक—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धः तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।

उन्हों ने प्रमाणरूपेण उद्धृत किया है, वह वङ्गशाखीय वा पश्चिमोत्तर रामायणों में नहीं है । देखो दोनों रामायणों का अयोध्याकाण्ड, सर्ग ११८ और १२२ क्रमशः ।

ऐसे ही चौधुरी महाशय पृ० ११ पर रामायण अयोध्याकाण्ड (II.64. 42) का प्रमाण "जनमेजय" के विषय में देते हैं ।

यां गतिं सगरः शैव्यो दिलीपो जनमेजयः ।

यह श्लोक भी दोनों अन्य शाखाओं में नहीं मिलता । देखो क्रमशः सर्ग ६६ और ७० ।

विना पूरा प्रमाण देखे, इसी प्रकार सम्मतियां बना लेना विद्वानों को उचित नहीं है ।

२ वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड ६।८॥
छान्दोग्य उपनिषद् ५।११।५॥
महाभारत शान्तिपर्व ७७।६॥

उत्तर—यह भी तुम्हारे मिथ्या भ्रम का ही कारण है। पश्चिम के कुछ विद्वानों के दर्शाये हुए असत्य-भाषा-विज्ञान (Philology) को सत्य मानकर पढ़ने से ही ऐसे सारहीन प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। लो इसका उत्तर सुनो। ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेकों ऐसी गाथायें और श्लोक हैं, जो सर्वथा लोकभाषा में हैं। उन के कुछ उदाहरण देखो—

तदेष श्लोकोऽभ्युक्तः—
तद्धै स प्राणोऽभवन् महाभूत्वा प्रजापतिः।
भुजो भुजिष्या वित्त्वैतद् यत् प्राणान् प्राणयत् पुरि॥
शतपथ ७।५।१।२१॥

तदेष श्लोको भवति—
अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्।
मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति॥
शतपथ १०।५।२।४॥

तथा अन्य श्लोकों के लिए देखो शतपथ—

१०।५।२।१८॥ १०।५।४।१६॥ ११।३।१।५, ६॥ ११।५।४।१२॥ ११।५।५।१२॥ १२।३।२।७, ८॥ इत्यादि तेरहवें और चौदहवें काण्ड में भी बहुत से श्लोक हैं। गाथाओं के कुछ उदाहरण हम पृष्ठ ६६—६८ पर दे चुके हैं। ऐसे ही अन्य ब्राह्मणों में भी श्लोक आदि पाये जाते हैं। ये सब श्लोक वा गाथाएं भाषा अर्थात् लोकभाषा में ही हैं। और ऊपर भी हम बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र[1] आदि नाम के जो ग्रन्थ गिना चुके हैं, वे भी सब लोकभाषा में ही हैं। इस से ज्ञात होता है कि प्रवचन की भाषा के साथ ही साथ, लोकभाषा भी सदा से विद्यमान रही है। अधिक विचार करने पर विद्वान् लोग स्वयं इसी विचार पर पहुंच जावेंगे।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष शास्त्र का इतिहास मराठी भाषा में लिखा है। उस में उन्होंने ब्राह्मण-ग्रन्थों के काल निरूपण का भी यत्न किया है। शतपथ ब्राह्मण २।१।२।३॥ में ऐसा पाठ है—

---

१ इस अर्थशास्त्र के कई लम्बे २ उद्धरण विश्वरूपाचार्य प्रणीत याज्ञवल्क्य-स्मृति की बालक्रीडा टीका में पाये जाते हैं।

एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते।
सर्वाणि ह वाऽ अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते ॥

इस पाठ में कहा है कि नक्षत्रसंसार में कभी ऐसी अवस्था थी, जब कि कृत्तिका नक्षत्र को छोड़ कर शेष सब नक्षत्र प्राची दिशा में जाते थे। दीक्षित महाशय ने ज्योतिष के अनुसार गणना करके यह दिखाया है कि ऐसी अवस्था अनेक वार हो चुकी होगी। परन्तु अन्तिम दशा जो इस समय से पहले हो चुकी है, वह विक्रम से लगभग ३००० वर्ष पहले हुई थी। शतपथ आदि ब्राह्मणों में इसी का उल्लेख है। अतः शतपथादि ब्राह्मण अवश्य ही इतने पुराने हैं। जो परिणाम हमने ऐतिहासिक दृष्टि से निकाला है, वही परिणाम दीक्षित महाशय ने ज्योतिष की गणनाओं से निकाला है। ब्राह्मण ग्रन्थों में और भी ऐसे अनेक पाठ हैं, जिन्हें यदि ज्योतिष की दृष्टि से देखा जावे, तो हमें इसी परिणाम पर पहुँचाते हैं। अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थों का सङ्कलन महाभारत-काल में हुआ, ऐसा कहना निर्विवाद है।

श्रीयुत बी० वी० कामेश्वर अय्यर एम० ए० ने Journal of the Mythic Society भाग १२, पृ०१७१-१९३, २२३-२४६, ३५७-३६६ में The age of the Brahmanas नाम लेख लिखा था। उस में ब्राह्मणान्तर्गत ज्योतिष-विषयक सामग्री का अच्छा संग्रह है। यद्यपि हम उस से पूरे सहमत नहीं हैं, तथापि लेख को विचारणीय समझते हैं।

पाश्चात्य लेखकों में से रोथ, वैबर, मैक्समूलर, मैकडानल, ब्लूमफील्ड, कीथ अदि सज्जनों ने भी ब्राह्मणों के काल पर लेख लिखे हैं। उन सब लेखों का आधार उन की निज की कल्पनाएं हैं। कल्पनाएं प्रमाण नहीं हुआ करतीं। इस लिये हम ने उन सब को उपेक्षा-दृष्टि से देखा है। हमारा सारा कथन आर्य ऐतिह्य के अनुकूल है। ऐतिह्य को त्याग कर कल्पना का आधार लेना पाश्चात्यों को ही प्रिय है। विद्वान् इसकी अवहेलना ही करते हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थ ब्रह्मा के काल से बनने आरम्भ हुए और उन का अन्तिम संग्रह महाभारत-काल में हुआ, इस विषय में भगवान् दयानन्द सरस्वती स्वामी की भी यही सम्मति है। वे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के भाष्यकरणशङ्कासमाधानादिविषय के आरम्भ में लिखते हैं—

यानि पूर्वैर्देवैर्विद्वद्भिर्ब्रह्माणमारभ्य याज्ञवल्क्य-वात्स्यायन जमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेय-शतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन्।

अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रवचन ब्रह्मा से लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन और जैमिनि तक होता रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के दूसरे लेखों से यही निश्चित होता है कि उनके अनुसार यह जैमिनि, भगवान् व्यास का शिष्य था। और पूर्वोक्त वाक्य में याज्ञवल्क्य और वात्स्यायन, जैमिनि के साथी ही समझे गये हैं। अतएव स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार भी ब्राह्मणों के अन्तिम प्रवक्ता महाभारत-काल में विद्यमान थे।

सातवां अध्याय
क्या ब्राह्मण वेद हैं ?

शबर,[1] पितृभूति, शङ्कर,कुमारिल[2], भवस्वामी, देवस्वामी, विश्वरूप, मेधातिथि[3], कर्क, धूर्तस्वामी, देवत्रात, वाचस्पति मिश्र, रामानुज, उवट, मस्करी[4], सायण[5] प्रभृति सब ही बड़े २ आचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनों को वेद मानते आये हैं। गत ३००० वर्ष में आर्यावर्त के किसी विद्वान् को इस बात का सन्देह नहीं हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं है। इतने काल से आर्यों के हृदयों में ब्राह्मणों की श्रुतियों का उतना ही मान रहा है, जितना संहिताओं के मन्त्रों का। आर्यों के समस्त श्रौतकर्म इन दोनों को तुल्य मान कर ही होते चले आये हैं।

यह सब कुछ ही था, पर इस बीसवीं शताब्दी विक्रम में दयानन्द सरस्वती ने इन सब के विरुद्ध इस बात का प्रकाश किया कि ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हैं। वे ऋषि-प्रोक्त हैं, ईश्वरोक्त नहीं। इत्यादि। दयानन्द सरस्वती ने स्वपक्ष पोषणार्थ अनेक युक्तियां दीं। वे युक्तियां इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त ही हैं। उन के विरुद्ध जो उचित पूर्वपक्ष उठाया गया है, हम उसका उत्तर तो दें ही गे, पर कुछ एक सर्वथैव नये प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। इन प्रमाणों से ब्राह्मणों का अनीश्वरोक्त होना सिद्ध हो जायगा। अन्त में हम यह भी बतावेंगे कि इतने बड़े २ पुराने आचार्यों को इस बात में क्यों भ्रम होगया। लो अब प्रमाणों के बल को देखो, और सत्य को ग्रहण करो।

(क) गोपथ ब्राह्मण पू० २ । १० ॥ में कहा है—

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः[4] सब्राह्मणाः[4] सोपनिषत्काः[4] सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्याः।

---

१ मन्त्राश्च ब्राह्मणाश्च वेदः। २।१।३३॥

२ मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद इति नामधेयं षडङ्ग-मेक इति। कुमारिल किसी धर्मशास्त्र का यह वचन तन्त्रवार्तिक १।३।१०॥ पर लिखता है।

३ वेदशब्देनर्ग्यजुःसामानि ब्राह्मणसहितान्युच्यन्ते। मनु० २।६॥

४ वेदो मन्त्रब्राह्मणाख्यो ग्रन्थराशिः।१।१ मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः। तै०सं०भाष्य आरम्भ॥

५ प्रतीत होता है, इन साम्प्रतिक ब्राह्मणों से पहले, रहस्य अर्थात् आरण्यकादि और उपनिषद् ब्राह्मणों का भाग नहीं थे।

यहां ब्राह्मणकार स्वयं कह रहे हैं कि (१) कल्प (२) रहस्य (३) ब्राह्मण (४) उपनिषत् (५) इतिहास (६) अन्वाख्यान (७) पुराण (८) स्वर[1] [ग्रन्थ] (९) संस्कार[2] [ग्रन्थ] (१०) निरुक्त (११) अनुशासन (१२) अनुमार्जन और (१३) वाकोवाक्य आदि ग्रन्थ वेद नहीं है। वे वेदार्थ की, सहायता के लिये उनके साथ निर्मित हुए थे। जब ब्राह्मणकार स्वयं इन्हें वेद नहीं मानते, तो फिर हम क्यों इन्हें वेद मानें।

(ख) परम विद्वान्, वेदविद् भगवान् मनु अपने धर्मशास्त्र में कहते हैं—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥ २। १४०॥

इस श्लोक में रहस्य शब्द आया है। **रहस्य** शब्द आरण्यक[2] अथवा उपनिषद्[3] का द्योतक है। उपनिषद् और आरण्यक आजकल ब्राह्मणों का भागमात्र हैं।[4] मनु इनका वेद से पृथङ् निर्देश करते हैं। अतएव मनु जी की दृष्टि में ब्राह्मण वेद नहीं हैं।

मेधातिथि प्रभृति मनु के टीकाकार स्वपक्ष में इस आपत्ति को देख कर अनेक कल्पनाएं उठाते हैं, पर वे सब कल्पनाएं ऐसी ही हैं जो किसी असत्य पक्ष को छिपा तो सकती हैं, हटा नहीं सकतीं।

ब्राह्मणों के प्रवक्ता ऋषि ब्राह्मणों को वेद नहीं मानते थे, यह गोपथ ब्रा० के पूर्वोद्धृत प्रमाण से प्रकट हो चुका है। मन्वादि महर्षि आरण्यकों को वेद से पृथक् मानते हैं,ऐसा इस पूर्व लिखित श्लोक से स्पष्ट है। उन के उत्तरवर्ती और भी आचार्य आरण्यकों को वेद नहीं मानते। एक आरण्यक तो स्पष्ट ही एक ऋषि का बनाया हुआ माना गया है। देखो सायण ऋग्वेद भाष्य १। ४। १॥ के उपोद्घात में लिखता है—

उक्तं च शौनकेन। सुरूपकृत्नुमूतय इति……।

यह वाक्य ऐतरेय आरण्यक ५। २। ५॥ में मिलता है। इस से पता चलता

---

१ प्रातिशाख्यादि।

२ देखो बौ० धर्मसूत्र। २। ८। ३॥ मस्करीभाष्य। **रहस्यं** आरण्ये पठितव्यो ग्रन्थो यः तं।

३ उपनिषदं रहस्यशास्त्रम्। काठक गृ० सू० देवपालभाष्य।१०।१॥

४ उपलब्ध धर्मसूत्रों के काल में भी आरण्यक ग्रन्थ, ब्राह्मणों के अन्तर्गत ही माने जाते थे। बौ० धर्म सूत्र ३।७।७।१६॥ में तै० आरण्यक २।७।५॥ के प्रमाण को **इति ब्राह्मणम्** कहा है॥

है कि बहुत पुराने काल में ही नहीं प्रत्युत सायण तक भी आरण्यक ग्रन्थ बड़ी साधारण दृष्टि से देखे जाते थे। क्योंकि शतपथादि ब्राह्मणों के वचनों के लिए कभी यह प्रयोग नहीं मिलता। यथा—उक्तं च याज्ञवल्क्येन।

प्रश्न—महामोहविद्रावण के लिखाने वाले राममिश्र शास्त्री आदि[1] तथा उस का लिखकर प्रकाशित करने वाला मोहनलाल स्वग्रन्थ के प्रथम प्रबोध में कहता है—

"तथा हि षष्ठेऽध्याये मनुः—

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः॥ २९॥

अत्र **"औपनिषदीः श्रुतीः"** इत्युक्त्या उपनिषदां श्रुतिशब्दवाच्यत्वं श्रुति-शब्दस्य च वेदाम्नायपदपर्य्यायत्वम्। यथाह मनुरेव—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। २। १०॥

अतएव—

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन् समाहितः।
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः॥ ६। ९४॥

इत्यादि मानवशास्त्रे वेदान्तपदेनोपनिषदां परिग्रहः।" इति

उत्तर—जिस ब्राह्मण को पूर्वपक्षी वेद मानता है, जब वही ब्राह्मण रहस्य, उपनिषद् और ब्राह्मण को वेद नहीं मानता, तो मनुजी उसके विरुद्ध कैसे कह सकते हैं। और मनुजी के अपने लेख में भी परस्पर विरोध नहीं होना चाहिये। अत एव मनु अध्याय २ के श्लोक ८—१५ तक का यही समन्वय है कि स्मृति के प्रतिपक्ष में श्रुति और वेद शब्द यहां प्रयुक्त हुए हैं। स्मृति वेद के उतनी समीप नहीं जितने कि ब्राह्मण उपनिषद् आदि हैं। वेदव्याख्यान होने से, ये वेद के बहुत समीप हैं। इसी लिए इन्हें वेद वा श्रुति कहा गया है। फिर भी उपनिषद् को उतना ऊँचा पद नहीं दिया। स्पष्ट मनु कह रहा है कि "औपनिषदीः श्रुतीः"। श्रुति शब्द का अर्थ सर्वत्र वेद है भी नहीं। महाभारत आदि ग्रन्थों में लौकिक ऐतिह्य को भी जो ब्राह्मणों आदि पर आश्रित है, श्रुति कहा है। देखो—

यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः॥

शल्यपर्व ४१। ३२॥

---

१ महामोहविद्रावण के कर्ता वेदान्ताचार्य मोहनलाल के मित्र वा अध्यापक श्रीपूज्य स्वा० अच्युतानन्द जी ने यह बात हम से कही थी।

मनु स्वयं औपनिषदी श्रुति को वैदिकी श्रुति से भिन्न मानता है। इसी लिए मनु ७ । ६८ ॥ में ऐसा प्रयोग है—

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।

वासिष्ठ धर्मसूत्र में भी इसी भाव से निम्नलिखित प्रयोग है—

गुरुवद्गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमिति श्रुतिः । १३ । ५४ ॥

तथा उसी में—

बह्वीनामेकपत्नीनामेका पुत्रवती यदि ।
सर्वास्ता तेन पुत्रेण पुत्रवन्त्य इति श्रुतिः ॥ १७ । ११ ॥

दाक्षिणात्य बाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड ६।५॥ में भी ऐसा ही भाव है—

अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतीमिव ॥

इस प्रकरण में यहां **वेदश्रुति** शब्द का प्रयोग करने से ज्ञात होता है कि और प्रकार की भी श्रुतियां हो सकती हैं जैसे कि औपनिषदी श्रुति।

इसी प्रकार उपनिषद् में होने वाली अथवा उपनिषदों के भावों से सम्बन्ध रखने वाली भी परम्परा से सुनी हुई सचाई को "औपनिषदीः श्रुतीः कहा है। जो ऐसा न मानोगे, तो मनु में परस्पर विरोध आने से मनु का ही प्रमाण न रहेगा। और मनु ६ । ९४ ॥ में जो "वेदान्त" शब्द, आया है, तो वहां "अन्त" का अर्थ समीप ही है। अतएव हमारे सिद्धान्त में कोई आपत्ति नहीं आती।

(ग) महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि भी कहते हैं—

सप्तद्वीपा वसुमती । त्रयो लोकाः । चत्वारो वेदाः । साङ्गाः सरहस्याः । १ । १ । १ ॥

(कीलहार्न सं० पृ० ६)

यहां पर पतञ्जलि भी रहस्य अर्थात् उपनिषद् को वेदों से पृथक् मानता है। जब उपनिषद् आदि ब्राह्मण भाग वेदो से पृथक् हैं और वेद नहीं हैं, तो ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद मानना अज्ञान ही है।

प्रश्न—महाभाष्य में तो—

वेदे खल्वपि—"पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः" इत्युच्यते । १ । १ । १ ॥

तथा—"बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्" इत्युच्यते १।१।१॥[1]

(कील० सं० पृ० ८)

पुनः—

वेदशब्दा अप्येवमभिवदन्ति—

योऽग्निष्टोमेन जयते य उ चैनमेवं वेद ।

योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते य उ चैनमेवं वेद ।[2]

(कील० सं० पृ० १०)

तथा—

वेदे ऽपि—

य एवं विश्वसृजः सत्त्राण्यध्यास्त इति तेषामनुकुर्वंस्तद्वत् सत्त्राण्यध्यासीत सोऽप्यभ्युदयेन युज्यते ॥

(कील० सं० पृ० २०)

इत्यादि पाठ हैं । ये पाठ ब्राह्मणों में ही मिलते हैं । इन से स्पष्ट हो जाता है कि महाभाष्य में पतञ्जलि मुनि और महाभाष्यस्थ वार्तिक में कात्यायन ब्राह्मणों को वेद मानते थे ।

उत्तर—ब्राह्मणों की भाषा वह नहीं जो मन्त्रों की भाषा है । न ही ब्राह्मणों की भाषा सर्वथा लौकिक है । ब्राह्मणों की भाषा प्रवचन की भाषा है । ब्राह्मण वेद-व्याख्यान हैं ।[3] वेद-व्याख्यान होने से तथा प्रवचन की भाषा में होने से ही इन्हें

---

१ काठक गृह्यसूत्र ४।१८॥ के देवपाल भाष्य के पाठ से अनुमान होता है कि यह प्रमाण कठ ब्राह्मण का है ॥

२ तैत्तिरीय ब्रा० ३ । ११ । ८ । ५ ॥ इत्यादि ।

३ भट्ट भास्कर और सायण आदि पूर्वपक्षी लोग भी ऐसा ही मानते हैं—

ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः ।तै०सं०१।५।१॥

भट्ट भास्करभाष्य

तत्र शतपथब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वाद् व्याख्येयमन्त्रप्रतिपादकः संहिताग्रन्थः पूर्वभावित्वात् प्रथमो भवति ।

काण्वसंहिता सायण भाष्यम् पृ० ८।

तथा च

यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वान्मन्त्रा एवादौ समाम्नाताः ।

तैत्तिरीयसंहिता सायण भाष्यम् पृ० ७।

आनन्दाश्रम सं० ॥

वेद के अत्यन्त समीप माना जाता है। जिस प्रकार से इस समय भी हम कल्पों को वैदिक तो मानते हैं पर साक्षात् ईश्वरप्रोक्त वेद नहीं, वैसे ही प्राचीन लोग भी ब्राह्मणों को वैदिक तथा औपचारिक दृष्टि से वेद कह देते थे।

महाभाष्य के प्रस्तुत वाक्य में भी पतञ्जलि का यही अभिप्राय है। पतञ्जलि इस से पूर्व कात्यायन का वाक्य पढ़ता है—

यथा लौकिकवैदिकेषु।

इसी पर चलते २ वह लोक के प्रतिपक्ष में ब्राह्मणों को वेदवत् मानकर उन का प्रमाण उद्धृत करता है। इस में और कोई बात नहीं। महाभाष्य में अन्यत्र भी ऐसा ही समझना।

(घ) ऐतरेय ब्राह्मण ७। १८॥ में लिखा है[1]—

ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः।
ओमिति वै देवं, तथेति मानुषम्।

पुनः काठक संहिता १४। ५॥ में कहा है—

---

[1] श्रौतसूत्रों में भी यही बात कही गयी है। आश्वलायन श्रौतसूत्र ९। ३॥ में कहा है—

ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः।
ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम्॥

शाङ्खायन श्रौतसूत्र में अनेक गाथाओं को उद्धृत करके १५। २७॥ में कहा है—

तदेतच्छौनःशेपमाख्यानं परःशतगाथमपरिमितम्।
........हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृणाति ओमित्यृचः प्रतिगरः। एवं तथेति गाथायाः।
ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम्॥

कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय १५ में कहा है—

शौनःशेपञ्च प्रेष्यति॥ १५४॥
ओ३मित्यृचां प्रतिगरस्तथेति गाथानाम्॥ १५६॥

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १८। १९॥ में लिखा है—

शौनःशेपमाख्यायते।
ऋचो गाथामिश्राः परःशताः परःसहस्रा वा॥१०॥
हिरण्यकूर्चयोस्तिष्ठन्नध्वर्युः प्रतिगृणाति॥१२॥
ओमित्यृचः प्रतिगरः। तथेति गाथायाः॥१३॥

अनृतं हि गाथानृतं नाराशंसीः ।

और शतपथ ब्राह्मण १ । १ । १ । ४ ॥ में कहा है—

अनृतं मनुष्याः ।

इस से निश्चय होता है कि जो बात पूर्वोक्त ऐतरेय ब्रा॰ के प्रमाण से स्पष्ट होती है, वही सिद्धान्त काठक संहिता से प्रकाशित किया गया है । ऐतरेय ब्रा॰ में कहा गया है कि अमुक यज्ञ में बैठ कर गाथा के उत्तर में 'तथा' कहे । यहां 'तथा' मानुष है, यह स्वयं ब्राह्मण में स्वीकार किया गया है । ऋचा के प्रतिपक्ष में गाथा का उल्लेख स्पष्ट करता है कि जहां ऋचा दैवी=ईश्वरीय है, वहां गाथा मनुष्योक्त है । शतपथ ब्रा॰ कहता है कि मनुष्य अनृतरूप हैं, और काठक संहिता ने कहा है कि गाथा और नारा शंसी भी अनृत हैं, अर्थात् मानवीय हैं ।

पृष्ठ ६८ पंक्ति ५ में हम ने जो प्रतिज्ञा की थी, पूर्वोक्त प्रमाणों से वह सिद्ध हो गई, अर्थात् गाथाएं पौरुषेय हैं । यही पौरुषेय गाथाएं ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उद्धृत की गई हैं । देखो—

शतपथ १३ । ५ । ४ । २, ३, ६, ७, ८, ११ ॥

ये गाथाएं सर्वथैव लौकिक भाषा में ही हैं । जिन ग्रन्थों में लौकिक भाषा वाली पौरुषेय गाथाएं पाई जावें और पाई ही न जाएं किन्तु उद्धृत की गई हों, वे ग्रन्थ वेद अर्थात् ईश्वरीय नहीं हो सकते । ब्राह्मण-ग्रन्थों में यह पाई जाती हैं, अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं । यदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद मानोगे, तो ब्राह्मणोद्धृत "अनृत" गाथाएं ईश्वरकृत माननी पड़ेंगी । यह ब्राह्मण के ही विरुद्ध है । ब्राह्मण तो गाथाओं को मनुष्यकृत कह रहा है, फिर ब्राह्मण को वेद मानना अपने ही अज्ञान का प्रकाश करना है ।

(ङ) तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ३ । २ । ६ ॥ में कहा है—

यद् ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशꣳस्यभवत् ।

अर्थ—जो वेद का मल था वह गाथा, नाराशंसी बन गया ।

इस हीनोपमा से भी गाथा, नाराशंसी आदि को ब्रह्म अर्थात् वेद के तुल्य नहीं माना गया ।

(च) तैत्तिरीयारण्यक २ । ६ ॥ और आश्वलायनगृह्यसूत्र ३ । ३ । १-३ ॥ में क्रमशः कहा है—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः ।

यद् ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति ॥

यहां इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी को ब्राह्मणों का विशेषण माना है।[१] ब्राह्मणपद संज्ञी और इतिहासादि उसकी संज्ञा हैं। इस वाक्य से यही प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राचीन इतिहासों, पुराणों (जगदुत्पत्ति सम्बन्धी बातों), कल्पों, गाथाओं और नाराशंसी आदि का ही संग्रह है। ये कल्प आदि भी मनुष्य प्रणीत ही थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ जो उनका संग्रहमात्र हैं, ईश्वरोक्त नहीं हो सकते।

प्रश्न—निरुक्त अध्याय ४, खण्ड ६ में कहा है—

तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति ।

यहां कहा है कि वेद में इतिहास और गाथा आदि मिश्रित हैं। इस से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि वेद भी मनुष्य-रचित हैं, तथा वेद और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं।

उत्तर—नहीं, इस से यह सिद्ध नहीं होता। यहां "तत्र" पद के साथ निरुक्तस्थ पूर्व वाक्य से "सूक्त" पद की अनुवृत्ति आती है। इसका अभिप्राय यह है कि ऋग्वेद के "उस सूक्त (१।१०५॥) में" ब्रह्म अर्थात् वेद में ही कुछ मन्त्र ऐसे हैं, जो नित्य इतिहास को कहते हैं, और कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिन की पारिभाषिकी संज्ञा गाथा है। गाथा उन्हें इस लिए कहते हैं कि गाथारूप में आलङ्कारिक तौर पर उन में कुछ तथ्यों का वर्णन है।

प्रश्न—या तो गाथाएं लौकिक हो सकती हैं, या वेद की ऋचाओं को ही गाथा कहा जा सकता है। हम गाथा को दोनों प्रकार का कैसे मान सकते हैं।

उत्तर—जैसे श्लोक शब्द साधारण श्लोक के लिए भी प्रयुक्त होता है, और वेद-मन्त्रों के लिए भी प्रयुक्त हो जाता है, वैसे ही गाथा शब्द का भी द्व्यर्थक प्रयोग है। शतपथ ब्रा० १४।७।२।११, १२, १३॥ में निम्नलिखित याजुष मन्त्र को श्लोक कहा गया है—

---

१ गाथा, इतिहास, पुराकल्प आदि ब्राह्मण ही हैं, यह भट्टभास्करमिश्र की भी सम्मति है। तै० सं० भाष्य १।७।१॥ में वह लिखता है—

गाथा इतिहासाः पुराकल्पश्च ब्राह्मणान्येव ।............। सर्वाण्येतानि ब्राह्मणान्युच्यन्ते ।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳬं रताः ॥ ४० । ९ ॥

और साधारण श्लोकों को भी शतपथ में ही श्लोक कहा गया है, ऐसा हम पृष्ठ ९६ पर लिख चुके हैं।

गाथाएं लौकिक हैं, इसका ब्राह्मणान्तर्गत प्रमाण हम पहले कह आए हैं। अब दूसरे आचार्यों के प्रमाण सुनो। याज्ञवल्क्यस्मृति का टीकाकार आचार्य विश्वरूप १ । ४५ ॥ श्लोक पर लिखता है—

'नाराशंस्यः पौरुषेय्यो यज्ञगाथाः ।

गाथा आत्मवादश्लोकाः । पुरुषकृत एव गाथा इत्यन्ये ।'

मेधातिथि मनु ६ । ४२ ॥ पर लिखता है—

गाथाशब्दो वृत्तविशेषवचनः ।"""परम्परागता श्लोकाः ॥

वाल्मीकीय रामायण पश्चिमोत्तर शाखा अयोध्याकाण्ड अध्याय २५ में कहा है—

अपि चेयं पुरा गीता गाथा सर्वत्र विश्रुता ।

मनुना मानवेन्द्रेण तां श्रुत्वा मे वचः कुरु ॥११॥

गुरोरप्यवलितस्य कार्याकार्यमजानतः ।

कामचारप्रवृत्तस्य न कार्यं ब्रुवतो वचः ॥१२॥[1]

महाभारत आश्वमेधिक पर्व अध्याय ३२ में भी कुछ गाथाएं मिलतीं हैं—

---

१ वंगशाखा अध्याय २२ ॥ पाठान्तर कामकार० ।

पञ्चतन्त्र, पूर्णभद्र के पाठ में यह श्लोक ऐसे है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम् ॥ १ । १६९ ॥

यही श्लोक महाभारत आदिपर्व अध्याय १५३ में कुछ पाठान्तर से आया है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ॥६४॥

मेधातिथि मनुभाष्य ६ । ६४ ॥ में किसी ग्रन्थ से इस श्लोक का यह पाठ उद्धृत करता है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

अत्र गाथाः कीर्तयन्ति पुराकल्पविदो जनाः ।
अंबरीषेण या गीता राज्ञा राज्यं प्रशासता ॥४॥
समुदीर्णेषु दोषेषु बाध्यमानेषु साधुषु ।
जग्राह तरसा राज्यमंबरीष इति श्रुतिः ॥५॥[1]

इस से स्पष्ट होता है कि पुरुषकृत श्लोकों को भी गाथा कहते हैं ।

काठक गृह्यसूत्र २५ । २३ ॥ तथा पारस्कर गृह्यसूत्र १ । ७ । २ ॥ से स्पष्ट होता है कि मन्त्रों को भी गाथा कहा गया है । ऐतरेय ब्रा० ६ । ३२ ॥ में आथर्वण २० । १२८ । १२० ॥ आदि कुन्ताप ऋचाओं को गाथा कहा है ।

अतएव हमारा कथन सब प्रमाणों से परिपुष्ट ही है ।

प्रश्न—आश्वलायन श्रौतसूत्र का टीकाकार नारायण तो सब गाथाओं को ऋचा ही मानता है । आश्वलायन श्रौतसूत्र ५ । ६ ॥ में आई हुई एक यज्ञगाथा का वह इस प्रकार अर्थ करता है—

गाथाशब्देन ब्राह्मणगता ऋच उच्यन्ते । यज्ञार्था गाथा यज्ञगाथाः ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१॥ पर वृत्ति लिखते समय वह फिर कहता है—

गाथा नाम ऋग्विशेषाः ।

क्या इन प्रकरणों में उसका ऐसा कथन सत्य है ।

उत्तर—जब नारायण टीका लिख रहा था, तो उस के हृदय में हमारे वाला सत्य पक्ष अवश्य उपस्थित हुआ होगा । उसी से भयभीत हो कर ही उसने यह लिख दिया । जब ब्राह्मण स्वयं ऐसी गाथाओं को मानवी कहता है, तो नारायण के कहने का कौन प्रमाण करेगा । नारायण वाली भूल ही सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक २।९॥ के भाष्य में की है, जब वह **"गाथाः मन्त्रविशेषाः"** कहता है । यहां तो "यद् ब्राह्मणानि" कह कर शेष इतिहास, गाथा आदि को उनका विशेषण माना है । अतः मानवी गाथा ही अभिप्रेत हैं ।

प्रश्न—इस पूर्वोक्त "यद् ब्राह्मणानि" वाक्य के संज्ञासंज्ञिभाव-युक्त अर्थ करने में क्या प्रमाण है ।

उत्तर—आश्वलायन गृह्यसूत्र में इससे पूर्व ऋगादि चारों वेदों के साथ 'यद्'

---

१ नीलकण्ठ का पाठ ऐसे है—

जग्राह तरसा राज्यमंबरीषो महायशाः ॥

शब्द पढ़ा है । वैसे ही "यद्" शब्द "ब्राह्मणानि" पद के साथ भी पढ़ा है । अन्य इतिहास आदि के साथ "यद्" शब्द नहीं पढ़ा । इससे ज्ञात होता है कि सूत्रकार की दृष्टि में इतिहासादि ब्राह्मणान्तर्गत बातों का नाम भी माना जाता था । इस लिए इस स्थान में इतिहासादि को स्वतन्त्र न मानकर उन्हें ब्राह्मणों की संज्ञा बना दिया है।

प्रश्न—ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में क्या कोई और भी प्रमाण है ।

उत्तर—हम इस से पहले अध्याय में लिख चुके हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषियों वा अन्य जनों के नाम लेख पूर्वक उन के इतिहासादि कहे हैं । ब्राह्मणों में उतने ही नहीं, और भी सहस्रों ऐसे ही स्थल हैं । देखो—

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः । मैत्रेयी च कात्यायनी च ।

शतपथ १४।७।३।१॥

तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।

तैत्तिरीय ब्रा० ३।११।८।१४॥

इत्यादि । इन वाक्यों का इतिहास से भिन्न अर्थ हो भी नहीं सकता । और निश्चय ही इन लोगों से पहले ये ग्रन्थ भी न थे । अतएव इतिहासादि युक्त होने से ही इन ब्राह्मणों की भी इतिहासादि संज्ञा अवश्य है ।

प्रश्न—अनेक मन्त्रों में भी तो ऐसा ही इतिहास है । पुनः मन्त्रसंहिताओं की इतिहास संज्ञा क्यों नहीं मानते ।

उत्तर—मन्त्रों में सामान्य इतिहास है । निरुक्तादि आर्ष शास्त्रों में जो बहुधा

तत्रेतिहासमाचक्षते । २ । १० ॥ इत्यैतिहासिकाः । २ । १६ ॥

ऐसा कहा गया है, तो इसका अभिप्राय भी नित्य सामान्य इतिहास से है । हां, कहीं २ मन्त्रार्थ में तो नहीं, पर मन्त्र के तत्त्व को स्पष्ट करने के लिए लौकिक इतिहास भी कहा गया है । मध्य-कालीन साधारण भाष्यकारों ने इन लेखों का अभिप्राय न समझ कर वेदार्थ को दूषित किया है । मन्त्रों के पद यौगिक वा योगरूढ हैं । ऐसा ही सब वेदवित् मानते आये हैं । भगवान् जैमिनि कहते हैं—

परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम् । १ । ३१ ॥

अर्थात्—मन्त्रान्तर्गत सब नाम सामान्य हैं । परन्तु ब्राह्मणादिकों में ऐसी बात

नहीं है। ब्राह्मणों में तो ऋषियों की वंशावलियां[1] दी हैं। उन में पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि का इतिहास है।

अतएव ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है, और ब्राह्मण वेद नहीं।

(छ) ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में और भी प्रमाण देखो। महर्षि गोतम[2] कहते हैं—

स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः।

२। १। ६४॥

पुराकल्प शब्द पर भाष्यकर्ता वात्स्यायन लिखता है—

ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्प[3] इति।

तस्माद्वा एतेन ब्राह्मणा बहिष्पवमानं सामस्तोममस्तौषन्। योनेर्यज्ञं प्रतनवामहा इत्येवमादिः। [ताण्ड्य ब्रा० ८।६।७॥]

अर्थात्—ऐतिह्यइतिहासयुक्त कथन पुराकल्प कहाता है। वात्स्यायन पुराकल्प के उदाहरण में ताण्ड्य ब्राह्मण के पाठ को ही उद्धृत करता है। यहां प्रकृत विषय भी शब्द विषय परीक्षा प्रकरण में ब्राह्मण—वाक्य—विभाग का चल रहा है। अतएव जब वात्स्यायन आदि मुनि ब्राह्मणों में स्वयं इतिहास को मानते हैं तो हम यदि उन की इतिहास भी एक संज्ञा मान लें, तो इस में क्या दोष है।

---

१ वंश आदि वर्णन पुराण का एक अंग है। यह ब्राह्मणों में प्रायः मिलता है। इसी लिए पुराण शब्द कहीं २ ब्राह्मणों का विशेषण है।

२ गोतम साधारण ग्रन्थकार नहीं, प्रत्युत ऋषि है। अतएव महाभारत-काल का वा उससे भी बहुत पहले का है। वात्स्यायन २। १। ५७॥ सूत्र पर स्वयं कहता है—

तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवानृषिः।

पाश्चात्य लेखक वा उन के कतिपय एतद्देशीय शिष्य जो गोतम-सूत्रों को ईसा की प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं, तो यह उनकी सरासर भूल है। ईसा से सैंकड़ों वर्ष पहले तो न्याय भाष्यकार वात्स्यायन ही हो चुका था।

३ तुलना करो महाभाष्य (कील० सं० भाग १ पृ० ५)

पुराकल्प एतदासीत्-संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते।

तुलना करो वाक्यपदीय टीका—

१।१५६॥ **श्रूयते हि पुराकल्पे॥**

प्रश्न—जब अनेक ऋषि मुनि मन्त्र ब्राह्मणों को वेद मानते आए हैं, तो फिर तुम ऐसी आपत्तियां उठा के क्या सिद्ध करना चाहते हो। देखो—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।

आपस्तम्बश्रौत्र सूत्र २४। १। ३१॥ सत्याषाढ श्रौतसूत्र १। १। ७॥ कात्यायन परिशिष्टप्रतिज्ञासूत्र। बोधायन गृह्यसूत्र २। ६। ३॥

तथा—

मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते।

बोधायन गृह्यसूत्र २। ६। ३॥

बोधायनधर्मसूत्र २। ६। ७॥ में तो तै० सं० ६। ३। १०। ५॥ के **जायमानो वै ब्राह्मणः**, इत्यादि ब्राह्मण वाक्य को उद्धृत कर के लिखा है—

एवमृणसंयोगं वेदो दर्शयति॥

अर्थात् इस प्रमाण को वेद शब्द से व्यवहृत किया है।

पुनः—

आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च।

कौशिक सूत्र १। ३॥

इत्यादि आर्ष प्रमाणों के होते हुए कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं।

उत्तर—श्रौतसूत्रों का जन्मदाता जब ब्राह्मण स्वयं कह चुका है कि वह वेद नहीं, तो कल्पसूत्रों के इन स्मार्त्त प्रमाणों का क्या मूल्य हो सकता है। जैमिनि मुनि मीमांसा दर्शन के स्मृतिपाद में बलपूर्वक कहते हैं कि कल्पसूत्र स्मार्त्त हैं। उनका उतना ही प्रमाण है, जितना स्मृति का। स्मृति परतः प्रमाण है। उसकी अपेक्षा परतः प्रमाण होते हुए भी ब्राह्मण सहस्रों गुणा अधिक प्रमाण है। नहीं नहीं, वेद-व्याख्यान होने से अत्यन्त पूज्य है। वे ऋषि जो इन ब्राह्मणों का प्रवचन कर चुके थे, कदापि इनके विरुद्ध प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। इस लिए जब कुछ एक आचार्यों ने मन्त्र ब्राह्मण को वेद कहा है, तो वह औपचारिक भाव से ही है। जैसे आयुर्वेद,

धनुर्वेद आदि वेद कहाते हैं, और जैसे तन्त्रों की उक्तियों को भी मन्त्र और श्रुति[1] कहा गया है, पुनः जैसे शतपथ १३ । ४ । ३ । १२, १३ ॥ में—

इतिहासो वेदः । पुराणं वेदः ।

इत्यादि, इन सबको औपचारिक भाव से वेद कहा गया है, वैसे ही आपस्तम्बादि श्रौतसूत्रों में यह औपचारिक लक्षण है । और यह भी तो अभी निश्चय नहीं कि

---

१ **माधव** सर्वदर्शन संग्रह योगशास्त्र प्रकरण में लिखता है । मन्त्र दो प्रकार के होते हैं-वैदिक और तान्त्रिक ।
कुल्लूक मनु व्याख्या २ । १ ॥ में लिखता है—

श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च ।

अर्थात्—वैदिकी और तान्त्रिकी, दो प्रकार की श्रुति होती है ।

श्रौतसूत्रों में प्रयुक्त अनेक वाक्य भी **मन्त्र** कहाते हैं । सत्याषाढ श्रौतसूत्र ७।१॥ की व्याख्या में **भट्ट गोपीनाथ** लिखता है—

सौत्रेषु वैदिकेषु च मन्त्रेषु ।

अर्थात्—सूत्रस्थ और वैदिक मन्त्रों में अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में दयानन्द सरस्वती ने **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयं** को एक प्रक्षिप्त वाक्य माना है ।

इस के सम्बन्ध में राजा शिवप्रसाद के "दूसरा निवेदन" में G. Thibaut लिखता है—

Dayanand Sarasvati has certinly no right to declare the passage from Katyayana-according to which the Veda consists of Mantra and Brahmana an interpolation. Acting in this way any body mignt declare any passage contrary to his preconceived opinions an interpolation.

अर्थात्-कात्यायन से दिये गये प्रमाण को प्रक्षिप्त मानने का दयानन्द सरस्वती को कोई अधिकार नहीं ।

आज यदि थीबो महाशय जीवित होते, तो उन्हें मस्करी भाष्य के वक्ष्यमाण प्रमाण पर अवश्य विचार करना पड़ता ।

बोधायनादि सूत्रों में यह वाक्य उन्हीं ऋषियों का है अथवा परम्परा में आने वाले उन के शिष्य प्रशिष्यों का।[1]

प्रश्न—ब्राह्मण तो स्वयं इतिहास और पुराण को अपने से पृथक् मानता है। फिर इतिहास और पुराण ब्राह्मणों की संज्ञा कैसे हो सकती है। देखो वात्स्यायन न्यायभाष्य में क्या कहता है—

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते।

४।१।६२॥

अर्थात्—प्रमाणरूप ब्राह्मण से इतिहास और पुराण की प्रामाणिकता ज्ञात होती है।

फिर शतपथ ब्रा० १३।४।३।१२, १३॥ में कहा है—

अथाष्टमेऽहन्।............किंचिदितिहासमाचक्षीत।

अथ नवमेऽहन्।............तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किंचित् पुराणमाचक्षीत।

उत्तर—हम ने कब कहा है कि इन ब्राह्मणों से पूर्व कोई इतिहास और पुराण न थे। प्रत्युत हम तो पृ० ६२ पर स्वयं अनेक प्रमाणों से इन का अस्तित्व स्वीकार कर चुके हैं। इन्हीं की बहुत सी सामग्री का प्रवचन की भाषा में इन ब्राह्मणों में समावेश किया गया है। इसी कारण इन ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है। और इसी कारण पुराण शब्द अनेक स्थलों में विशेषणरूप से ब्राह्मणों का द्योतक बना है।

यास्काचार्य ने निरुक्त ३।१८॥ में—

पुराणं कस्मात्। पुरा नवं भवति।

पुराने अथवा पुराण का यह निर्वचन किया है कि—"प्रथम होते समय नया हो।" ऐसी वार्ताएं ब्राह्मणों में सर्वत्र पाई जाती हैं। इस लिए भी पुराण का लक्षण ब्राह्मण में चरितार्थ हो जाता है। मन्त्रों में सब सामान्य वर्णन है। अतः ब्राह्मण आदि वेद नहीं हो सकते, मन्त्रसंहिताएं ही वेद हैं।

(ज) भगवान् पाणिनि ने अपने अष्टक में ये सूत्र कहे हैं—

---

1 बो० धर्मसूत्र ३।५।८॥ में आये हुए **इति बोधायनः** पदों की टीका करते हुए गोविन्द स्वामी लिखता है— **बोधायनसंशब्दनादस्य शिष्योऽस्य ग्रन्थस्य कर्तेति गम्यते।**

दृष्टं साम । ४ । २ । ७ ॥

तेन प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु । ४ । ३ । १०५ ॥

उपज्ञाते । ४ । ३ । ११५ ॥

कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ११६ ॥

इनका अभिप्राय यह है कि—

१—मन्त्र दृष्ट हैं ।

२—शाखाएं (मूल वेदों को छोड़ कर), ब्राह्मण और कल्प प्रोक्त हैं ।

३—पाणिनि आदि के ग्रन्थ स्फूर्ति से प्रकट हुए हैं ।

४—साधारण ग्रन्थ कांट छांट के बनाये जाते हैं ।

यहां भी ब्राह्मणों को मन्त्रों जैसा ऊंचा पद नहीं दिया गया । मन्त्र दृष्ट हैं, और ब्राह्मण प्रोक्त हैं । आज तक किसी विद्वान् ने ब्राह्मणों की ऋषि आदि अनुक्रमणी भी नहीं सुनी । हां, संहिताओं की ऋषि अनुक्रमणी तो होती है । और जो संहिताएं शाखा नाम से व्यवहृत होती हैं, तथा जिन में ब्राह्मण भाग सम्मिलित हैं, उन की अनुक्रमणिकाओं में भी ब्राह्मण भागों के ऋषि नहीं दिये । हां, प्रजापति को सब ब्राह्मणों का ऋषि तो सामान्यतया कहा है, अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने ही वेदार्थ सुझाया । तनिक विचारो, जो चारायणीय संहिता का आर्षाध्याय है, उसे **मन्त्रार्षाध्याय** कहते हैं । उस में ब्राह्मण भाग के एक दो सामान्य ऋषि तो कहे गए हैं, पर वैसे ब्राह्मण भाग के ऋषि नहीं दिए गए । **मन्त्रार्षाध्याय,** यह नाम ही प्रकट करता है कि मन्त्रों के ही ऋषि हैं ब्राह्मणों के नहीं ।[1] स्थानक १८ से आगे उस में ऐसा पाठ है—

---

१ आश्चर्य की बात है कि **शङ्कर** जैसा विद्वान् वेदान्त सूत्र १।३।३३॥ के भाष्य में लिखता है—

ऋषिणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां ।

अर्थात्—मन्त्र और ब्राह्मणके द्रष्टा ऋषियों की भी ।

यदि आचार्य शङ्कर का भाव ब्राह्मण के सामान्य द्रष्टाओं से है, तो कोई हानि नहीं, और यदि उनका भाव मन्त्रों के समान ब्राह्मणों के भी द्रष्टाओं से है, तो यह वैदिक ऐतिह्य के विरुद्ध है ।

ब्राह्मणानि प्रजापतेः । ब्राह्मणपठितान् मन्त्रानथोदाहरिष्यामः ।

यहां सामान्यरूप से ब्राह्मणों का प्रजापति ऋषि कहकर ब्राह्मणान्तर्गत मन्त्रों के तो ऋषि दिए हैं, पर ब्राह्मणों का कोई ऋषि नहीं दिया । प्रजापति नाम परमात्मा के अतिरिक्त ऋषिविशेष का भी है । वह ब्रह्मा का समीपवर्ती ही था। कहीं २ ब्रह्मा का नाम ही प्रजापति है । वही ब्राह्मणों का आदि प्रवचनकर्ता है । ब्राह्मणरूप में वेदव्याख्यान करने से ही उसे कहीं २ ब्राह्मणों का ऋषि कहा गया है । जहां और दो चार स्थलों में ब्राह्मणों के ऋषि कहे गए हैं, वे भी इसी गौण भाव से कहे गए हैं ।

प्रश्न—वात्स्यायनमुनि तो स्पष्ट ही ब्राह्मणों के भी ऋषि मानते हैं । वहां उन्होंने गौण मुख्य भाव भी नहीं कहा । फिर तुम्हारा पक्ष कैसे माना जावे । देखो वात्स्यायन का लेख—

य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहास-पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति । ४ । १ । ६२ ॥

उत्तर—यदि तुम वात्स्यायन भाष्य को आर्ष रीति से पढ़े होते तो कभी ऐसा प्रश्न न करते । वात्स्यायन तो स्पष्ट ही हमारा पक्ष कह रहा है। सूत्र २ । २ । ६७॥ पर वह लिखता है—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः ।

अतएव दोनों वाक्यों की तुलना से "ब्राह्मणस्य द्रष्टारः" का अर्थ "वेदार्थानां द्रष्टारः" ही है । हम ब्राह्मणों को वेदव्याख्यान कह ही चुके हैं । हां, उस व्याख्यान के साथ २ ऋषियों ने इतिहास, पुराणादि का भी प्रवचन कर दिया है । निरुक्त में भी कहा है—

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता । १०।१०॥ १०। ४६ ॥
इत्याख्यानम् । ११।१९ ॥ ११।२५ ॥ ११।३४ ॥

इस का भी यही अभिप्राय है कि जब वेदार्थ इतिहासादि से संयुक्त कहा जाता है, तो वह प्रिय और रुचिकर लगता है । अस्तु । यदि ब्राह्मणों को भी वेद मानोगे तो उन का अर्थ किन ग्रंथों में बताओगे । मन्त्रार्थ तो ब्राह्मण में विद्यमान है, पर ब्राह्मणार्थ कहीं नहीं । अतः मन्त्र ही वेद है, और ब्राह्मण उन का व्याख्यान-मात्र है ।

ऋषियों को वेदार्थ का ज्ञान तो परमात्मा ने ही कराया । तब ऋषियों ने उस

अर्थ को आख्यानादि के साथ प्रवचन की भाषा में कहा । वही वेदार्थ ब्राह्मण हुआ। इसी लिये वात्स्यायन ने वेदार्थद्रष्टा कह कर सारी बात को खोल दिया है।

और भी जहां कहीं आर्ष ग्रन्थों में ब्राह्मण वाक्यों के साथ "अपश्यत्" आदि क्रियापद लगा कर उन का देखना कहा है, तो वहां भी पूर्वोक्त भाव से ही कहा है। वेदार्थरूप ब्राह्मणो के उन भावों को ही ऋषियोंने मन्त्रों में देखा था। तब प्रवचनकी भाषा में ऋषियों ने उन तथ्यों को कहा। ब्राह्मण वाक्य जैसे के तैसे देखे नहीं गये। मूल मन्त्र ही नित्य-आनुपूर्वी[1] के साथ देखे गये हैं। इसी अभिप्राय से निरुक्त २।११॥ में निम्नलिखित ब्राह्मण वाक्य उद्धृत है—

तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्त ऋषयो ऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम्। इति विज्ञायते।

ब्रह्म नाम वेद अर्थात् मन्त्रों का ही है।[2] इसी ब्रह्म का ब्रह्मा आदि द्वारा व्या-

---

१ यह मीमांसादि सर्व शास्त्रकारों का मत है। ब्राह्मण तो क्या साधारण शाखाओं में नित्य आनुपूर्वी नहीं है। इस लिये ये वेद कैसे हो सकते हैं। शाखा आदिकों में आनुपूर्वी अनित्य है, इस का प्रमाण महाभाष्य ४।३।१०१॥ पर देखो—

यद्यप्यर्थो नित्यो या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या।
तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति॥

तुलना करो तैत्तिरीयारण्यक २।६॥

२ शतपथ १०।२।४।६॥ में कहा है—

सप्ताक्षरं वै ब्रह्म ऽर्गित्येकाक्षरं यजुरिति द्वे।
सामेति द्वे ऽअथ यदतो ऽन्यद् ब्रह्मैव तद्।
द्व्यक्षरं वै ब्रह्म। तदेतत्सर्वं सप्ताक्षरं ब्रह्म।

अर्थात्—सात अक्षरों वाला ब्रह्म=वेद है।

ऋक्	...	...	१ अक्षर
यजुः	...	...	२ ,,
साम	...	...	२ ,,
ब्रह्म = अथर्व...		...	२ ,,
सारा ब्रह्म			७ अक्षर

ख्यान होने से ब्राह्मण नाम पड़ा। अतएव ब्रह्म को तो ऋषियों ने स्पष्ट देखा, ब्राह्मणों को वैसे नहीं। जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, ब्राह्मणों का भावमात्र देखा गया था। इस में प्रमाण भी है। गोपथ ब्राह्मण पू० १। १२॥ में कहा है—

स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत्।

यहां यज्ञ का देखना कहा है। यज्ञ क्रिया है। इस क्रिया का भाव ऋषियों ने मन्त्रों में देखा। वैसे ही ब्राह्मण वाक्यों का भाव भी उन्हों ने जाना था। पुनः जैसे महाभाष्य आदि में—

पश्यति त्वाचार्यः। (कील० सं० भाग १ पृ० २४)

सैकड़ों वार ऐसा पाठ श्रद्धा से कहा गया है, वैसे ही कहीं २ अर्थवादरूप से ब्राह्मणों के लिये "दृश" धातु का प्रयोग हुआ है।

प्रश्न—महामोहविद्रावण का कर्ता कहता है—

किञ्च परमर्षिर्गोतमो वेदप्रामाण्यनिरूपणावसरे स्थूणानि खनन्न्यायेन वेदप्रामाण्यं द्रढयितुमेत्राऽऽशशङ्के "तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।" तस्य वेदस्याप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः तत्रानृतं यथा "पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत्" अनुष्ठितायामपि चेष्टौ न युज्यन्ते पुरुषाः पुत्रैरिति दृष्टार्थस्यास्य वाक्यस्याऽप्रामाण्ये "ऽग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इत्यदृष्टार्थकस्य वाक्यस्य प्रामाण्ये कथमाश्वासः। अत्र हि सूत्रस्थतत्पदेन परामष्टुमिष्टस्य वेदस्याऽप्रामाण्यमाशङ्कमानः "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इति ब्राह्मणस्याप्रामाण्यं दर्शयामास गोतमः। यदि नाम ब्राह्मणं न वेदस्तर्हि वेदाप्रामाण्यसाधनावसरे ब्राह्मणस्याप्रामाण्यप्रदर्शनं कर्णस्पर्शे कटिचालनायितं स्यात्। न हि प्रेक्षावान "मैत्रवाक्यं न विश्वसिही' ति कश्चन बोधयश्चैत्रवाक्यस्य मिथ्यात्वं प्रसाधयेत् तदवश्यं ब्राह्मणं वेद इति परमर्षिरनुमन्यत इति। न च सूत्रस्थतत्पदेन परमर्षिर्नाभिप्रति

तो यह सारा ब्रह्म सात अक्षर का है। यहां सर्वं ब्रह्म का प्रयोग बता रहा है, कि वेद इतना ही है। और ऋक्, यजुः आदि कहने से मन्त्र ही अभिप्रेत हैं। इस लिये यह निश्चय है कि ब्राह्मणों के प्रवक्ता मन्त्र मात्र को ही ब्रह्म=वेद मानते थे, मन्त्र-ब्राह्मण समुदाय को नहीं।

निर्देष्टुम् "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इति ब्राह्मणवाक्यम् । अपि तु यत्किञ्चिदन्यदेव संहितावाक्यमिति सर्वं सिकताकूपायितमिति वाच्यम् ।[१]

१ भीम० का उत्तर–'तदप्रामाण्यम्०' इस न्यायसूत्र से वेद का प्रमाण सिद्ध करने के लिये पूर्वपक्ष किया है । उस पर भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन जी ने ब्राह्मण पुस्तकों के उदाहरण दिए हैं । इस से न्यायकर्ता महर्षि का अभिप्राय प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण पुस्तक भी वेद ही है क्योंकि वेद का प्रमाण सिद्ध करने में अन्य का उदाहरण देना नहीं बन सकता । इस पर हम पूछते हैं कि महामोहविषार्णव कर्त्ता जी ! कहिये तो सही न्यायदर्शन में यह कौन प्रकरण है ? क्या आपने इसको वेदप्रामाण्यपरीक्षा प्रकरण समझा है ? वा अन्य कोई । यदि वेदपरीक्षा प्रकरण समझा है तो कहिये कि वेद परीक्षा प्रकरण के होने में क्या नियम है ? तत् शब्द से पूर्व प्रतिपादित विषय लेना, यह तो सब आर्य्यों का सिद्धान्त ही है, पर आप कहिए कि "तद् प्रामाण्यम्० " इस सूत्र से पहले वेदशब्द किस सूत्र में पढ़ा है ? जो तत् शब्द से लेना चाहिए ।

"...इन लोगों ने विश्वनाथ भट्टाचार्य्यकृत न्यायसूत्र की वृत्ति भी नहीं देखी ? जो प्रकरण का नाम तो मालूम हो जाता । विश्वनाथ ने इस प्रकरण का नाम "शब्द-विशेषपरीक्षा" प्रकरण रक्खा है । सो न्यायभाष्य के अनुकूल है ।[२] और भाष्यकार वात्स्यायन ऋषि ने भी लिखा है कि "तस्य शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति" उस पूर्वोक्त शब्द का प्रमाण मानना ठीक नहीं है । अर्थात् उक्त सूत्र में तत् शब्द करके शब्दप्रमाण का आकर्षण करना चाहिए, और पूर्व से शब्दपरीक्षा का प्रसङ्ग भी चला ही आता है । यद्यपि शब्दप्रमाणान्तर्गत वेद भी आता है, इसी लिए हम यह प्रतिज्ञा नहीं करते कि शब्दविशेषपरीक्षा कहने में वेद की परीक्षा न आवेगी, परन्तु यह प्रतिज्ञा अवश्य करते हैं कि शब्दविशेषपरीक्षा में केवल मूलवेद ही लिए जावें और

---

१ ऋषि दयानन्द सरस्वती ने गोतम के प्रमाण से ब्राह्मणों का वेद न होना सिद्ध किया था । उस का यह उत्तर मोहनलाल ने लिखा । इस का उचित पर पुनरुक्त-दोषपूर्ण उत्तर भीमसेन ने आर्यसिद्धान्त चैत्र संवत् १९४५ भाग १, अङ्क ११, पृ० १६६, १६७ पर दिया । उसी उत्तर को कुछ काट कर, हम ने यहां धरा है ।

२ वात्स्यायन भाष्य के अनेक छपे ग्रन्थों में भी इस प्रकरण को "शब्दविशेष-परीक्षा प्रकरण ही लिखा है । भगवद्दत्त ।

ब्राह्मणादि न लिए जावें, यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता। क्योंकि शब्द सामान्य में हम लोगों के विश्वास योग्य व्यवहार के शब्द भी आ सकते हैं और शब्दविशेष कहने से श्रुति स्मृति ही ली जावेंगी। इसमें भी मूल वेद सूर्य के समान स्वतः प्रकाशस्वरूप है। उसकी परीक्षा करना सर्वांश में ठीक नहीं। जैसे सूर्य को देखने के लिए द्वितीय सूर्य्य वा दीपकादि की अपेक्षा नहीं होती, वैसे किसी अन्य प्रमाण से वेद की परीक्षा करना नहीं बनता। इसी कारण शब्दविशेषपरीक्षा में महर्षि वात्स्यायन जी ने विशेष कर ब्राह्मण भागों के उदाहरण दिए हैं। जो कुछ वेदपरीक्षा हो सकती है तो वेद से ही हो सकती है। और बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि महामोहविषार्णवकर्त्ता जिन न्यायकर्त्ता महर्षि के प्रमाण से अपने पक्ष को सिद्ध करना चाहते हैं, उन्हीं ऋषि के उसी प्रमाण से इनका पक्ष खण्डित होता है, किन्तु सिद्ध कुछ भी नहीं होता। सूत्रकार और भाष्यकार ऋषियों ने "तद् प्रामाण्यम्" इस सूत्र से पूर्व कहीं भी वेदशब्द का नाम नहीं लिया। इसी से इस सूत्र में तत् शब्द से वेद का परामर्श नहीं किया, किन्तु शब्द का परामर्श किया। और ऋषि लोग ऐसा अप्रसङ्ग वर्णन इन लोगों के तुल्य क्यों करें ? क्योंकि ऋषियों में पक्षपातादि दोष नहीं होते हैं। ऋषि लोगों ने कहीं २ वेदविचार प्रकरण में ब्राह्मण पुस्तकों के वाक्य भी रक्खे हैं, सो व्याख्यान व्याख्येय का तादात्म्य सम्बन्ध मान के। "तदेव सूत्रं विगृहीतं व्याख्यानं भवति" कहा है अर्थात् व्याख्येय मूल पुस्तक में जो पद हैं उन्हीं को लौट पौट कर वा उपयोगी अन्य पद लगाकर अन्वित कर देना व्याख्यान कहाता है। इस कारण ब्राह्मण वाक्य वेद विचार प्रकरण में लेना अनुचित नहीं, अथवा ब्राह्मण वाक्यों को वेद के तुल्य मानकर उदाहरण देना बन सकता है। "छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति" इसके अनुसार जब व्याकरणादि के सूत्रों में वेद के तुल्य कार्य होते हैं तो वेद के अति निकटवर्त्ती ब्राह्मणों में वेद तुल्य कार्य होवें तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। यदि वेद में जैसे कार्य होते हैं वैसे ब्राह्मणों में होने से उनको मूल वेद मान लिया जावे और मनुष्य-बुद्धिरचित न माना जावे तो सूत्रादि को भी ऋषि रचित न मानना चाहिए, क्योंकि वहां भी छन्दोवत् कार्य होते हैं तो उनको भी वेद मान लिया जावे ? जब ऐसा नहीं होता तो ब्राह्मण भी मूल वेद नहीं हो सकते और ब्राह्मण का मनुष्यबुद्धिरचित होना उन्हीं के पद वाक्यों की रचना से सिद्ध हो जाता है, किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं।" इति।

इसके आगे सूत्र २ । १ । ६१ ॥ में जो वात्स्यायन का लेख है, उससे भी ब्राह्मण-ग्रन्थों का वेद न होना ही सिद्ध होता है । वात्स्यायन कहता है—

प्रमाणं शब्दः । यथा लोके । विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः ।

अर्थात्—शब्द-प्रमाण मानना ही पड़ेगा । जैसे व्यवहार में शब्द प्रमाण माने विना काम नहीं चलता, वैसे ही आप्तों के उपदेश को भी प्रमाण मानना चाहिए । और जैसे व्यवहार में त्रिविध वाक्य विभाग है, वसे ही ब्राह्मणों में भी है । जैसे व्यवहार में पुराकल्प आदि हैं, वैसे ही ब्राह्मणों में भी हैं । परन्तु श्रुति सामान्य है । इसके विपरीत ब्राह्मण में इतिहास है । अतएव इतिहासादि होने से ब्राह्मणों के शब्द मन्त्रों की अपेक्षा लौकिक ही हैं । इस लिए ब्राह्मण वेद नहीं है ।

प्रश्न—मोहनलाल कहता है, पूर्वोक्त वाक्य का भाव ऐसे कहना चाहिए—

"प्रमाणं शब्दो यथा लोके" इति सादृश्यार्थकं यथापदघटितं, ब्रूते च तथेति । लोके यथा शब्दप्रमाणं तथा वेदेपीत्यध्याहार्यम् । वेदे ब्राह्मणरूपे ब्राह्मणसंज्ञकानां वाक्यानां विभागस्त्रिविधः इत्यर्थस्य तात्पर्यविषयत्वात् ।"

उत्तर—यह भी मोहनलाल की भूल ही है । यहां "लोक" शब्द लौकिक ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ । प्रत्युत व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के लिये हुआ है । अतः तथा के साथ वेद पद का अध्याहार निरर्थक ही है । और २ । १ । ६५ ॥ सूत्र पर जो वात्स्यायन लिखता है—

यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं वेद-वाक्यानामपि विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हतीति ।

इस का यही अभिप्राय है कि यद्यपि वात्स्यायन ने "वेदवाक्यानाम्" पद के आगे "ब्राह्मण" पद नहीं पढ़ा, तथापि यहां औपचारिक भाव से ही वेद शब्द का प्रयोग हुआ है । औपचारिक भाव से इतना कह देने से ही ब्राह्मण वेद नहीं माने जा सकते ।

प्रश्न—तुम्हारे पास क्या प्रमाण है, कि यहां वेद शब्द का प्रयोग औपचा-रिक भाव से है ।

उत्तर—वात्स्यायन आदि मुनि जो वेद, ब्राह्मण को जानते थे, वे उन के विरुद्ध नहीं कह सकते थे । हम सिद्ध कर चुके हैं कि ब्राह्मण अपने को वेद से भिन्न वा मनुष्यकृत बताता है । पुनः वात्स्यायन इन के विरुद्ध कैसे समझ सकते थे । अतः

उन का प्रयोग औपचारिक ही है । ब्राह्मण-ग्रन्थों के वेद न होने में और भी प्रमाण देखो ।

(झ) शतपथ १४ । ६ । १० । ६ ॥ में कहा है—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रजायन्ते ।

लग भग ऐसा ही पाठ शतपथ १४ । ५ । ४ । १० ॥ में भी आता है । यहां सूत्रादिवत् उपनिषदों को स्पष्ट वेदों से पृथक् माना है । जब ब्राह्मणकार स्वयं ब्राह्मण विभागों अर्थात् उपनिषदों को वेद नहीं मानते, तो फिर ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे हो सकते हैं ।[1]

प्रश्न—सनातनधर्मोद्धार का कर्त्ता नकछेदराम खण्ड२पृ० ५३० पर लिखता है—

"जहां" केवल मन्त्रों को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है जैसे 'अहे बुध्निय' इत्यादि मन्त्रों में । और जहां मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता किन्तु ऋग्वेद आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है, जैसे 'एवं वा अरे०' इत्यादि पूर्वोक्त ब्राह्मण वाक्य में ।"

क्या यह लेख उचित है ।

उत्तर—ऐसे लेख प्रकट करते हैं कि लेखक वैदिक वाङ्मय से अपरिचित ही है । मध्यम-कालीन मीमांसकों के कुछ भ्रमोत्पादक लेख पढ़ कर ही उस ने ऐसा लिख दिया है । नकछेदराम ने जो प्रमाण 'एवं वा अरे' शतपथ से उद्धृत किया है, उसे ही नहीं देखा । वहां भी तो ऋग्वेदादि से उपनिषदों को पृथक् कहा है । काशी के पण्डित ने अपने दिये प्रमाण को ही जब पूरा नहीं विचारा, तो और वह क्या लिखेगा ।

---

१ आर्षग्रन्थों का तो क्या कहना, उस स्मृति में भी जो याज्ञवल्क्य के नाम मढ़ी जाती है, इसी विचार के चिन्ह पाये जाते हैं । देखो अध्याय ३—

यतो वेदाः पुराणं च विद्योपनिषदस्तथा ।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यत्किञ्चिद्वाङ्मयं क्वचित् ॥ १८९ ॥

बेचारा विश्वरूप इस आपत्ति को देख कर कहता है —

उपनिषदां पृथग्वचनं वेदभागान्तरस्य तादर्थ्यप्रदर्शनार्थम् ।

ऋक् पद मन्त्रों के लिये आवे, और ऋग्वेदादि मन्त्र ब्राह्मण के समुदाय के लिये वर्ते जावें, ऐसा कोई नियम नहीं । ये दोनों शब्द मन्त्रसंहिता के लिये ही प्रयुक्त होते रहे हैं । इस में प्राचीन ब्राह्मणों के प्रमाणों को देखो । शतपथ ब्राह्मण १३ । ४ । ३ ॥ की अनेकों कण्डिकाओं में क्रमशः कहा है—

तानुपदिशति ऋचो वेदः······ऋचाᳪ सूक्तं व्याचक्षण ॥ ३ ॥
तानुपदिशति–यजूᳪषि वेदः···यजुषामनुवाकं व्याचक्षण ॥ ६ ॥
तानुपदिशति–आथर्वणो वेदः···अथर्वणामेकं पर्व व्याचक्षण ॥७॥
तानुपदिशति–सामानि वेदः···साम्नां दशतं ब्रूयात् ॥ १४ ॥

अब विचारने की वार्ता है, कि यहां वेद शब्द केवल ऋगादि के लिये ही प्रयुक्त हुआ है । ऋगादि मन्त्र हैं । और ऋग्वेदीय आदि ब्राह्मणों में सूक्त आदि अवान्तर विभाग है भी नहीं । इस लिये ऋग्वेदादि शब्द भी मन्त्र संहिताओं के लिये ही वर्ते गये हैं, ब्राह्मणों के लिये नहीं, ऐसा मानना ही युक्तियुक्त है ।

शतपथ के इसी प्रकरण की ८, ९, १० कण्डिकाओं में जो अङ्गिरसो वेद, सर्पविद्या वेद, देवजनविद्या वेद, संज्ञाएं हैं, तो यह अथर्ववेद के अवान्तर विभागों के ही नाम हैं । इन सब में 'पर्व' विद्यमान हैं । शेष मायावेद, इतिहासोवेद, पुराण वेद, परम्परा से आने वाले संग्रहमात्र हैं । ये पूरे ग्रन्थरूप में नहीं हैं । अथवा इन का अवान्तर विभाग नहीं है । इसी लिये इन के साथ कहा है—

कांचिन्मायां कुर्यात् । ११ ॥ कंचिदितिहासमाचक्षीत । १२ ॥
किञ्चित् पुराणमाचक्षीत । १३ ॥

इन तीनों के साथ, जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, वेदपद का औपचारिक प्रयोग है । इस से आगे १५वीं कण्डिका में कहा है—

आचष्टे···सर्वान् वेदान्···।

अर्थात् सब वेद कहे । यहां ब्राह्मणों का स्वरूप भी कथन नहीं किया गया, और वास्तविक तथा औपचारिक भाव से वेद भी कह दिये । इस लिए ज्ञात होता है कि याज्ञवल्क्य आदि ऋषि स्वप्न में भी ब्राह्मणों को वेद न मानते थे ।

(ञ) इसी प्रस्तुत विषय में, हमारे सिद्धान्त को पुष्ट करने वाले और भी प्रमाण

देखो। प्रायः सारे ही ब्राह्मणों में प्रजापति अर्थात् परमात्मा से वेद के प्रकाशित होने के सम्बन्ध में कुछ वाक्य आये हैं। कतिपय ब्राह्मणों के वे वाक्य नीचे दिए जाते हैं—

···स एतानि त्रीणि ज्योतींष्यभ्यतप्यत सोऽग्नेरेवर्चोऽसृजत वायोर्यजूंष्यादित्यात् सामानि । स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतप्यत ।···। अथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत् । एतेषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यृचां प्रावृहत्···। कौ० ६ । १० ॥

स इमानि त्रीणि ज्योतीꣳष्यभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥३॥ स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदात् ··· ॥४॥ श० ११ । ५ । ८ ॥

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत् । तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत् । अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूꣳषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥ स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत् । तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहत् । भूरित्यृग्भ्यः ॥ ३ ॥ छान्दोग्य उ० ४ । १७ ॥

इस विषय के और भी ब्राह्मण वाक्य दिये जा सकते हैं, पर इतनों से ही यथेष्ट अभिप्राय निकल पड़ता है। यहां ऋक् और ऋग्वेद शब्द पर्यायवाची ही हैं। 'भूः' व्याहृति ऋचाओं से उत्पन्न हुई अथवा ऋग्वेद से, इस कहने में कोई भेद नहीं। ऋक्, यजु, और साम, इन तीनों का समूह त्रयी विद्या है। इन्हीं को शतपथ के प्रमाण में ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद कहा है। इसी से स्पष्ट है कि ऋक् आदि शब्द ऋग्वेदादि के पर्यायवाची हैं।

प्रश्न—तीनों प्रमाणों को समता में रखना उचित नहीं। शतपथ में मन्त्र ब्राह्मण समुदाय का कथन है और कौषीतकि आदि में मन्त्रमात्र का।

उत्तर—ऐसी निर्मूल कल्पना निरर्थक है। जब इस प्रकरण में एक सामान्य विषय का कथन है, और पूर्व प्रदर्शित संगति भी एक ही है, तो तुम्हारी बात को कोई विद्वान् न मानेगा। और ब्राह्मण-ग्रन्थ तो आदि सृष्टि में प्रकट भी नहीं हुए। वे काल, काल पर बनते चले आये हैं। उनका सङ्कलन महाभारत-काल में हुआ है।

यह ब्राह्मण-ग्रन्थ समग्ररूप से बहुत पुराने नहीं हैं। अतः आदि सृष्टि के काल के कथन में वेद शब्द से ब्राह्मण का भी अभिप्राय लेना अनुचित ही नहीं, सरासर खेंचतान है। जब इन प्रकरणों में वेद शब्द से ब्राह्मण नहीं लिया गया, तो अन्यत्र भी आर्ष वाङ्मय में ऐसा ही समझना।

प्रश्न—कठ आदि ब्राह्मणों को नवीन नहीं समझना चाहिए। मीमांसा सूत्र १।१।२८॥ पर शबर ने ब्राह्मणों के प्रमाण देकर, आगे सूत्र ३०-३२ तक यही सिद्ध किया है कि ब्राह्मणादि भी अपौरुषेय हैं। सूत्र ३० पर वह किसी पुराने शास्त्र का प्रमाण ऐसे धरता है—

स्मर्यते च—वैशम्पायनः सर्वशाखाध्यायी। कठः पुनरिमां केवलां शाखामध्यापयां बभूव, इति।

अर्थात् कठादि शाखा वा ब्राह्मण कठादि ऋषियों से पहले भी विद्यमान थे।

उत्तर—शबरस्वामी ने मीमांसा, तर्कपाद के इस वेद-अपौरुषेयता अधिकरण में जो अनेक उदाहरण दिये हैं, वे उचित नहीं हैं। शबर तो ब्राह्मणों को वेद मानता था।[१] अतः उसने ऐसे उदाहरण दे दिये। अन्यथा ऐसे सब उदाहरण मन्त्रों से देने चाहिए थे।

कठशाखा वा ब्राह्मण, वैशम्पायन के समीप भले ही हों, पर व्यास से पहले नहीं थे। आदि सृष्टि में ब्राह्मण तो क्या, शाखाएं वा उनकी सामग्री भी नहीं थी। तब तो मूल मन्त्र संहिताएं ही थीं। इस विषय का प्रमाण आगे दिया जाता है। उस से यह भी सिद्ध होगा कि मन्त्र समूह ही वेद हैं, ब्राह्मण आदि नहीं।[२]

---

१ देखो शाबर मीमांसाभाष्य **मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः।२।१।३३॥**

२ यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों का हम सर्वांग प्रमाण नहीं करते, तो भी महावस्तु में "ब्राह्मणवेदेषु" पद बहुत स्पष्ट हैं। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध विद्वानों को जो परम्परा विदित थी, तदनुसार ब्राह्मण वेद नहीं थे। देखो—

तस्य राज्ञो पुरोहितो ब्रह्मायुः नाम त्रयाणां वेदानां पारगो स-निर्घण्ठकैटभानां इतिहासपंचमानां अक्षरपदव्याकरणे अनल्पको सोऽयमाचार्यः कुशलो ब्राह्मणवेदेषु पि शास्त्रेषु दानसंविभागशीलो दश-कुशलकर्मपथां समादाय वर्तति।

भाग २, पृष्ठ ७७, पंक्ति ८-११। महावस्तु में ऐसा ही प्रयोग कई स्थलों पर आया है।

पूर्वोक्त तीनों प्रमाणों की जो सङ्गति हम ने लगाई है, वह अत्यन्त उचित है, इस का निश्चय षड्विंश ब्राह्मण १ । ५ । ७ ॥ के आगे धरे प्रमाण से पूरा पूरा हो जावेगा—

प्रजापतिर्वा इमाँ्स्त्रीन्वेदानसृजत ।......तेभ्यो भूर्भुवः स्वरित्य-क्षरद्भूरित्यृग्भ्यो ऽक्षरत् ।...भुवरिति यजुर्भ्यो ऽक्षरत् ।...स्वरिति सामभ्यो ऽक्षरत् ।

इस स्थान में तीन वेदों के ही तीन पर्याय ऋक्, यजुः और साम कहे हैं । इस लिए ऋक् पद से मन्त्रों का और ऋग्वेद पद से ऋग्वेदीयों के मन्त्रों और ब्राह्मणों का अभिप्राय लेना कल्पनामात्र है । और यह कल्पना भी निराधार, और प्रमाण-शून्या है ।

(ट) गोपथ ब्राह्मण पू० १ । ५॥ में कहा है—

यान् मन्त्रानपश्यत् स आथर्वणो वेदो ऽभवत् ।

क्या इस से बढ़ के और स्पष्ट प्रमाण की भी आवश्यकता है । यहां सारा सिद्धान्त विवाद से ऊपर कर दिया गया है । मन्त्र समूह का ही नाम वेद है, और वही आदि सृष्टि में प्रकाशित हुआ । वही अपौरुषेय है । उसकी आनुपूर्वी नित्य है । शेष शाखायें कृत तो नहीं, पर आनुपूर्वी अनित्य होने से प्रोक्त है ।

(ठ) और भी देखो । गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्ध १।१॥ में लिखा है—

तस्य [ओमित्येतदक्षरस्य] प्रथमया स्वरमात्रया ऋग्वेदं अन्वभवत् ।१७।

„	„	**द्वितीयया**	„	...**यजुर्वेदं**	„	**॥१८॥**
„	„	**तृतीयया**	„	**सामवेदं**	„	**॥१९॥**
„	„	**वकारमात्रया**		**अथर्ववेदं**	„	**॥२०॥**
„	„	**मकारश्रुत्या**		**उपनिषदः**	„	**॥२१॥**

अब विचारने का स्थान है, कि ओम् की प्रथम मात्रा से ऋग्वेद, दूसरी से यजुर्वेद, तीसरी से सामवेद, वकारमाला से अथर्ववेद, इतना कह कर, मकारश्रुति से उपनिषदों आदि का बनाना कहा है । अतः यदि उपनिषद् वेदान्तर्गत होते, तो ब्राह्मण वाले ऐसा प्रयोग न करते । प्रत्युत ऐसे प्रयोग से उन का स्पष्ट अभिप्राय यही है, कि उपनिषदादि वेद नहीं हैं ।

(ड) कात्यायन का गुरु **शौनक** आर्षानुक्रमणी के आरम्भ में ही लिखता है—

ऋग्वेदमखिलं द्रष्टारो ये हि मुनिपुंगवाः । १ । १ ॥

अर्थात्—अखिल ऋग्वेद के जो मुनिश्रेष्ठ द्रष्टा थे। ऐसा कह कर, शौनक केवल मन्त्रों के ही द्रष्टा देता है। इस से प्रतीत होता है कि शौनक के अनुसार मन्त्रसमूह ही अखिल ऋग्वेद था। उस ऋग्वेद में ब्राह्मण की एक पंक्ति भी नहीं थी। जब गुरु ऐसा मानता है, तो उस के शिष्य भी सम्भवतः वैसा ही मानते होंगे। अतएव कात्यायन आदि के ग्रन्थों में **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** वाक्य बहुत पीछे मिलाया गया होगा।

(ढ) ब्राह्मणग्रन्थ दृष्ट नहीं हैं,और इस लिये वेद भी नहीं हैं,तथा मनुष्यों के बनाये हुए हैं,इस विषय में एक और प्रबल प्रमाण देखो। सामब्राह्मणों में एक **सुब्रह्मण्या**[1] आती है। उस के एक भाग में निम्नलिखित पद हैं—

कौशिक ब्राह्मण गोतम ब्रुवाणेति ।

इन के विषय में शतपथ ३ । ३ । ४ । १९ में लिखा है—

शश्वद्धैतदारुणिनाधुनोपज्ञातं यद्गौतम ब्रुवाणेति ।

अर्थात्—ठीक इस प्रकार यह सुब्रह्मण्या का भाग अभी २ आरुणि ने निज स्फूर्ति से बनाया है।

जैमिनीय ब्राह्मण २ । ७९, ८० ॥ में लिखा है[1]—

अथ ह वा एके कौशिक ब्राह्मण गौतम ब्रुवाणेति आह्वयन्ति ।
तदु ह वा आरुणिनैव यशस्विनोपज्ञातम् ।

अर्थात्—कई एक **कौशिक ब्राह्मण** आदि कह कर पुकारते हैं। तो यह यशस्वी आरुणि को स्फूर्ति से ज्ञात हुआ था।

हम पहले पृ० ११४ पर पाणिनीय सूत्रों के प्रमाण से बता चुके हैं कि **उपज्ञात** ग्रन्थ वा बातें मनुष्यप्रणीत हैं, अस्तु।

कौशिक ब्राह्मण आदि पद सुब्रह्मण्या का एक भाग हैं।

---

[1] देखो काण्व शतपथ की भूमिका पृ० १०१, धारा ७।

इस के विषय में जैमिनीय और शतपथ दोनों ब्राह्मण कहते हैं कि इसे आरुणि ने बनाया है। और शतपथ तो कहता है कि **अधुनैव** अर्थात् **अभी २** बनाया है। इस से जहां एक ओर यह ज्ञात होता है कि जैमिनीय और दूसरे सामब्राह्मण शतपथ के ही काल में बने , वहां दूसरी ओर यह भी प्रकट होता है कि शतपथादि ब्राह्मणों के प्रवक्ता याज्ञवल्क्यादि ऋषि ब्राह्मण वाक्यों को मन्त्रवत् दृष्ट नहीं मानते थे, प्रत्युत प्रणीत ही मानते हैं। इस लिये यह ही वैदिक सिद्धान्त ठहरता है कि ब्राह्मण भागों के **उपज्ञात** होने से ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं।

प्रश्न—चरणव्यूह कण्डिका द्वितीय में यह क्या लिखा है कि मन्त्र ब्राह्मण वेद है। देखो—

त्रिगुणं पठ्यते यत्र मन्त्रब्राह्मणयोः सह।
यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषाः शाखान्तराः स्मृताः ॥

उत्तर—साम्प्रतिक दशा में चरणव्यूह कोई विश्वसनीय ग्रन्थ नहीं है। इस के आठ नौ भेद तो हम ने ही देखे हैं। वेबर साहब का चरणव्यूह और, काशी का छपा और। हस्तलिखितों के भेद का तो कहना ही क्या। ऐसी अवस्था में कौन कह सकता है कि मूल ग्रन्थ कितना था। और यह श्लोक तो किसी तैत्तिरीय शाखा-भक्त का मिलाया हुआ प्रतीत होता है।

चरणव्यूह का टीकाकार महिदास इस श्लोक को ऐसे पढ़ता है—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदः त्रिगुणं यत्र पठ्यते।
यजुर्वेदः स विज्ञेय अन्ये शाखान्तराः स्मृताः ॥

जहां मूल में पूर्वोद्धृत श्लोक छपा है वहां उसने उसकी व्याख्या भी नहीं की। उस से बहुत आगे यह श्लोक स्वयं लिख कर टीका करता है। इससे भी मूल पाठ में श्लोक का प्रक्षिप्त होना पाया जाता है। श्लोक का अर्थ करके अन्त में महिदास लिखता है—

एतादृशपठनं शाखाया अध्ययनं [यत्र] स यजुर्वेदः।
तच्च तैत्तिरीयशाखायामेवास्ति।

इसी लिए हम ने कहा था कि यह श्लोक किसी तैत्तिरीय-शाखा-भक्त का मिलाया हुआ प्रतीत होता है।

(ण) ब्राह्मण ग्रन्थों के ऋषिप्रोक्त होने में और भी प्रमाण है। मीमांसा सूत्र १२। ३। १७॥ ऐसे पढ़ा गया है—

मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिकश्रुतिः।

इसी के भाष्य में शबर कहता है—

भाषास्वरो ब्राह्मणे प्रवृत्तः।

अर्थात्—ब्राह्मणग्रन्थों में वही स्वर प्रवृत्त हुआ है जो साधारण भाषा में है।

जब ब्राह्मण का स्वर ही भाषा स्वर अर्थात् लौकिक स्वर है, तो वह ईश्वरप्रोक्त कैसे हो सकता है। यह बात शिक्षा ग्रन्थों वा भाषिकसूत्र से सिद्ध होती है। विस्तार-भय से अधिक नहीं लिखा गया। सत्यव्रत सामश्रमी जी ने त्रयीपरिचय में इसे भले प्रकार लिखा है।

(त) ब्राह्मणादि ग्रन्थों में मन्त्रों की प्रतीकें धर के "इति" कहकर न केवल मन्त्रों का व्याख्यान ही किया है, प्रत्युत उन के ऋषि देवता आदि भी दिए हैं। ब्राह्मणों के प्रमाणों से हम वेदों का आदि सृष्टि में होना कह चुके हैं। मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि उस से बहुत पीछे हुए हैं। उनका उल्लेख करने वाले ग्रन्थ उस से पीछे के होंगे। इन मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषिविशेषों के नाम का सामान्यार्थ हो ही नहीं सकता। अतः ब्राह्मणादि ग्रन्थ बहुत नये और ऋषि-प्रोक्त ही हैं। इस के उदाहरण काठक संहिता में देखो।

महि त्रीणामवो ऽस्तु। [का० सं० ७। २॥]

इत्येष प्राजापत्यस्त्रिचः। ७। ६॥

स वामदेव उख्यमग्निमविभस्तमवैक्षत स एतत् सूक्तमपश्यत् कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्[1], इति। का० सं० १०। ५॥

इत्यादि।

---

१ ऋग्वेद ४।४॥

ऐसे ही अष्टाध्यायी आदि अन्य ग्रन्थों में भी ब्राह्मणों को वेद नहीं माना। इस के उदाहरण हम ने पाणिनीय सूत्रों से पहले दे दिये हैं। पूर्वपक्षियों के अष्टाध्यायीस्थ प्रमाण इतने निर्बल हैं कि विद्वान् स्वयं उन का उत्तर दे सकते हैं।

इस सारे लेख से यह ज्ञात हो चुका है, कि मन्त्रसंहिताएं ही वेद हैं। वही अपौरुषेय हैं। अत्यन्त प्राचीन आचार्य ऐसा ही मानते थे। आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र—

मन्त्रब्राह्मण्योर्वेदनामधेयम्। ३४॥

की व्याख्या में धूर्तस्वामी लिखता है—

कैश्चित् मन्त्राणामेव वेदत्वमाश्रितम्। ३४॥

पूर्वोक्त सूत्र की व्याख्या में हरदत्तमिश्र भी यही कहता है—

कैश्चिन्मन्त्राणामेव वेदत्वमाख्यातम्। ३३॥

अर्थात्—कई एक आचार्य मन्त्रों को ही वेद मानते हैं।

इस लेख से प्रकट है कि धूर्तस्वामी और हरदत्त की दृष्टि में आपस्तम्ब के काल से पहले के कई आचार्य मन्त्रमात्र को ही वेद मानते थे। हमारा विचार है कि यह मूल सूत्र चाहे औपचारिक भाव से ही लिखा गया हो, पर आपस्तम्ब के काल सेबहुत अर्वाचीन है। इस लिए सम्भवतः आपस्तम्बादि भी मन्त्रमात्र को ही वेद मानते थे। जब आपस्तम्बादि के ग्रन्थों में इस सूत्र का प्रक्षेप किया गया, तब उस से उत्तर काल में लोगों ने ब्राह्मणों को भी वेद मानना आरम्भ कर दिया। अस्तु, हो सकता है, हमारे इस विचार से कई विद्वान् सहमत न हों, पर इतना तो उन्हें भी मानना ही पड़ेगा कि धूर्तस्वामी और हरदत्त की दृष्टि में आपस्तम्बादि के काल से पहले के अनेक आचार्य अवश्य ही केवल मन्त्र-समुदाय को वेद मानते थे।

महाभारत-काल के कुछ पश्चात् एक याज्ञिक काल आया। उस में ब्राह्मणों का अत्यन्त उपयोग होने वा अति मान होने से, ब्राह्मणों को औपचारिक दृष्टि से वेद कहा गया। ब्राह्मणों को ही क्या, धर्मशास्त्रों को भी कभी २ औपचारिक दृष्टि से आम्नाय कहा गया है। देखो गौतमधर्मसूत्र का टीकाकार मस्करी—

यत्र चाम्नायो विदध्यात्। १। ५१॥

सूत्र पर टीका करते हुए कहता है—

अथवा-आम्नायशब्देन मनुरुच्यते ।

अर्थात्—आम्नाय शब्द से मनुस्मृति का भी ग्रहण हो सकता है। जब आम्नाय पद किसी धर्मशास्त्री की दृष्टि में अपने मूल=मनुस्मृति के लिये उपचार से प्रयुक्त हो सकता है, तो याज्ञिकों की दृष्टि में यज्ञक्रियाप्रधान ग्रन्थों के लिये उपचार से वेद शब्द प्रयुक्त हो गया, इस में अणुमात्र भी आश्चर्य नहीं।

और भी देखो तन्त्रवार्तिक १। ३। ७॥ में भट्ट कुमारिल लिखता है—

स्मृतिग्रन्थे ऽप्याम्नायशब्दप्रयोगात् । स्मार्तधर्माधिकारे हि शङ्खलिखिताभ्यामुक्तम्-आम्नायः स्मृतिधारक इति । ग्रन्थकारगतायाः स्मृतेस्तत्कृतग्रन्थाम्नायः स्मृतिग्रन्थाध्यायिनां स्मृतिधारणार्थत्वेनोक्तः।

अर्थात्—स्मृतिग्रन्थों के लिए भी आम्नाय शब्द का प्रयोग हुआ है। **शङ्ख-लिखित** भी ऐसा ही कहते हैं। स्मृतिग्रन्थों के पढ़ने वाले अपने मूल को आम्नाय कह सकते हैं।

समय के व्यतीत होने पर शबर आदि नवीन आचार्यों ने उस औप-चारिक भाव को भुला कर इन्हें वेद ही कहना आरम्भ कर दिया। इस लिए जनसाधारण भी इन्हें वेद समझने लग पड़े। बस यही सारी भूल का कारण था। फिर भी मध्यमकाल में अनेक ऐसे मीमांसक हो चुके हैं, जो ब्राह्मण का परम आदर करते हुए भी मन्त्रमात्र से ही सारे 'विधिवाद' का काम चलाते रहे हैं। उन का कथन है कि मन्त्रों में भी किसी न किसी प्रकार से सारी 'विधि' कही गई है। उन्हों ने ब्राह्मण का साक्षात् शब्दों में वेद होने से इन्कार तो नहीं किया, पर उन का लेख इस बात को प्रकट करता है कि वे मन्त्र और ब्राह्मण को एक सा दर्जा नहीं देते थे। सम्भव है इस औपचारिक परम्परा के बहुत बलवती होने के कारण ही कई विद्वानों ने ब्राह्मणों के वेद मानने के विरुद्ध आवाज़ न उठाई हो। विक्रम की इस शताब्दी में ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यह भूल देखी और इसी लिये अनेक युक्ति

प्रमाणों के अनन्तर अपनी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के "वेदसंज्ञाविचारविषय" में यह लिखा—

इत्यादि बहुभिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव वेदसंज्ञा न ब्राह्मण-ग्रन्थानामिति सिद्धम् ।

अर्थात्—मन्त्रों की ही वेदसंज्ञा है, ब्राह्मणग्रन्थों की नहीं ।

दयानन्द सरस्वती के प्रमाणों के विरुद्ध भी अनेक लोगों ने लेख लिखे हैं । उन सब से हमारा निवेदन है कि हमारे पूर्वोक्त लेख को वे ध्यान से पढ़े, और निष्पक्ष हो कर सत्यासत्य का निर्णय करें ।

आठवां अध्याय

ब्राह्मणग्रन्थ और वेदार्थ।

निरुक्त और निघण्टु का आधार ब्राह्मण हैं।

निरुक्त सब से पुराना ग्रन्थ है, जो इस समय मिलता है, और जिस में वेदार्थ का विस्तृत निदर्शन है। 'यह ऋग्वेदीय लोगों के पठितव्य दश ग्रन्थों में से एक है।' दाक्षिणात्य ऋग्वेदाध्यायी इस समय भी इस का पाठ करते हैं। इस निरुक्त से पहले भी ऐसे ही अनेक निरुक्त ग्रन्थ थे, पर वे अब लुप्तप्राय: हैं।[1] निरुक्त का मूल निघण्टु है। निरुक्त और निघण्टु दोनों यास्क-प्रणीत हैं।[2] निघण्टु प्राचीन वैदिक कोषों का एक नमूना है। इस निघण्टु से पहले और भी अनेकों निघण्टु थे। निरुक्त ७। १३॥ में यास्क स्वयं उनका स्वरूप कथन करता है—

अथोताभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति—इन्द्राय वृत्रघ्ने। इन्द्राय वृत्रतुरे। इन्द्रायाँहोमुचे,[3] इति। तान्यप्येके समामनन्ति भूयांसि तु समाम्नानात्। यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात् प्राधान्यस्तुति तत् समाम्ने।

अर्थात्—'कई एक आचार्य ऐसा समाम्नाय करते हैं जिस में देवता के विशेषण एकत्र किए जाएं। परन्तु जो प्रधान स्तुतिवाला (अग्नि आदि) देवता-नाम है, उस का मैं समाम्नाय करता हूं।'

कौत्सव्य प्रणीत निरुक्त-निघण्टु भी जो आथर्वण परिशिष्टों में से एक है, पुराने निघण्टु-ग्रन्थों का ही नमूना मात्र है।[4]

यास्कीय निघण्टु और इस आथर्वण निघण्टु के देखने से निश्चय हो जाता है कि प्राचीन निघण्टु-ग्रन्थों का आधार प्रधानतया ब्राह्मण ही थे। निघण्टु-पठित अर्थों और ब्राह्मणान्तर्गत अर्थों की निम्नलिखित तुलनात्मक सूची से यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जायगी।

---

१ G. Oppert के सूची पत्र II. 510 पर दक्षिण में किसी घर में **उपमन्यु-कृत निरुक्त** का अस्तित्व बताया गया है।

२ देखो मेरा लेख, मासिक पत्र ज्योति वैशाख सं० १९७७, लाहौर।

३ मै० सं० २। ६। ६॥

४ इसका देवनागरी संस्करण आर्ष-ग्रन्थावली, लाहौर में छप चुका है।

पता	निघण्टु		ब्राह्मण	पता
१।१४॥	अत्यः	अश्व	अत्योऽसि(अश्व)	तै० ३।८।६।१॥
३।१७॥	अध्वर:	यज्ञ	अध्वरो वै यज्ञः	श० १।४।१।३८॥
१।१२॥	अन्नम्	उदक	अन्नं वा ऽआप:	श० १३।८।१।६॥
१।१०॥	अभ्रम्	मेघ	अभ्राद् वृष्टिः	श० ५।३।५।१७॥
२। ७॥	अर्क:	अन्न	अन्नमर्कः	श० ६।१।१।४॥
३। ४॥	अस्तम्	गृह	गृहा वाऽस्तम्	श० २।५।२।२६॥
१।१४॥	अर्वा	अश्व	(अश्व त्वं) अर्वाऽसि	ता० १।७।१॥
२।११॥	अदितिः	गौ	अदितिर्हि गौः	श० २।३।४।३४॥
१। १॥	,,	पृथिवी	इयं वै पृथिव्यदिति:	श० १।१।४।५॥
१।११॥	,,	वाक्	वाग्वा अदिति:	श० ६।५।२।२०॥
१।१०॥	अद्रिः	मेघ	गिरिर्वाऽअद्रि:	श० ७।५।२।१८॥
१। ५॥	अभीशव:	रश्मि	अभीशवो वै रश्मयः	श० ५।४।३।१४॥
१।११॥	अनुष्टुप्	वाक्	वाग्वा अनुष्टुप्	श० १।३।२।१६॥
१। ३॥	अमृतम्	हिरण्य	अमृतं वै हिरण्यम्	श० ६।४।४।५॥
२। ७॥	आयु:	अन्न	अन्नमु वाऽआयुः	श० ६।२।३।१६॥
२। ७॥	इषम्	अन्न	अन्नं वा इषम्	कौ० २८।५॥
१। १॥	इडा	पृथिवी	इयं (पृथिवी) वा इडा	कौ० ६।२॥
२। ७॥	इडा	अन्न	अन्नं वा इला	ऐ० ८।२६॥
२।११॥	इडा	गौ	गौर्वाऽइडा	श० ३।३।१।४॥
३।३०॥	उर्वी	पृथिवी	यथेयं पृथिव्युर्वी	श० २।१।४।२८॥
२। ७॥	ऊर्क्	अन्न	अन्नं वा ऊर्गुदुम्बर:	श० ३।२।१।३३॥
१।११॥	ऋक्	वाक्	वागेवऽर्चः	श० ४।६।७।१॥
३।१०॥	ऋतम्	सत्य	सत्यं वा ऽऋतम्	श० ७।३।१।२३॥
२। ६॥	ओज:	बल	ओज: सहः	कौ० ३।५॥
३। ६॥	कम्	सुख	सुखं वै कम्	गो० उ० ६।३॥
१। ७॥	क्षपा	रात्रि	रात्रय: क्षपाः	ऐ० १।१३॥
१। १॥	क्षामा	पृथिवी	इमे वै द्यावापृथिवी द्यावाक्षामा	श० ६।७।२।३॥

३। ३॥	गभीरः	महान्	गभीरमिमं महान्तमिमं	श० ३।९।४।५॥
१।११॥	गीः	वाक्	वाग्वै गीः	श० ७।२।२।५॥
१। २॥	चन्द्रम्	हिरण्य	चन्द्रं॰ हिरण्यम्	तै० १।७।६।३॥
२। ३॥	जन्तवः	मनुष्य	मनुष्या वै जन्तवः	श० ७।३।१।३२॥
३। ४॥	दुर्याः	गृह	गृहा वै दुर्याः	श० १।१।२।२२॥
१।११॥	धिषणा	वाक्	वाग्वै धिषणा	श० ६।५।४।५॥
१।११॥	धेनुः	वाक्	वाग्वै धेनुः	ता० १८।९।२१॥
२। ७॥	नमः	अन्न	अन्नं नमः	श० ६।३।१।१७॥
२। ३॥	नरः	मनुष्य	मनुष्या वै नरः	श० ७।५।२।३९॥
१। १॥	निर्ऋतिः	पृथिवी	इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः	श० ५।२।३।३॥
२।१०॥	नृम्णम्	धन	नृम्णानि...धनानि	श० १४।१।२।३०॥
१।१२॥	पयः	उदक	आपो हि पयः	कौ० ५।४॥
२। ७॥	पयः	अन्न	पय एवान्नम्	श० २।५।१।६॥
१।१२॥	पवित्रम्	उदक	पवित्रं वा ऽआपः	श० १।१।१।१॥
२। ७॥	पितुः	अन्न	अन्नं वै पितुः	श० १।९।२।२०॥
३। १॥	पुरु	बहु	पुरुदस्मः बहुदानः	श० ४।५।२।१२॥
१। १॥	पूषा	पृथिवी	इयं वै पृथिवी पूषा	श० २।५।४।७॥
२।१७॥	पृतना	संग्राम	युधो वै पृतना	श० ५।२।४।१६॥
१। ३॥	पृथिवी	अन्तरिक्ष	इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम्	ऐ० ३।३१॥
२। २॥	प्रजा	अपत्य	प्रजा वै तोकम्	श० ७।५।२।३९॥
			प्रजा वै सूनुः	श० ७।१।१।२७॥
३।१७॥	प्रजापतिः	यज्ञ	यज्ञः प्रजापतिः	श० ११।६।३।९॥
३।२७॥	प्रत्नम्	पुराण	प्रत्नं॰...सनातनं॰	श० ६।४।४।१७॥
२।२०॥	परशुः	वज्र	वज्रो वै परशुः	श० ३।६।४।१०॥
३।१७॥	मखः	यज्ञ	यज्ञो वै मखः	तै० ३।२।८।३॥
३। ६॥	मयः	सुख	यद्वै शिवं तन्मयः	तै० २।२।५।५॥
१। ५॥	मरीचिपाः	रश्मि	ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः	श० ४।१।१।२५॥
१। १॥	मही	पृथिवी	इयं (पृथिवी) एव मही	जै०उ० ३।४।७॥

२। ७॥	रसः	अन्न	रसेनान्नेन	श० ७।२।२।१०॥
१।१२॥	रसः	उदक	रसो वाऽआपः	श० ३।३।३।१८॥
१।१२॥	रेतः	उदक	आपो हि रेतः	ता० ८।७।६॥
३।३०॥	रोदसी	द्यावापृथिवी	द्यावापृथिवी वै रोदसी	ऐ० २।४१॥
२। ७॥	वाजः	अन्न	अन्नं वै वाजः	श० ५।१।४।३॥
२। ६॥	वाजः	बल	वीर्यं वै वाजः	श० ३।३।४।७॥
१।१४॥	वाजी	अश्व	वाजिनो ह्यश्वाः	श० ५।१।४।१५॥
३।१७॥	विष्णु	यज्ञ	विष्णुर्वै यज्ञः	ऐ० १।१५॥
२। ६॥	शवः	बल	बलं वै शवः	श० ७।३।१।२६॥
१।१२॥	शुक्रम्	उदक	शुक्रा ह्यापः	तै० १।७।६।३॥
१।१२॥	सत्यम्	"	आपो हि वै सत्यम्	श० ७।४।१।६॥
१।१४॥	सप्तिः	अश्व	(अश्व त्वं) सप्तिरसि	ता० १।७।१॥
१।११॥	सरस्वती	वाक्	वाग्वै सरस्वती	श० २।५।४।६॥
१।१२॥	सर्वम्	उदक	आप एव सर्वम्	गो० पू० ५।१५॥
२। ६॥	सहः	बल	बलं वै सहः	श० ६।६।२।१४॥
१। ६॥	हरितः	दिशा	दिशो वै हरितः	श० २।५।१।५॥

इत्यादि। इस छोटी सी सूची में विस्तरभय से अधिक शब्दों के अर्थों की तुलना नहीं की जा सकती। हमारे वैदिक कोष को ध्यानपूर्वक देखने से विद्वज्जन स्वयं सारी तुलना कर सकेंगे। हमने इस सूची में अधिकांश प्रमाण शतपथ से ही दिए हैं। कोष की सहायता से शेष ब्राह्मणों में से भी बहुत से ऐसे वाक्य मिल जायेंगे। यदि सैंकड़ों ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त न हो जाते तो आज भी निघण्टु के प्रायः सारे ही नाम उन में से निकाले जा सकते थे। यही अवस्था निरुक्त की है। निरुक्त में तो यास्क स्वयं

इति ब्राह्मणम्। इति ह विज्ञायते।

कहकर अपने अर्थ की पुष्टि ब्राह्मण वाक्यों से करता है। इस लिये हम निश्चयात्मकरूप से कह सकते हैं कि यास्कीय निरुक्त, निघण्टु का मूल प्रधानतया ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं।

हमारे प्रकाशित कोष में अनेक पदों के वे अर्थ भी हैं, जो कि इस निघण्टु या निरुक्त

में नहीं मिलते। हो सकता है, उन्हें और निघण्टुकारों ने एकत्र किया हो। फिर भी जैसा यास्क ने कहा है—

भूयांसि तु समाम्नानात् ।७।१३॥

उन प्राचीनों से भी कई रह गये हों। पर ब्राह्मणों में अब भी पर्याप्त शब्द ऐसे मिलेंगे, जो इस निघण्टु की बड़ी सहायता कर सकते हैं।

ब्राह्मण-प्रदर्शित इन वैदिक शब्दों के अर्थों का क्या आधार है।

ब्राह्मणग्रन्थों ने इन में से बहुत से अर्थ साक्षात् मन्त्रों से लिये हैं। समाधिस्थ ऋषियों के निष्कलंक मनों में बहुत सा अर्थ परमात्मा की कृपा से भी प्राप्त हुआ है। वह भी इन्हीं ब्राह्मणों में बन्द है। ऋषि-प्रोक्त वा परतः प्रमाण होते हुए भी वेदार्थ का परम तत्त्व इन्हीं ब्राह्मणों से जाना जा सकता है। ऐसा ही आर्यावर्त के सब विद्वान् मानते आये हैं। हां, नवीन पाश्चात्य लेखक इसके विपरीत कहते हैं। हम पहले उन्हीं की प्रतिज्ञा का निराकरण करेंगे। बोडन का वयोवृद्ध संस्कृताध्यापक आर्थर एनथनि मैकडानल लिखता है[1]—

The investigation of the Brahmans has shown that being mainly concerned with spequlation on the nature of sacrifice, they were already far removed from the spirit of the composers of the Vedic hymns, and contain very little capable of throwing light on the original sense of those hymns. They only give occasional explanations of the sense of the Mantras and these explanations are often very fanciful. How completely they can misunderstand the meaning intended by the seers appears sufficiently from the following two examples. The Satapatha Brahmana (vii. 4, I, 9) in referring to the refrain of Rv. X. I21.

कस्मै देवाय हविषा विधेम

'to what god should we offer worship with oblation,' says 'Ka is Prajapati : to him let us offer oblation,'

1 Bhandarkar commemoration Volume Poona 1917.

Another Brahmana passage, in explaining the epithet 'golden-handed' (हिरण्य-पाणि) as applied to the sun, remarks that the sun had lost his hand and had got instead one of gold.[1] Quite apart from the linguistic evidence, such interpretations show that there was already, a considerable gap between the period of the Brahmanas and that of the Mantras.

इस लेख में किसी न किसी प्रकार से जो प्रतिज्ञाएं की गई हैं, हम उन्हें पृथक् २ गिनेंगे।

१—पाश्चात्य लेखकों ने ब्राह्मणों में अन्वेषण किया है।

२—ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ = sacrifice के स्वरूप की कल्पना करना है।

३—वैदिक-सूक्तों के कर्ताओं के भाव से ब्राह्मण बहुत परे हटे हुए हैं।

४—वेदों के मूलार्थ पर प्रकाश डालने योग्य सामग्री का ब्राह्मणों में अभाव ही है।

५—ब्राह्मणों में कहीं २ ही मन्त्रों के भाव का व्याख्यान है।

६—यह व्याख्यान प्रायः अत्यन्त काल्पनिक होते हैं।

७—ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं। इस के स्पष्ट करने वाले दो उदाहरण निम्नलिखित है—

(क) कस्मै देवाय हविषा विधेम।

इतना ऋचा का भाग ऋग्वेद १०। १२१॥ में वार २ आता है। उसका अर्थ है—

'हम किस देव की हवि से पूजा करें।

इस का शतपथ ७।४।१।६॥ में विचित्र व्याख्यान है, अर्थात् क ही प्रजापति है, उसे हम अपनी हवि दें।

---

१ **अथ यत्र ह तद्देवा यज्ञमतन्वत तत्सवित्रे प्राशित्रं परिजहुस्तस्य पाणी प्रचिच्छेद तस्मै हिरण्मयौ प्रतिदधुः। कौ० ६। १३॥**

उवट अपने मन्त्रभाष्य १। १६॥ में इस प्रमाण को उ त करता है।

(ख) एक और ब्राह्मण में **हिरण्यपाणि** सुवर्ण हाथ वाला शब्द आया है। वहां उसे सूर्य पर लगाया गया है, तथा कहा है कि सूर्य का हाथ नष्ट होगया था, उस के स्थान में उसे एक सोने का हाथ मिल गया।

८—भाषा सम्बन्धी साक्ष्य को पृथक् रख कर भी ऐसे व्याख्यान बताते हैं कि ब्राह्मण-काल से मन्त्र-काल का बड़ा अन्तर हो चुका था।

अब अध्यापक मैकडानल के कथन की परीक्षा होती है।

१—मार्टिन हॉग, आफरेखट, लिण्डनर, वैबर, बर्नल, अर्टल, ड्यूक गसटर आदि ने ऐतरेय आदि ब्राह्मणों के अच्छे संस्करण निकाले हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। इन के लिये हम उनका धन्यवाद करते हैं। परन्तु उन्होंने या शतपथानुवादक एगलिङ्ग वा तैत्तिरीय संहिता अनुवादक बे० कीथ ने ब्राह्मणों में कोई सन्तोषजनक अन्वेषण किया है, ऐसा मानना हास्यास्पद बनना है। आधुनिक कैमिस्टरी का विज्ञान नष्ट होने पर यदि कोई थोड़ी सी आङ्गल भाषा जानने वाला किसी बृहत् कैमिस्टरी के ग्रन्थ में लैड-चेम्बर-विधि (Lead-chamber-method) से गन्धक के तेज़ाब के तय्यार होने का वर्णन पढ़े और उस विधि को उस ने कभी देखा सुना न हो। न ही उस ने कभी गन्धक वा गन्धकामल देखा हो, तो निःसन्देह वह उस सारे वर्णन को मूर्खों का कथन समझेगा। स्वाभिमान में वह अपनी भूल कदापि स्वीकार न करेगा। ऐसे ही बिना यज्ञादि क्रिया के सीखे, और बिना भूमण्डलस्थ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रगण, विद्युत्, आकाश, मेघ, वायु, अग्नि, जल आदि सब स्थूल पदार्थों का ज्ञान किये, जो भी अनधिकारी ब्राह्मणों का पाठ करेगा वह इन्हें मूर्ख लीला समझेगा, प्रमत्तगीत कहेगा। जैसा कि मैक्समूलर अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ३८९ पर लिखता है—

The Brahmanas represent no doubt a most interesting phase in the history of Indian mind, but judged by themselves, as literary productions, they are most disappointing. No one would have supposed that at so early a period, and in so primitive a state of society, there could have risen up a literature which for pedantry and downright absurdity can hardly be matched anywhere. There is no lack of striking thoughts, of bold expressions, of sound reasoning, and curious traditions

in these collections. But these are only like the fragments of a *'torso'* like precious gems set in brass and lead. The general character of these works is marked by shallow and insipid grandiloquence, by priestly conceit, and antiquarion pedantry. It is most important to the historian that he should know how soon the fresh and healthy growth of a nation can be blighted by priestcraft and superstition. It is most important that we should know that nations are liable to these epidemics in youth as well as in their dotage. These works deserve to be studied as the physician studies the twaddle of idiots, and the raving of madmen.[1]

हम यह नहीं कहते कि हम ब्राह्मणों के समस्त अर्थों को समझ गये हैं, परन्तु हम यह जानते हैं कि जब आर्यावर्तीय सायण प्रभृति भी इन के अर्थ को पूरा नहीं समझे, तो पाश्चात्य लोग भला क्या समझे होंगे। ब्राह्मणों में स्थल स्थल पर **रूपकालंकार** की कथायें भरी पड़ी हैं। देखो शतपथ १।७।४॥ में कहा है—

प्रजापति र्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति तां संबभूव ॥१॥......

स वै यज्ञ एव प्रजापतिः ॥४॥[2]

इस प्रकरण में प्रजापति नाम सूर्य का है। ब्राह्मण ग्रन्थ स्वयं कहते हैं—

यो ह्येव सविता स प्रजापतिः। श० १२।३।५।१॥

प्रजापतिर्वै सविता। ता० १६।५।१७॥

प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता। श० १०।२।७।४॥

अर्थात् सविता = सूर्य = आदित्य ही प्रजापति है।

यह प्रजापति ही यज्ञ है। यह बात पूर्वोक्त चतुर्थ कण्डिका में कही है। अन्यत्र

---

१ मैक्समूलर यहां वैसी भाषा का ही प्रकाश करता है, जैसी मतान्ध व्यक्ति वर्ता करते हैं।

२ तुलना करो ऐ० ३।३॥ तां० ८।२।१०॥
देखो मै० सं० ३। ६। ५॥—

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यैदुषसम्।

तथा देखो मै० सं० ४। २। १२॥ और देखो मेधातिथि मनु-भाष्य १।३२॥

भी ब्राह्मणग्रन्थ ऐसा ही कहते हैं। देखो—

यज्ञ उ वै प्रजापतिः। कौ० १०।१॥

प्रजापतिर्वै यज्ञः। तै० १।३।१०।१०॥

अर्थात् यज्ञ प्रजापति है। यह यज्ञ ही सूर्य है—

यज्ञ एव सविता। गो० पू० १।३३॥

स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः। श० १४।१।१।६॥

सविता को यज्ञ इस लिए कहा है कि इसी विष्णु सूर्य में हमारे सौर जगत् के सारे अग्निहोत्रादि महाकार्य हो रहे हैं।

इसी सविता = प्रजापति की दिव् = प्रकाश और उषा कन्या समान हैं। यही सविता प्रजापति अन्य देवों का जनक है। क्योंकि—

सविता वै देवानां प्रसविता[1]। श० १।१।२।६॥

कहा है, कि सविता परमात्मा और यह सूर्य देवों का उत्पादक[1] है। ऐसा ही तैत्तिरीय ब्राह्मण २।२।६।५–८॥ में कहा है—

सः (प्रजापतिः) मुखाद्देवानसृजत।

अर्थात् उस प्रजापति = परमात्मा ने मुख = मुख्य आग्नेय परमाणुओं[2] से

---

१ एगलिङ्ग इसका अर्थ Impeller था करता है। यह युक्त अर्थ नहीं।

२ शतपथ ११।१।६।७॥ में कहा है—

सः (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत।

यहां **आस्येन** तृतीयान्त प्रयोग है। एगलिङ्ग इसका अनुवाद करता है—

By (the breath of) his mouth he created the gods.

यह अनुवाद ठीक नहीं। प्राणों से देवों की उत्पत्ति हमारे देखने में कहीं नहीं आई। प्रत्युत दो चार स्थलों में प्राण स्वयं देव तो कहे गये हैं—

तस्मात् प्राणा देवाः॥ श० ७।५।१।२१॥

अन्यत्र प्राण असुर ही हैं। प्राणों की उत्पत्ति प्रायः तम के परमाणुओं से कही गई है। यहां हेत्वर्थ में तृतीया का यही अभिप्राय है कि प्रकरणाभिप्रेत देवों की उत्पत्ति में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु ही मुख्य कारण हैं। तृतीया के अर्थ के साथ २ पञ्चमी का अर्थ भी ले लेना चाहिए, क्योंकि—

देवों को उत्पन्न किया। और आधिदैविक प्रकरण में इसी का यह अर्थ है कि सूर्य के ही प्रभाव से सब आग्नेय परमाणु एकत्र हुए और भिन्न २ देवों के रूप में प्रकट हुए।

निरुक्त ३।८॥ में भी किसी प्राचीन ब्राह्मण का पाठ इसी अभिप्राय से धरा गया है—

'सोऽदेवानसृजत तत् सुराणां सुरत्वम्। असोरसुरानसृजत तदसुराणामसुरत्वम्' इति विज्ञायते।

अर्थात्-प्रकाशमय परमाणुओं से देवों को रचा और अन्धकारयुक्त परमाणुओं से असुरों को रचा।

काठक संहिता ६।११॥ में भी ऐसा ही कहा है—

अह्ना देवानसृजत ते शुक्लं वर्णमपुष्यन्। रात्र्याऽसुराँस्ते कृष्णा अभवन्।

समान पिता होने से ये दिव् और उषा इन देवों की बहन-समान हैं। इसी सारे रहस्य का अन्य गम्भीर आशयों के साथ इन शातपथी कण्डिकाओं में रूपकालङ्कार[1] के रूप में वर्णन है।

स (प्रजापतिः) अग्निमेव मुखाज्जनयां चक्रे। श० २।२।४।१॥

ऐसे सब स्थलों में पञ्चमी से भी अभिप्राय स्पष्ट होता है।

अर्थ—उस प्रजापति = परमात्मा ने इस भौतिक अग्नि को मुख्य = प्रकाशमय परमाणुओं से बनाया।

१ रूपकालङ्कार से जड़ जगत् की जो कथाएं वेद और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में वर्णन की गई हैं, उन के सब अंश आर्यजनों में अनुकरणीय नहीं हैं। ये रूपकालङ्कार तो प्रायः आधिदैविक तथ्यों को बताने के लिये ही कहे गये हैं। जैसे देखो शतपथ १।३।१।१५॥ आदि में कहा है—

इयं पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी।

कि यह पृथिवी देवों की पत्नी है। तो क्या अनेक मनुष्यों की एक पत्नी हो सकती है। नहीं, नहीं। ब्राह्मणों में स्वयं कहा है—

नैकस्यै बहवः सहपतयः। ऐ० ३।२३॥

न हैकस्या बहवः सहपतयः। गो० उ० ३।२०॥

-एक स्त्री के एक काल में अनेक पति नहीं होते।-(भिन्न कालों में नियोग

इस सारी कथा का विशेष वर्णन ऋषि दयानन्द प्रणीत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय में देखो। भट्ट कुमारिलस्वामिकृत तन्त्रवार्तिक १।३।७॥ में भी ऐसा ही भाव लिखा है—

प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकारादादित्य एवोच्यते। स चारुणोदयवेलायामुषसमुद्यन्नभ्यैत्। सा तदागमनादेवोपजायत इति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते। तस्यां चारुणकिरणाख्यबीजनिक्षेपात् स्त्रीपुरुषयोगवदुपचारः।[1]

अब इस प्रकरण के सायणादि एतद्देशीय तथा एगलिङ्गादि विदेशियों के भाष्य वा अनुवाद देखो। किसी स्थान में भी इस **रूपकालंकार** को **यज्ञ** = सविता में घटा कर स्पष्ट नहीं किया गया। विना मर्म वा भाव को समझे समझाये अनुवाद मात्र कर देना पर्याप्त नहीं। और जिस अनुवाद से समझ कुछ न आये, उस में अशुद्धियां भी तो कम नहीं हो सकतीं। अत: हमारा यही कहना है कि ब्राह्मणों का अन्वेषण

के रूप से हो सकते हैं।) ऐसे ही प्रजापति का अपनी कन्या के साथ सम्बन्ध जड़ जगत् की वार्ता है, आर्यों की सभ्यता का चिह्न नहीं।

१ भट्ट कुमारिलस्वामी के ऐसे यथार्थ अर्थ पर मैक्समूलर विस्मित होता है। वह अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ५२६ पर कहता है—

Sometimes, however, we feel surprised at the precision with which even such modern writers as Kumarila are able to read the true meaning of their mythology.

मैक्समूलर को यह ज्ञात नहीं कि इस कथा का वास्तविक अर्थ शतपथ ब्राह्मण में ही अन्यत्र खोल दिया गया है—

स (प्रजापतिः = संवत्सरः = वायुः) आदित्येन दिवं मिथुनꣳ समभवत्। श०। ६। १। २। ४॥

ग्रिफिथ का हठ है कि वह अपने ऋग्वेदानुवाद में इस कथा सम्बन्धी मन्त्रों का व्याख्यान उचित स्थल में न करके, उन्हें अश्लील समझ परिशिष्ट में लैटिन भाषा में उन का अनुवाद करता है। ग्रिफिथ का कथन निरर्थक ही है कि—

The whole passage is diffcult and obscure.

तो अभी आरम्भ भी नहीं हुआ। पाश्चात्य जो यह समझते हैं कि वे इन में अन्वेषण कर चुके हैं, वे भूल से ही ऐसा कहते हैं। यदि सब विद्वान् निष्पक्ष होकर हमारे लेख पर ध्यान देंगे, तो वे स्वयं भी ऐसा मान जायेंगे।

जिस प्रकार पूर्वोक्त शतपथीय प्रकरण की चतुर्थ कण्डिका में **प्रजापति** का अर्थ खोला गया है, वैसे ही अन्यत्र भी भिन्न २ प्रकरणों के अन्त में कुछ सङ्केत आते हैं। जब तक उन सङ्केतों का पूर्व स्थलों में आकर्षण करके अर्थ न घटाया जावेगा, तब तक अर्थ समझना असम्भव होगा। इस लिए सब पक्षपात छोड़ कर पहले इन ग्रन्थों का अर्थ समझना चाहिए। तदनन्तर कोई सम्मति निर्धारित हो सकती है। और जो पश्चिमीय लोग वा सायणानुयायी अभिमान वा भूल से समझ बैठे हैं, कि वे अर्थ जान चुके हैं, उन्हें यह हठ छोड़ना ही पड़ेगा।

२—ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ के स्वरूप की कल्पना करना है।

२—आर्य लोग यज्ञ को sacrifice नहीं समझते।[1]

यह तो इस शब्द का पौराणिक काल का अत्यन्त संकुचित और भ्रान्तिप्रद अर्थ है। इसे ही पाश्चात्यों ने स्वीकार किया है। अतः इन शब्दों के ऐसे पूर्वकल्पित (preconceived) अर्थों को लेकर जब वे ब्राह्मणों का पाठ करते हैं, तो उन्हें ब्राह्मण समझ ही नहीं आ सकते। किसी ग्रन्थ का क्षुद्रशब्दार्थ वे भले ही करलें, पर समझना उन से बहुत दूर है। देखो आङ्गलभाषा में एक प्रसिद्ध वाक्य है—

"I want to answer the call of nature."

इसका शब्दार्थ होगा—"मैं प्रकृति के बुलावे का उत्तर देना चाहता हूं।" परन्तु सब जानते हैं कि शब्दार्थ होते हुए भी यह अनुवाद भाव से बहुत दूर है। ऐसे ही अनुवाद इन पाश्चात्यों ने वेद, ब्राह्मणादि ग्रन्थों के किये हैं। तदनुसार ही ये यज्ञ को sacrifice समझ बैठे हैं।

यज्ञ शब्द के अर्थ बड़े विस्तृत हैं। वैदिक कोष में यज्ञ शब्द देखो। उन विस्तृत अर्थों में जो यज्ञ का स्वरूप है, उसका वर्णन करते हुए ही ब्राह्मणों में अद्भुत विज्ञान और सृष्टि-चक्र का वर्णन किया है। उसको न समझ कर ही पाश्चात्य लोग ब्राह्मणों में अपनी पूर्वकल्पित (preconceived) sacrifice ढूंढते रहते हैं।

३—वैदिक सूक्तों के कर्ताओं के भाव से ब्राह्मण बहुत परे हटे हुए हैं।

प्रथम तो हम यह कहेंगे, कि वैदिक सूक्तों के कर्ता नहीं है। जो इन के कर्ता

---

१ देखो गुरुदत्त लेखावली पृ० ८८। (Works of Pt. Guru Datta.)

मानते हैं, उन की युक्तियों का खण्डन हम अपने **ऋग्वेद पर व्याख्यान** पृ० ४१—७६ पर कर चुके हैं। पूर्वपक्षियों ने हमारे लेख पर कोई आपत्ति नहीं उठाई। इस लिये अभी इस पर और न लिखेंगे। हां, दूसरे पक्ष का उत्तर अवश्य देंगे। ब्राह्मणों का भाव मन्त्रों से बहुत परे हटा हुआ नहीं है, प्रत्युत ब्राह्मण तो मन्त्रों के साक्षात अर्थ का दर्शन कराते हैं।

कल्पविद्या और नित्य शब्दार्थ सम्बन्ध विद्या से अपरिचित होने के कारण पाश्चात्योंके मनमें भय पड़ गया है कि एक शब्द का एक ही अर्थ सर्वत्र लेना चाहिए। अर्थ बने या न बने, वे उसी एक अर्थ से सर्वत्र काम चलाना चाहते हैं। ब्राह्मणों में एक २ शब्द के अनेक अर्थ देखकर वे घबरा जाते हैं। यह सत्य है कि—

बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि। निरुक्त ७। २॥

'ब्राह्मणग्रन्थ गुणों की सदृशता का बहुविभाग करके अनेक शब्दों को पर्याय बनाते हैं पर स्मरण रहे कि इस गुणों की सदृशता का विभाग किए विना कभी काम चल ही नहीं सकता। वेदभाषा तो क्या, संसारस्थ लौकिक भाषाओं में भी बहुधा गुणों की सदृशता का विभाग करने से ही पर्याय बने हैं। वेद में स्वयं विशेष्य विशेषण की रीति से इस गुण विभाग के करने का प्रकार आरम्भ किया है। देखो—

त्वं महीमवनिम्।	ऋ० ४। १६। ६॥
उर्वी पृथ्वी।	ऋ० १। १८५। ७॥
"	ऋ० ६। १। ७॥
मही गौः	ऋ० १०। १३३। ७॥
उर्वीं पृथ्वीम्।	ऋ० ७। ३८। २॥
पृथिवि भूतमुर्वी।	ऋ० ६। ६८। ४॥
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां।	ऋ० ५। ८५। ४॥
भूमिं पृथिवीम्।	अ० १२। १। ७॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार।	ऋ० १०। ६०। ६॥
पृथिवीं मातरं महीम्।	तै० ब्रा० २। ४। ६। ८॥
क्षामत्येति पृथ्वीम्।	ऋ० १०। ३१। ६॥
क्षमां भूमिम्।	ऋ० १२। १। २९॥
उर्वी अन्तर्मही।	ऋ० ३। ३८। ३॥

भूमिं महीमपाराम् । ऋ० ३ । ३० । ६ ॥

अदितिं धारयत क्षितिम् । ऋ० १ ।१३६। ३ ॥

क्षिति र्न पृथ्वी । ऋ० १ । ६५ । ३ ॥

यह पन्द्रह प्रमाण स्पष्ट करते हैं कि 'मही । अवनि । उर्वी । पृथ्वी । पृथिवी । गौ। भूमि। अदिति। क्षिति। क्षमा। क्षा' इन ग्यारह शब्दों में से एक शब्द भी मूलार्थ में पृथिवी का बोधक नहीं है । मंत्रों के इन पदों से विस्तार, महत्ता, निवास, अविनाश, रक्षा आदि का भाव पाया जाता है । ये सारे ही शब्द कहीं न कहीं विशेषणरूप से प्रयुक्त हो चुके हैं । विशेषण सब यौगिक होते हैं । अतएव ये सारे शब्द भी यौगिक ही सिद्ध होते हैं । योगरूढ़ बनते समय इन्हीं शब्दों का अर्थ विशेषण और प्रकरण बल से पृथिवी हो गया है । कोई भी वेदाभ्यासी इन में से एक भी शब्द को रूढ़ि नहीं कह सकता । इन्हीं मन्त्रों के आधार पर ब्राह्मण ग्रन्थों ने इन शब्दों को पर्य्याय-वाची माना और यास्क ने ब्राह्मण और मन्त्र को देखकर ही निघण्टु के प्रथमाध्याय के प्रथम खण्ड में इन शब्दों को पृथिवी के नामों में पढ़ा है ।

वेद में इस विषय के पोषक और भी अनेक प्रमाण हैं । वे आगे दिए जाते हैं—

शुक्राय भानवे । ऋ० ७ । ४ । १ ॥

भानुना सं सूर्येण रोचसे । ऋ० ८ । ६ ।१८ ॥

सूर्यो नः शुक्रः । ऋ० ६ । ४ । ३ ॥

सूर्यस्य हरितः । ऋ० ५ ।२६। ५ ॥

इन्द्रं मघवानमेनम् । ऋ० ७ ।२८। ५ ॥

इन्द्र शक्र । ऋ० १ ।६२। ४ ॥

इन्द्र वज्रिन् । ऋ० ४ ।१६। १ ॥

पुरुहूत इन्द्रः । ऋ० ४ ।१७। ५ ॥

तोकाय तनयाय । ऋ० ६ । १ ।१२ ॥

येन तोकं च तनयं च । ऋ० १ ।९२।१३ ॥

अद्रिरर्कैः । ऋ० ६ । ४ । ६ ॥

आ मही रोदसी पृण । ऋ० ६ । ४ । ५ ॥

मही अपारे रजसी । ऋ० ६ ।६८। ३ ॥

रोदसी मही । ऋ० ६ ।१८। ५ ॥

बृहती मही ।	ऋ० ६ । ५ । ६ ॥
द्यावाभूमि शृणुतं रोदसी मे ।	ऋ० १० । १२ । ४ ॥
आ रोदसी बृहती ।	ऋ० १ । ७२ । ४ ॥
रोदसी बृहती ।	अ० १६ । १० । ३ ॥
रोदसी विदुर्वी ।	ऋ० ३ । ५६ । ७ ॥
वाजी अरुषः ।	ऋ० ५ । ५६ । ७ ॥
वाजिनो अर्वतः ।	ऋ० ६ । ६ । २ ॥
आशुमश्वम् ।	ऋ० ७ । ७१ । ५ ॥
सप्ती हरी ।	ऋ० ३ । ३५ । २ ॥
वाज्यर्वा ।	ऋ० १ । १६३ । १२ ॥
पैद्वो वाजी ।	ऋ० १ । ११६ । ६ ॥
अत्यं न वाजिनम् ।	ऋ० १ । १२६ । २ ॥
अत्यो न वाजी ।	ऋ० ६ । ६६ । १५ ॥
अश्वं न वाजिनम् ।	ऋ० ७ । ७ । १ ॥
अश्वं न त्वा वाजिनम् ।	ऋ० ६ । ८७ । १ ॥
अत्यं न सप्तिम् ।	ऋ० ३ । २२ । १ ॥
तरसे बलाय ।	ऋ० ३ । १८ । ३ ॥
सहः ओजः ।	ऋ० ५ । ५७ । ६ ॥
अघ्न्यायाः···धेनोः ।	ऋ० ४ । १ । ६ ॥
बृबूकं वहतः पुरीषम् ।	ऋ० १० । २७ । २३ ॥
वाजिनीवती···चित्रामघा ।	ऋ० ७ । ७५ । ५ ॥
विश्वा भुवनानि सर्वा ।	मै० सं० ४ । १४ । १४ ॥
घृतेन त्वा···आज्येन वर्धयत् ।	अ० १६ । २७ । ५ ॥
गल्दया···गिरा ।	ऋ० ८ । १ । २० ॥

यहां सूर्य, इन्द्र, द्यावापृथिवी, अश्वादि के पर्य्यायवाची बनने वाले शब्द दिखाये गये हैं । इन शब्दों को देखकर कौन विद्वान् कह सकता है कि इन्द्र किसी व्यक्ति-विशेष का नाम है अथवा रूढ़ि शब्द है । वैदिक वाक्य रचना सहज स्वभाव से प्रकट

कर देती है कि कोई भी ऐश्वर्यशाली पदार्थ इन्द्र नाम से पुकारा जा सकता है। इसी प्रकार पूर्वप्रदर्शित और पदों के विषय में भी जानना चाहिए।

निघण्टु १।११॥ में वाक् के ५७ नाम आए हैं। उन में **धारा, मन्द्रा, सरस्वती, जिह्वा, ऋक्, अनुष्टुप्** आदि नाम पढ़े गए हैं। इन में से कुछ नाम ब्राह्मणों में भी इसी अर्थ में मिलते हैं। पहले चार नाम तो विशेष्य विशेषण भाव से स्पष्ट ही वेद में इन अर्थों में मिल जाते हैं। यथा—

मन्द्रया सोम धारया। ऋ० ९।६।१॥
अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थुः। ऋ० ७।१८।३॥
मन्द्रया देव जिह्वया। ऋ० ५।२६।१॥
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या। ऋ० ५।७।५॥

अब रहे **ऋक्** और **श्लोकादि** शब्द। इनके विषय में मैकडानल महाशय ने भी स्वसंदेह प्रकट किया है। 'भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम' वाले अपने लेख में वे लिखते हैं "Thus among the synonyms of vac 'speech' appear such words as sloka, nivid, rc, gatha, anustubh which denote different kinds of verses or compositions and can never have been employed to express the simple meaning of "speech." अर्थात् यह शब्द रचनाविशेष के लिए आ सकते हैं, साधारण वाक् के लिए नहीं। अब हम देखेंगे कि वेद वा शाखाग्रन्थों में, निघण्टु वा ब्राह्मणों में आये हुए ये शब्द इन अर्थों में मिलते हैं या नहीं।

ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते। ऋ० ८।२७।५॥
ऋचं वाचं प्रपद्ये। य० ३६।१॥
वाचो...ऋचो गिरः सुष्टुतयः। ऋ० १०।९१।१२॥
ऋचं गाथां ब्रह्म परं जिगांसन्। कौ० सू० १३५।७९॥

इन प्रमाणों में ऋक् शब्द वाक् के विशेषणों में आया है। अतः इसका अर्थ वाक् होना सन्देह से परे है।

श्लोक शब्द रचना-विशेष के लिए तो आता ही है, पर वाणी के लिए भी ऋग्वेद में वर्ता गया है, इस में कोई सन्देह नहीं। देखो यजुर्वेद में एक मन्त्र है—

चक्षुर्मे······विभाहि। श्रोत्रम्मे श्लोकय। १४। ८॥

अर्थात्—मेरे नेत्रों को प्रकाशित और कर्ण को श्रवणयुक्त कर।

यहां **श्लोकय** क्रियापद स्पष्ट करता है, कि **श्लोक** शब्द रचनाविशेष के लिए ही नहीं आता, प्रत्युत साधारण वाणी = शब्द = श्रवण के सम्बन्ध में भी आता है।

पुनः ऋग्वेदीय मन्त्र भी यही स्पष्ट करते हैं—

ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णाः।४।२३।८॥

अर्थात्—सत्य की वाणी बधिर कानों का नाश करती है।

मिमीहि श्लोकमास्ये।१।३८।१४॥

अर्थात्—मुख में वेदरूपी वाणी को रखो।

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः। यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः॥
१०। ९४। १॥

इस अन्तिम मन्त्र में तो **श्लोक** और **घोष** को विशेष्य विशेषण बना कर सारा विवाद मिटा दिया है। अर्थात् श्लोक, घोष अथवा वाणी का पर्याय है। शेष शब्द भी वेद में ही वाणी के अर्थों में मिल जाते हैं।

हमारे इस लेख से यह न समझना चाहिए कि **मन्द्रा, धारा, जिह्वा, सरस्वती,** और **ऋगादि** शब्द और अर्थों में नहीं आ सकते। वेदों में शब्दों के यौगिक होने से प्रकरणानुकूल ही अर्थ होता है। वह अर्थ मूलतः धातुसम्बन्ध से एक वा अनेक प्रकार का है। पर उन सब में वह योगरूढ बनते समय प्रकरणवश कुछ ही अर्थों में रह गया है। वे सब अर्थ भाष्यकर्त्ता के ध्यान में रहने चाहिएं। जो जहां संगत हो वह उसे वहीं लगावे।

हमारे पूर्वोक्त कथन पर पाश्चात्य लोग कई एक तर्क करेंगे। अतः उन के सब तर्कों के उत्तर के लिए हम एक ऐसे शब्द पर विचार करना चाहते हैं। जिस से सारे ऐसे तर्कों का अन्त हो जावे। और यह विचार यह भी सिद्ध कर दें कि ब्राह्मण में किया गया अर्थ वेद का यथार्थ अर्थ है वह वेद से बहुत परे हटा हुआ नहीं। ऐसा शब्द **अध्वर** है।

निघण्टु ३। १७॥ में **अध्वर** को **यज्ञ** का पर्याय कहा गया है। शतपथादि

ब्राह्मणों में भी बहुधा ऐसा कथन मिलता है। देखो वैदिक कोष में अध्वर शब्द।

ब्राह्मणों ने क्यों यह पर्याय बनाया, इस का कारण वेद के अन्दर ही मिलता है। ऋग्वेद में आया है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।१।१।४॥

अर्थात्—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् जिस हिंसादि दोषरहित यज्ञ को आप सर्वत्र सर्वोपरि होकर विराजते हो।

यहां अध्वर शब्द यज्ञ का विशेषण है। विशेषण होने से यही शब्द अन्यत्र यज्ञवाची बन गया है।

प्रश्न—क्या सारे ही विशेषण पर्याय बन जाते हैं।

उत्तर—नहीं। जिन विशेष्य, विशेषणों के गुण की विशेष समानता हो जावे, वे ही पर्याय बनते हैं।

अब देखो पाश्चात्य लोग इसी बात से भयभीत होकर इस मन्त्र के अर्थ में कैसी कल्पना करते हैं।

१—हर्मन ओल्डनबर्ग S. B. E. vol. XLVI, Hymns to Agni, पृ० १ पर लिखता है—

Agni, whatever sacrifice and worship[1] thou encompassest on every side,

Note 1. 'worship' is a very inadequate translation of अध्वर, which is nearly a synonym of यज्ञ... ....Prof. Max Muller writes: 'I accept the native explanatin अ-ध्वर, with-out a flaw, perfect whole, holy.'

२—ग्रिफिथ अपने वेदानुवाद में लिखता है—

Agni the perfect sacrifie which thou encompassest about.

३—आर्थर एनथनि मैकडानल अपनी Vedic reader पृ० ६ पर लिखता है—

O Agni the worship and sacrifice that thou encompassest on every side, यज्ञं अध्वरं—again coordination with च; the former has a wider sense—worship (prayer and offering); the latter—sacrificial act.

यहां ओल्डनबर्ग और प्रायः उसी की प्रतिध्वनि करने वाला मैकडानल च का अध्याहार करते हैं। वे दोनों इस स्थान में अध्वर और यज्ञ को विशेष्य विशेषण नहीं मानते।

ग्रिफिथ महाशय भारत में रहे। वे काशीस्थ पण्डितों से सहायता भी लेते थे। इसी लिए उन्हें पाश्चात्य पद्धति सर्वत्र रुचिकर नहीं लगी। वे अध्वर को यहां विशेषण ही मानते हैं। मैक्समूलरवत् वे इसका अर्थ perfect = पूर्ण करते हैं।

ग्रिफिथ महाशय के सम्बन्ध में हम इतना ही कहेंगे कि जैसे इस अध्वर विशेषण को अन्य स्थलों[1] में वे यज्ञवाची ही मानकर अर्थ करते हैं, वैसे यदि अन्य विशेष्य विशेषणों में से प्रकरणानुकूल कुछ विशेषणों को उन के विशेष्यों का पर्य्याय ही मान लेते, तो इसमें क्या आपत्ति थी। यदि हमारी बात जो सर्वथैव युक्तियुक्त है स्वीकार की जावे, तो ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ की कितनी सत्यता प्रकाशित होती है। देखो निम्नलिखित स्थल—

अश्मानं चित्स्वर्य१ पर्वतं गिरिम्। ऋ० ५।५६।४॥

मैक्समूलर[2]—the rocky mountain (cloud)

ग्रिफिथ—the rocky mountain.

पर्वतो गिरिः। ऋ० १।३७।७॥

मैक्समूलर—the gnarled cloud,

यदद्रयः पर्वताः। ऋ० १०।९४।१॥

शतपथ में कहा है—

गिरिर्वा अद्रिः। ७।५।२।१८॥

तथा ऋग्वेद में कहा है—

---

१ ऋ० १।१।८॥ १।१४।११॥ इत्यादि।

२ S. B. E. वैदिक हिम्स पृ० ३३७।

वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ १।६१।७॥

ग्रिफिथ—......the wild boar, shooting through the mountain.

अतः निघण्टु १।१०॥ में भी कहा है।

अद्रिः…पर्वतः[1]। गिरिः।…वराहः।…इति मेघनामानि।

इस लिये इनको पर्याय मानने में ग्रिफिथ को आपत्ति न माननी चाहिये थी। तथा यदि ऋग्वेद में—

इन्द्रेण वायुना ।१।१४।१०॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते। ९।२७।२॥

ऐसे मन्त्र आजावें, जिनमें निश्चय ही इन्द्र को वायु का विशेषण बनाया गया है, तो कई स्थलों में इन्द्र का अर्थ वायु भी हो सकता है। ब्राह्मण में भी यही कहा है—

यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः। श० ४।१।३.१९॥

अयं वा इन्द्रो यो ऽयं पवते। श० १४।२।२।६॥

अब रहे ओल्डनबर्ग और मैकडानल। ये दोनों परस्पर पूर्ण सहमत नहीं। ओल्डनबर्ग यज्ञ का sacrifice और अध्वर का worship अर्थ करता है। इसके विपरीत मैकडानल यज्ञ का worship और अध्वर का sacrifice अर्थ करता है। खिन्नमना ओल्डनबर्ग धीमी स्वर से इन दोनों को पर्याय भी मानता है। यदि वह पर्याय न मानता, तो भारी आपत्ति से बच भी न सकता। इसी लिए आगे चल कर वह अर्थ पलटता है।

सत्यधर्माणमध्वरे। ऋ० १।१२।७॥

whose ordinances for the sacrifice are true.

अग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति। ऋ० १।१२८।४॥

---

१ यदि मैकडानल अपनी Vedic Reader १।८५।१०॥ में **पर्वतम्** का मूल में ही mountain की अपेक्षा cloud—मेघ अर्थ करता और टिप्पण में cloud mountain लिखने का कष्ट न उठाता, तो उसका अनुवाद, इस अंश में युक्त हो जाता।

Agni watches sacrifice and service.[1]

यज्ञानामध्वरश्रियम् । ऋ० १।४४।३॥

the beautifier[2] of sacrifices.

अब रहे, हमारे पूर्वपक्षी मैकडानल महाशय । ये श्रीमान् यज्ञ का worship और अध्वर का sacrifice अर्थ मानते हैं । पर इन का भी इस से काम नहीं चला । देखो

यज्ञस्य देवमृत्विजम् । ऋ० १।१।१॥

the divine ministrant of the sacrifice.

यज्ञैः विधेम । ऋ० २ । ३५ । १२ ॥

we offer worship with sacrifices.

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा । ऋ० ८ । ३८ । १॥

ye two (Indra-Agni) are ministrants of the sacrifice.[3]

इन मन्त्रों में इन्हें यज्ञ का sacrifice ही अर्थ मानना पड़ेगा ।

अब यदि ब्राह्मण ने

अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । २ । ४ । ५ ॥

कहा, तो ब्राह्मण तो स्वयं वेद के अनुकूल और समीप हैं, न कि दूर ।

बात वस्तुतः यह है कि वेदों के शब्द यौगिक वा योगरूढ हैं । इसी लिए विशेष्य, विशेषण की रीति से विशेषण धात्वर्थ मात्र ही देता है । वही विशेषण दूसरे स्थान पर स्वयं नाम अर्थात् योगरूढ बन जाता है । ब्राह्मणों में इसी अभिप्राय से वैदिक शब्दों के अर्थ कहे हैं । अनित्येतिहासप्रिय पाश्चात्यों को यह अच्छा नहीं लगता, अतः उन्होंने विना ब्राह्मणों के समझे उन्हें वेदार्थ से परे हटा हुआ कहा है । उपनिषद् में यथार्थ कहा है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च । मुण्डक १ । ७ ॥

---

१ यह अनुवाद भावशून्य है ।

२ **अध्वरश्रियम्,** द्वितीयान्तपद है । क्या इस का यह अर्थ पाश्चात्यों की शोभा बढ़ाता है ।

३ यह मन्त्रभाग मैकडानल ने ऋ० १।१।१॥ के टिप्पण में उद्धृत किया है ।

पहले पाश्चात्यों ने दो, अढ़ाई सहस्र वर्ष पुरातन भाषाओं के अधूरे भाषा-विज्ञान को बना लिया, फिर उसे लाखों वर्ष पुरानी ब्राह्मण-भाषा वा नित्य वेद-भाषा से समता में रख और सब को एक संग तोला। जब उनका स्वप्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ, तो स्वयं ही ब्राह्मणादि ग्रन्थों को स्वल्प मूल्यवान् कह दिया। अहो! आश्चर्य इस निराधार कल्पना पर। आप ही एक सिद्धान्त बनाया और स्वयं उसे सत्य मान लिया। फिर और सब कुछ तो अशुद्ध होना ही था।

४—वेदों के मूलार्थ पर प्रकाश डालने योग्य सामग्री का ब्राह्मणों में अभाव ही है।

५—ब्राह्मणों में कहीं २ ही मन्त्रों के भाव का व्याख्यान है।

६—यह व्याख्यान प्राय: अत्यन्त काल्पनिक होते हैं।

४—पश्चिम में रोथ, वैबर, मैक्समूलर, ओल्डनबर्ग, गैलनर, ह्विटने, मैकडानल प्रभृति ने जो अनुवाद वेदार्थ के नाम से छापे हैं, वे वेदार्थ तो हैं नहीं, उन के अपने मनों की कल्पनाएं अवश्य हैं। जब उनको वेदार्थ का पता ही नहीं लगा, तो वे उसकी तुलना ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ से कैसे कर सकते हैं।

अपने 'ऋग्वेद पर व्याख्यान' पृ० ६३ पर हमने सर्वानुक्रमणी के आधार पर तीन ऋषि-कुलों के पांच २ नाम वंश-क्रम से लिखे थे। उन में से एक वंशावली यह है—

ब्रह्मा
|
वसिष्ठ
|
शक्ति
|
पराशर
|
व्यास

इन पांचों में से पहले चार तो अनेक ऋग्वेदीय सूक्तों के द्रष्टा हैं। और अन्तिम व्यास जी सब शाखाओं (चारों वेदों को छोड़कर) और ब्राह्मणों के प्रधान प्रवक्ता हैं। इन्हीं व्यास जी के समकालीन याज्ञवल्क्य आदि हैं। ये भी ब्राह्मणों के प्रवक्ता हैं। ऐसा हम **"ब्राह्मणों का सङ्कलन काल"** अर्थात् छठे अध्याय में स्पष्ट

कर चुके हैं। इन्हीं से दो, चार, छः पीढ़ी पहले अनेक वैदिक ऋषि हो चुके थे। इन ऋषियों द्वारा वेदार्थ का प्रचार निरन्तर होता रहता था। और दो चार पीढ़ियों में वह अर्थ भूल भी नहीं सकता था। विशेषतः जब परम्परा अविच्छिन्न थी। ऐसी अवस्था में जो पाश्चात्य घर बैठेही मन्त्रों का अनृत अर्थ करके अपने को वेदज्ञ मानते हैं और ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अर्थ को अनर्थ समझते हैं, वे भ्रम सेही अपने बहुमूल्य जीवनों को यथार्थ वेदार्थ से वञ्चित कर रहे हैं।

हम पहले भी पृ० ६२, ६३ पर कह चुके हैं कि मौलिक ब्राह्मणों के प्रवक्ता ही वेदार्थ के द्रष्टा होते रहे हैं। यही मौलिक ब्राह्मण इन ब्राह्मणों में महाभारत-काल[1] में समाविष्ट किए गये। अतः इन्हीं ब्राह्मणों के अन्दर वेदों के मूलार्थ को प्रकाश करने वाली सामग्री विद्यमान है। इन में कहीं २ ही मन्त्रों के भावों का व्याख्यान नहीं, प्रत्युत सारा ब्राह्मण-वाङ्मय ही मन्त्रार्थप्रकाशक है। ब्राह्मणों में अल्पाभ्यास के कारण ही पाश्चात्यों ने इनके ठीक अभिप्राय को नहीं समझा। इतने लेख से ही मैकडानल की तीसरी, चौथी और पांचवीं प्रतिज्ञा का उत्तर समझ लेना।

६—यह व्याख्यान प्रायः काल्पनिक होते हैं।

ब्राह्मणों के व्याख्यान यथार्थ हैं, यह तो ब्राह्मण और वेद के गम्भीरपाठ से ही ज्ञात हो सकता है। हां, उदाहरण मात्र हम **अश्विनू** शब्द को लेते हैं।

पूर्वपक्ष

(क) मैकडानल अपनी Vedic Mythology पृ० ५३ (सन् १८६८) पर लिखता है—

"As to the physical basis of the Acvins the language of the Rsis' is so vague that they themselves do not seem to have understood what phenomenon these deities represented."

---

१ एफ० इ० पारजिटर महाशय अपने ग्रन्थ Ancient Indian Historical Tradition (सन् १९२२) में महाभारत-काल को ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व ही मानते हैं। यह उनकी सरासर खेंचतान है। इसका सविस्तर उत्तर हम अन्यत्र देने का विचार रखते हैं।

(ख) मैकडानल ने अपनी Vedic Reader पृ० १२८ पर भी ऐसा ही लिखा है। यही महाशय पृ० १२६ पर पुनः लिखते हैं—

'The physical basis of the Asvins has been a puzzle from the time of the earliest interpreters before Yaska, who offered various explanations, while modern scholars also have suggested several theories. The two most probable are that the Asvins represented either the morning twilight, as half light and half dark, or the morning and the evening star.''

(ग) घाटे महाशय अपने Lectures on Rigveda पृ० १७३–१७४ पर लिखते हैं—

"But these theories (dawn and the spring) cannot fully explain all the detail connected with these legends."

(घ) वेद में अश्विन् और नासत्य पद विशेष्य विशेषण भाव से प्रायः एकार्थवाची आते हैं। यथा ऋ० १।३४।७॥ में **नासत्या**···**अश्विना**। इसी भाव से जब वेद-मन्त्रों पर देवता लिखे जाते हैं तो कई आचार्य **नासत्यौ** लिख देते हैं और कोई **अश्विनौ देवते**। उदाहरणार्थ ऋ० १।१५।११॥ के देवते बृहद्देवता में **नासत्यौ** हैं और ऋषि दयानन्द सरस्वती के भाष्य में **अश्विनौ**।

इसी नासत्य शब्द पर लिखते हुए श्री अरविन्द घोष अपने आर्य के "प्रथम" वर्ष के पृ० ५३१ पर लिखते हैं—

"Nasatya is supposed by some to be a patronymic, the old grammarians ingeniously fabricated for it the sense of "true not false" but I take it from 'nas' to move.······They show that the Acvins are twin divine powers whose special function is to perfect the nervous or vital being in man in the sense of action and enjoyment. But they are also powers of truth, of intelligent action, of right enjoyment."

Barth आदि फ्रेंच लेखकों ने भी अन्य पश्चिमीय विद्वानों के समान ही लिखा है।

उत्तर पक्ष

मैकडानल ने अपने अज्ञान के छिपाने की अच्छी विधि निकाली है, जब वह कहता है कि वैदिक ऋषि अश्विद्वय के आधिदैविक अर्थों को स्वयं ही न समझे हुए प्रतीत होते हैं। वैदिक ऋषि तो क्या, यास्क प्रभृति शास्त्रकार और उनकी कृपा से हम भी अश्विद्वय के वास्तविक आधिदैविक अर्थों को जानते हैं। ऋग्वेद में स्वयं अश्विन् शब्द के धातु का निर्देश है—

पूर्वीरश्नन्तावश्विना। ८। ५। ३१॥

अर्थात्—**अश्नन्तौ अश्विनौ** व्यापनशील अश्विद्वय। इसी व्युत्पत्ति को ध्यान में रख कर शतपथ में कहा गया है—

अश्विनाविमे हीद्ँ सर्वमाश्नुवाताम्। ४। १। १६॥

इस व्युत्पत्ति बताने के अनन्तर हम कहना चाहते हैं कि—**अश्विद्वय** का जो अर्थ निरुक्त और बृहद्देवता में कहा गया है, वही ब्राह्मणों और शाखाओं में भी मिलता है। निरुक्त में व्युत्पत्ति भी वेद और ब्राह्मण वाली ही कही गई है। देखो—

अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषान्यः। तत्काव-श्विनौ। द्यावापृथिव्यौ, इत्येके। अहोरात्रौ, इत्येके। सूर्याचन्द्रमसौ, इत्येके। राजानौ पुण्यकृतौ, इत्यैतिहासिकाः॥ नि० १२। १॥

नासत्यौ चाश्विनौ। सत्यावेव नासत्यौ, इत्यौर्णवाभः। सत्यस्य प्रणेतारौ, इत्याग्रायणः। नासिकाप्रभवौ बभूवतुरिति वा॥ नि० ६।१३॥

और्णवाभो द्रूचे त्वस्मिन्न् अश्विनौ मन्यते स्तुतौ॥१२५॥
सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ।
अहोरात्रौ च तावेव स्यातां तावेव रोदसी॥१२६॥
अश्नुवाते हि तौ लोकान् ज्योतिषा च रसने च।
पृथक्पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च॥१२७॥
बृ० अध्याय ७॥

यही पूर्वोक्त भाव ब्राह्मणों और शाखाओं में मिलते हैं।

द्यावापृथिवी वा अश्विनौ। काठक सं० १३। ५॥

इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ। श० ४। १। ५। १६॥

अहोरात्रे वा अश्विनौ। मै० सं० ३।४।४॥

तथा ऋग्वेद में कहा है—

ऋता। १।४६।१४॥
ऋतावृधा।१।४७।१॥

अर्थात् अश्विद्वय = नासत्य, **सत्य स्वरूप** हैं। वे ही **सत्य से बढ़ने** वा **बढ़ाने वाले** भी हैं।

यास्क ने नासत्यों को **नासिकाप्रभव** इस लिए लिखा है कि उसका अभिप्राय **प्राणापान** से है। ये प्राणापान नासिका से ही उत्पन्न होते हैं।

ब्राह्मणों में अश्विद्वय को **अध्वर्यू** भी कहा है—

अश्विनावध्वर्यू। श० १।१।२।१७॥

और क्योंकि राष्ट्ररूप महायज्ञ के **अध्वर्यू** सभाध्यक्ष वा सेनाध्यक्ष भी होते हैं, अतः निरुक्त में अश्विद्वय का अर्थ पुण्यशील दो राजे भी कहा है। ऋग्वेद १०।३६। १६॥ में तो स्पष्ट ही **राजानौ** अश्विद्वय का विशेषण है। और ऋग्वेद ७।७१।४॥ में **नृपती** पद अश्विद्वय के लिये वर्ता गया है।

ये सारे अर्थ एक ही भाव को कह रहे हैं। वह भाव है, व्यापनशीलता का। यदि ये सारे अर्थ न माने जावें, तो अनेक मन्त्रों का अर्थ खुलता ही नहीं।

इससे भले प्रकार ज्ञात होता है कि ब्राह्मणान्तर्गत, मन्त्र, और उन के पदों का व्याख्यान अत्यन्त युक्त है। यास्क ने भी वही व्याख्यान स्वीकार कर लिया है। जो पाश्चात्य यास्क के, और ब्राह्मण के व्याख्यानों को काल्पनिक कहते हैं, उन्हें वेद समझ ही नहीं आया।

७—ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं। जैसे—

कस्मै देवाय हविषा विधेम।

हिरण्यपाणि का अर्थ ब्राह्मणों में विचित्र है।

७—अब मैकडानल महाशय उदाहरण-विशेषों से ब्राह्मणों के विचित्र अर्थ का प्रदर्शन कराते हैं। अतः हम उनके इस कथन की परीक्षा करते हैं।

कः का **प्रजापति** अर्थ ब्राह्मणों में ही नहीं किया गया, प्रत्युत मैत्रायणी आदि शाखाओं के ब्राह्मणपाठों में भी किया गया है। जैसे—

कन्त्वाय कायो यद्वै तद्वरुणगृहीताभ्यः कमभवत्तस्मात्कायः । प्रजापतिर्वै कः । प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयद्यत्काय आत्मन एवैना वरुणान्मुञ्चति । मै० सं० १ । १० । १० ॥

कन्त्वाय कायो यद्वा आभ्यस्तद्वरुणगृहीताभ्यः । कमभवत्तस्मात्कायः । प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयत्प्रजापतिः कः । आत्मनैवैना वरुणान्मुञ्चति । काठक सं० ३६ । ५ ॥

पूर्वोद्धृत वाक्यों में **प्रजापति** का नाम **क** इस लिए कहा गया है कि यह **सुखस्वरूप** है । **क** का अर्थ **सुख** है, ऐसा मानने में किसी पाश्चात्य को भी सन्देह नहीं होना चाहिए । ऋग्वेद में जो—

नाकः । १० । १२१ । ५ ॥

पद आता है, उस के स्वरूप पर विचार करने से निश्चय होता है कि **क** का अर्थ **सुख** है ।

अब कई एक ऐसा कहते हैं कि यदि **कस्मै** का अर्थ **सुखस्वरूपाय प्रजापतये** किया जाय तो व्याकरण बाधा डालता है । **सर्वनाम्नः स्मै ॥ अष्टा० ७ । १ । १७ ॥ स्मै** प्रत्यय सर्वनामों के साथ ही लगता है, अतः **कस्मै** पद सर्वनाम है, नाम नहीं ।[1]

ये महाशय नहीं जानते कि वेद में लौकिक व्याकरण के नियम काम नहीं देते । देखो **विश्व** पद सर्वनाम है । परन्तु ऋग्वेद में—

विश्वाय । १ । ५० । १ ॥

विश्वात् । १ । १८९ । ६ ॥

विश्वे । ४ । ५६ । ४ ॥

इसी शब्द के ये तीन रूप नाम-प्रत्ययान्त आये हैं ।[2] इतना ही नहीं, ऋग्वेद में **नाम** भी सर्वनाम प्रत्ययान्त आये हैं । जैसे ऋ० १।१०८।१०॥

---

१ मैक्समूलर इस विषय में एक लम्बा लेख लिखता है । देखो—
Vedic Hymns Part I. 1891, p. 11-13.

२ मैकडानल A Vedic Grammar for students, 120b. में यही स्वीकार करता है । यदि उसे हमारे इस सारे कथन का ध्यान आ गया होता तो वह अवश्य कोई और कल्पना उपस्थित करता ।

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।

इस मन्त्र में—**परमस्याम् । मध्यमस्याम् । अवमस्याम्** । इन नाम-वाची पदों के साथ सर्वनाम प्रत्यय हैं, अतः प्रजापतिवाचक **क** के साथ यदि **स्मै** प्रत्यय आ जाय और ब्राह्मणादि उसको नाम मान कर अर्थ करें, तो यह अनुचित नहीं, प्रत्युत उचिततम है । पाश्चात्य वेदार्थ को भ्रष्ट करना चाहते हैं । उन का अभिप्राय यही है कि संसार वेद का गौरवयुक्त अर्थ जान ही न सके । अतः वे वेद का यथासम्भव ऐसा अर्थ चाहते हैं, जिस से यही ज्ञात हो कि आर्यों को वेदमन्त्रों से परब्रह्म का भी ज्ञान नहीं हो सका । वे सदा प्रश्न ही करते रहे, कि "हम किस देव की हवि से पूजा करें ।" दो चार अल्पपठित भारतीय उन की बातें सुन कर भले ही यह कह दें कि ब्राह्मणों में **कस्मै** का अशुद्ध अर्थ किया गया है वरन् आर्य विद्वान् ऐसे आक्षेपों पर हंस छोड़ने की अपेक्षा और क्या कह सकते हैं ।[1]

भाष्यकार पतञ्जलि मुनि—

कस्येत । ४ । २ । २५ ॥

सूत्र पर व्याख्या करते हुए इस आक्षेप का और ही समाधान करते हैं । वह भी देखने योग्य है—

सर्वस्य हि सर्वनाम संज्ञा क्रियते । सर्वश्च प्रजापतिः । प्रजापतिश्च कः ।

लिखा तो बहुत कुछ जा सकता है, परन्तु विद्वान् इतने से ही जान सकते हैं कि ब्राह्मणार्थ को दूषित कहने वाले पाश्चात्य जन स्वयमेव वेद विद्या में अल्पश्रुत हैं ।

(ख) इस के अनन्तर मैकडानल महाशय **हिरण्यपाणि** शब्द और उस के ब्राह्मणान्तर्गत अर्थ पर विचार करते हैं ।

---

१ विष्णुसहस्रनाम का जो भाष्य शङ्कर के नाम से प्रसिद्ध है, उस के दशम श्लोक की व्याख्या में देवों के **एक** ही परमदेव का कथन करते हुए लिखा है—

हिरण्यगर्भ इत्यष्टौ मन्त्राः । कस्मै देवायेत्यत्र एकारलोपेनैकदैवत-प्रतिपादकाः ।

अर्थात्—हिरण्यगर्भ आदि मन्त्रों के **कस्मै** पद में एकार का लोप है । वस्तुतः अर्थ एकस्मै का है ।

हम कहते हैं, कि उन्हों ने **हिरण्यपाणि** शब्द ही क्यों लिया। वे **त्रिशीर्ष त्वाष्ट्र, दध्यङ् आथर्वण, रुद्र** आदि कोई शब्द भी ले लेते। इन में से प्रत्येक शब्द के साथ ब्राह्मण में कोई न कोई कथा अलङ्काररूप से कही गई है। हम भी इन सारी कथाओं का समुचित अर्थ अभी तक नहीं समझ सके। परन्तु हम यह नहीं कहते कि यत्न करने पर भी इन के अन्दर से कोई गम्भीर आधिदैविक तत्त्व न निकलेगा। अतः हम पूर्ववत् अपने पाश्चात्य मित्रों से यही प्रार्थना करेंगे, कि वे इन ग्रन्थों का अर्थ समझने में हमारा साथ दें, न कि समझने के स्थान में इन की ओर उपेक्षा दृष्टि करें।

८—भाषा सम्बन्धी साक्ष्य को पृथक् रखकर भी ऐसे व्याख्यान बताते हैं कि ब्राह्मण-काल से मन्त्र काल का बड़ा अन्तर होचुका था।

८—चारों वेदों का प्रकाश आदि सृष्टि में ऋषि-जनों के हृदय में हुआ। उन्हीं दिनों से ब्रह्मा आदि महर्षियों ने ब्राह्मणों का प्रवचन आरम्भ कर दिया। वही प्रवचन कुल परम्परा वा गुरुपरम्परा में सुरक्षित रहा। उस के साथ नवीन प्रवचन भी समय २ पर होता रहा। यह सारा प्रवचन महाभारतकाल में इन ब्राह्मणों के रूप में सङ्कलित हुआ। यह सारी परम्परा अनवच्छिन्न थी। अतः काल की दृष्टि से, ब्राह्मणों का कुछ अंश तो मन्त्रों की अपेक्षा नवीन होसकता है, सब नहीं। और जो महाशय भाषा के साक्ष्य पर बहुत बल देते रहते हैं, उन्होंने ब्राह्मणान्तर्गत **यज्ञगाथायें** नहीं देखीं। यदि देखी भी हैं, तो उन पर ध्यान नहीं दिया। ये सब गाथायें सर्वथैव लौकिक भाषा में हैं। ऐसा हम पूर्व दिखा भी चुके हैं। वही ऋषि ब्राह्मणों का प्रवचन करते थे, और वही धर्मशास्त्रादि का भी।[1] अतः भाषा के साक्ष्य पर कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती। जिन पाश्चात्यों ने सुविस्तृत आर्ष वाङ्मय का दीर्घ अभ्यास नहीं किया, वे अपने कल्पित-भाषा-विज्ञान पर निरर्थक बहुत बल देते रहते हैं। इससे वे कुछ निर्णीत नहीं कर सकते। भाषा तो विषयानुसार भी भिन्न २ प्रकार की हो सकती है।[2] अतः मैकडानल साहेब की आठवीं प्रतिज्ञा भी निर्मूल है। अधिक

---

१ विस्तरार्थ D. A. V. College U. Magazine, Feb. 1925 में देखो हमारा लेख—"Classical Sanskrit is as old as the Brahmanas."

२ भाषा सम्बन्धी साक्ष्य पर Dr. R. Zimmermann का लेख A. second Selection of Hymns from the Rigveda, 1922 pp. CXXXII-CXXXVIII पर देखने योग्य है।

लिखने से क्या। हमारे पूर्व लेख में भी इसका अच्छा खण्डन हो चुका है। फलतः हम सुदृढ़रूप से कह सकते हैं कि ब्राह्मण प्रदर्शित वेदार्थ ही हमें वेद के यथार्थ तत्वों तक पहुंचा सकता है। अतः ब्राह्मण कहता है **यथर्क्तथा ब्राह्मणम्। श० १२।८।२।४॥** अर्थात्—जैसा ऋचा कहती है, वही उसके ब्राह्मण में है। **यथैव यजुस्तथा बन्धुः। श० ६।४।२।४॥** अर्थात् जिस भाव का यह याजुषमन्त्र है,वैसा ही भाव ब्राह्मण में भी है। एतदर्थ ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य के विज्ञापन में कहा था—

"इदं वेदभाष्यमपूर्वं भवति। महाविदुषामार्य्याणा पूर्वजानां यथावद्वेदार्थविदामाप्तानामात्मकामानां धर्म्मात्मनां सर्वलोकोपकारबुद्धीनां श्रोत्रियाणां ब्रह्मनिष्ठानां परमयोगिनां ब्रह्मादिव्यासपर्य्यन्तानां मुन्यृषीणामेषां कृतीनां सनातनानां वेदाङ्गानामैतरेयशतपथसामगोपथब्राह्मणपूर्वमीमांसादिशास्त्रोपवेदोपनिषच्छाखान्तरमूलवेदादिसत्यशास्त्राणां वचनप्रमाणसंग्रहलेखयोजनेन प्रत्यक्षादिप्रमाणयुक्त्या च सहैव रच्यते ह्यतः।"

८—मुद्रित ब्राह्मणों में भ्रष्टपाठ।

मुद्रित ब्राह्मणों में भ्रष्टपाठ पर्याप्त हैं। गोपथ के योरुपीय संस्कर्ता ने यद्यपि बहुत परिश्रम से लाईडन संस्करण छापा है तो भी अभी तक उस में अशुद्धियों की कमी नहीं। तुलना करो गोपथ उ० ३। ३॥ से ऐ० ३। ७॥ की, इत्यादि।

ऐ० ३। ११॥ में एक पाठ है—

सौर्या वा एता देवता यन्निविदः।

यहां **देवता** के स्थान में **देवतया** पाठ ब्राह्मण शैली के अधिक समीप है। **कीथ** महाशय ने भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। देखो निम्नलिखित ब्राह्मणपाठ—

ऐन्द्रो वै देवतया क्षत्रियो भवति। ऐ० ७। १३॥

आग्नेयो वै देवतया क्षत्रियो दीक्षितो भवति। ऐ० ७। २४॥

प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद् द्रोणकलशः। तां० ६। ५। ६॥

पुनः ऐतरेय ७। ११॥ में एक पाठ है।

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः।

इसी का दूसरा रूपान्तर कौषीतकि ३ । १ ॥ में ऐसे है—

यांपर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिः ।

इस सम्बन्ध में ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के अनुवाद में कीथ का टिप्पण २, पृ० २६७ पर देखने योग्य है। हम अपनी सम्मति अभी नहीं दे सकते। गोपथ और कौषीतकि में समान प्रकरण में क्रमशः एक पाठ है—

अमृतं वै प्रणवः । उ० ३ । ११ ॥

अमृतं वै प्राणः । ११ । ४ ॥

यहां कौषीतकि का पाठ ठीक प्रतीत होता है। ऐसे ही इन दोनों ब्राह्मणों में एक और पाठ है—

अप्सु वै मरुतः शिताः । कौ० ५ । ४ ॥

अप्सु वै मरुतः श्रिताः । गो० उ० १ । २२ ॥

यहां दोनों स्थलों में **श्रिताः** पाठ युक्त प्रतीत होता है। कीथ महाशय ने यहां कोई टिप्पणी नहीं दी। पुनरपि—

अयस्मयेन चरुणा तृतीयामाहुतिं जुहोति । आयस्यो वै प्रजाः ।
श० १३ । ३ । ४ । ५ ॥

अयस्मयेन कमण्डलुना तृतीयाम् । आहुतिं जुहोति । आयस्यो वै प्रजाः । तै० ब्रा० ३ । ९ । ११ । ४ ॥

यहां तै० ब्रा० के पाठ में **आयास्यः** पाठ निश्चय ही चिरकाल से अशुद्ध हो गया है। भट्ट भास्कर और सायण दोनों ही अशुद्ध पाठ को मानकर अर्थ में एक क्लिष्ट कल्पना करते हैं। अर्थात् **अयास्य** ऋषि से उत्पन्न की गई प्रजायें हैं। यहां **अयास्य** ऋषि का कोई प्रकरण ही नहीं। शतपथ स्पष्ट करता है कि प्रजायें (**आयस्यः**) अर्थात् आयसी=लोह सम्बन्धी हैं। प्रकरण भी दोनों स्थलों में पूर्व पठित **अयस्मय** पद से लोहविषयक ही है। शतपथ में—

विश एतद्रूपं यदयः । १३ । २ । २ । १९ ॥

से पहले यह कह ही दिया गया है कि विश्=**प्रजा** लोहरूप है। अब न जानें भास्कर, सायण आदिकों ने तुलनात्मक विधि से क्यों लाभ नहीं उठाया, और भ्रष्ट पाठ को ही स्वीकार कर लिया।

वैदिक कोष से ऐसे और भी स्थल स्पष्ट होंगे । विज्ञ पाठक उन सब से लाभ उठावें ।

ब्राह्मणों में प्रक्षेप ।

ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं, ऐसा हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं । जिस प्रकार ब्राह्मणों के अनेक पाठ भ्रष्ट हो गये हैं, वैसे ही कुछ पाठ उड़ गये हों, अथवा नये मिल गये हों, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं । परन्तु प्रक्षेपों के जानने के लिए अभी भारी अनुसन्धान की आवश्यकता है ।

नवां अध्याय

सर्वानुक्रमणियों का आधार ब्राह्मणग्रन्थ हैं ।

गत पृष्ठों में हम ने इस बात की पुष्टि की है, कि वेदार्थ का आधार ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं । अब हम यह बात सिद्ध करेंगे कि वेदार्थ में सहायक मन्त्रों के जो ऋषि, देवता, छन्दादि हैं, वह भी ब्राह्मणग्रन्थों में ही विद्यमान हैं । इन्हीं ब्राह्मणग्रन्थों में से उन को एकत्र कर के ऋषि मुनियों ने सर्वानुक्रमणियां बनाई हैं ।

इस विषय का थोड़ा सा सङ्केत हम अपने "ऋग्वेद पर व्याख्यान" पृष्ठ ६१ पर कर चुके हैं । अब इस पर कुछ अधिक लिखा जाता है ।

ताण्डियों के आर्षेय ब्राह्मण १ । १ ॥ का प्रसिद्ध पाठ है—

अथापि ब्राह्मणं भवति–यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वर्छति गर्त्तं वा पद्यति...... ।

अर्थात्—इस विषय में ब्राह्मण का भी प्रमाण है—"जो ऋषि, छन्द, देवता और ब्राह्मण (विनियोग) को जाने विना मन्त्र से यज्ञ वा अध्यापन कर्म करता है, वह स्थाणु (सूखे वृक्ष) से टक्कर मारता है, अथवा गढ़े में गिरता है।" इस ब्राह्मण-प्रमाण से निश्चित होता है कि वैदिक ऋषि मन्त्रों के ऋषि, देवता आदि का ज्ञान मन्त्रपाठ आदि के लिए अनिवार्य समझते थे ।

फिर शतपथ ब्राह्मण ६ । २ । ३ । १० ॥ का पाठ है—

प्रजापतिः प्रथमां चितिमपश्यत् । प्रजापतिरेव तस्या आर्षेयं ......स यो हैतदेवं चितीनामार्षेयं वेदार्षेयवत्यो हास्य बन्धुमत्यश्चितयो भवन्ति ॥

अर्थात्—प्रजापति ने पहली चिति को देखा । प्रजापति ही उस का ऋषि है । तो वह जो इस प्रकार चितियों के ऋषि जानता है, उस की चितियां आर्षेयवती और बन्धुमती (ब्राह्मण आदि विनियोगयुक्त) हो जाती हैं ।

शतपथ के इस प्रमाण में प्रजापति को प्रथमा चिति का ऋषि कहा है । ये चितियां ब्राह्मणस्थ हैं । यहां भी सामान्यरूप से चितियों का प्रजापति ऋषि कहा है । इस में हमें कुछ नहीं कहना । यहां तो इतना ही भाव बताने का अभिप्राय है कि, ऋषि को जानने का फल शातपथी श्रुति ने कहा है ।

ऋग्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद की सर्वानुक्रमणियां तो प्राचीन हैं। याजुष-सर्वानुक्रमणी के प्राचीन होने में कुछ सन्देह है। यजुर्वेदीय सम्प्रदाय का मध्यम-कालीन आचार्य उवट अपने मन्त्रभाष्य के आरम्भ में लिखता है—

गुरुतस्तर्कतश्चैव तथा शातपथश्रुतेः।

ऋषीन् वक्ष्यामि मन्त्राणां देवताश्छन्दसं च यत्॥

अर्थात्—गुरु से, तर्क से, तथा शतपथ की श्रुतियों से मन्त्रों के ऋषि, देवता और छन्द कहूंगा।

यह विचारने का स्थान है कि यदि उवट के समीप याजुष सर्वानुक्रमणी होती, तो वह यह न लिखता कि 'ऋषि आदि शपतथ से कहूंगा।' कोई कह सकता है कि उवट को सर्वानुक्रमणी मिली ही न होगी। पर यह कल्पना श्रद्धेय नहीं, अस्तु। याजुष सर्वानुक्रमणी के विषय में यह सब कुछ प्रसङ्गतः कहा गया है। हमारा मुख्य अभिप्राय तो यह दिखाना है कि **उवट** भी याजुष मन्त्रों के ऋषि आदि शतपथ की श्रुतियों से लेता है।

अब हम ब्राह्मणों से कतिपय वे स्थल देते हैं, जहां से सर्वानुक्रमणी-कारों ने अपनी सामग्री प्राप्त की है।

(१) काठक संहिता १९। ११॥ में लिखा है—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्, इति शुनश्शेपो वा एतामाजीगर्तिर्वरुण-गृहीतोऽपश्यत्।

कात्यायनकृत ऋक् सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद १। २४॥ का ऋषि **आजीगर्ति शुनःशेप** लिखा है। यह मन्त्र उसी सूक्त का १५वां है।

(२) काठक संहिता १०। ११॥ में लिखा है—

अगस्त्यतस्यैतत्सूक्तं कयाशुभीयम्।

अर्थात्—१५ ऋचा वाले काठकसंहितास्थ ६। १८॥ **कयाशुभीय** सूक्त का **अगस्त्य** ऋषि है।

यही १५ ऋचा वाला सूक्त ऋ० १। १६५॥ है। इस का ऋषि सर्वानुक्रमणी में **अगस्त्य** है।

(३) काठक संहिता २०। १॥ में लिखा है—

अयँ सो अग्निः, इत्येतद्विश्वामित्रस्य सूक्तम् ।

अर्थात्—ऋ० ३।२२॥ सूक्त का ऋषि **विश्वामित्र** है। ऐसा ही ऋक् सर्वानुक्रमणी में लिखा है।

(४) काठक संहिता १० । ५ ॥ में लिखा है—

स वामदेव उख्यमग्निमबिभस्तमवैक्षत स एतत्सूक्तमपश्यत्—कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्, इति ।

यह सूक्त ऋग्वेद ४ । ४ ॥ है। ऋक् सर्वानुक्रमणी में इस का ऋषि **वामदेव** ही लिखा है।

(५) कौषीतकि ब्राह्मण १२ । १ ॥ में लिखा है—

एतत्कवषः सूक्तमपश्यत्पञ्चदशर्चं-प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु, इति ।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में भी इस १५ ऋचा वाले ऋ० १० । ३० ॥ सूक्त का ऋषि कवष ऐलूष ही लिखा है।

(६) ऐतरेय ब्राह्मण ३ । १९ ॥ में लिखा है—

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय, इति……गौरिवीतिर्ह वै शाक्त्यो…एतत्सूक्तमपश्यत् ।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में भी इस ऋ० १० । ७३ ॥ का ऋषि **शाक्त्य गौरिवीति** ही लिखा है।

(७) शतपथ २ । १ । ४ । २९ ॥ में लिखा है—

अथ सर्पराज्ञ्या[1] ऋग्भिरुपतिष्ठते । आयं गौः पृश्निरक्रमीत्…… ।

इसी के भाष्य में आचार्य हरिस्वामी लिखता है—

…सर्पाणां राज्ञी सर्पराज्ञी । सर्पाणां माता कद्रूः । तस्या एता ऋचः ।

अर्थात्—सर्पों की माता कद्रू की ये ऋचाएं हैं।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में ऋ० १० । १८९ ॥ के इस सूक्त को **सार्पराज्ञी** का सूक्त कहा है।

(८) ताण्ड्य ब्राह्मण ४ । ७ । ३ ॥ में लिखा है—

---

१ तुलना करो काठक संहिता ३४ । २ ॥ **सर्पराज्ञ्या ऋग्भिस्स्तुंयुः ।**

इन्द्र क्रतुन्न आ भर, इति······वसिष्ठो वा एतं पुत्रहतो ऽपश्यत् ।

अर्थात्—इस ऋग्वेद ७ । ३२ । २६ ॥ का ऋषि **हतपुत्र वसिष्ठ** है ।

यही बात ऋक् सर्वानुक्रमणी में लिखी है । इस के अतिरिक्त वहां स्पष्ट लिखा है कि यह ताण्ड्य कहते से—

वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम् ।

(९) शतपथ ६ । ५ । २ । ५ ॥ में लिखा है—

वि न इन्द्र मृधो जहि । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः, इति वैमृधीभ्यां······ ।

अर्थात्—ये दोनों ऋचाएं **विमृध=इन्द्र** देवता वाली हैं ।

पहली ऋचा ऋ० १० । १५२ । ४ ॥ है, और दूसरी ऋ० १० । १८० । २ ॥

ऋक् सर्वानुक्रमणी में इन दोनों का देवता **इन्द्र** है ।

(१०) शतपथ ६ । ५ । २ । ६ ॥ में लिखा है—

वैश्वानरो न ऊतये । पृष्टो दिवि पृष्टो ऽअग्निः पृथिव्याम् । इति वैश्वानरीभ्यां············ ।

अर्थात्—ये दोनों ऋचाएं वैश्वानर देवता वाली हैं ।

इन में से दूसरी ऋचा ऋ० १ । ६८ । २ ॥ है ।

ऋक् सर्वानुक्रमणी में भी इस का देवता **वैश्वानर** लिखा है ।

ये थोड़े से प्रमाण ऋषि और देवता सम्बन्धी यहां दिए गए हैं । इसी प्रकार से मन्त्रों के छन्द भी अनुक्रमणीकारों ने ब्राह्मणों से ही लिए हैं । इस से ज्ञात हो जावेगा कि वेदार्थ की सहायक सामग्री का ब्राह्मणों में कितना बाहुल्य है ।

दसवां अध्याय

ब्राह्मणग्रन्थों का प्रतिपादित विषय

ब्राह्मणग्रन्थों का प्रधान विषय आधिदैविक तत्त्वों का वर्णन करना है। इन आधिदैविक तत्त्वों का वर्णन करते हुए कहीं कहीं प्रसङ्गतः आध्यात्मिक तत्त्व भी कहे गए हैं।[१] हां, जहां जहां ब्राह्मणग्रन्थों में ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है, जिस के दो २ अर्थ बनें, वहां आधिदैविक अर्थ के साथ ही साथ ईश्वर आदि का अर्थ भी सङ्गत होता जाता है। इस ग्रन्थ के पांचवे अध्याय से यह बात प्रकट हो चुकी है, कि जो आचार्य उपनिषद् के प्रवक्ता थे, उन्हीं में से अनेक आचार्य ब्राह्मण के भी प्रवक्ता थे। इस विषय का अधिक प्रमाण यहां दिया जाता है।

शतपथ १।३।४।२१॥ १।६।३।१६॥ २।३।१।२१॥ आदि में **याज्ञवल्क्य**, श० २।२।२।२०॥ मै० सं० १।४।१०॥ में **अरुण औपवेशि**, श० ३।३।४।१६॥ ४।५।७।६॥ में **आरुणि**, श० ३।४।३।१३॥ में **श्वेतकेतु औद्दालकि**, श० २।८।२।६॥ में **[इन्द्रद्युम्न] भाल्लवेय**, श० २।४।३।१॥ में **कहोड कौषीतकि**, श० ३।१।१।४॥ में **सात्ययज्ञ**, श० ४।६।१।६॥ में **बुडिल आश्वतराश्वि**, आदि का उल्लेख है।

ये ही ऋषि उपनिषदों में **ब्रह्म** और **आत्मा** का निरूपण करते हैं। इस लिए यह मानना अनिवार्य हो जाता है, कि ब्राह्मणों के आधिदैविक सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने वाले आचार्य परम आध्यात्मिक तत्त्वों को भी पूरा पूरा जानते थे। जो पाश्चात्य और एतद्देशीय लोग यह कहते हैं, कि ब्राह्मणों के आचार्यों को **ब्रह्म** और **आत्मा** का ज्ञान न था, ब्रह्म का विचार उपनिषदों के काल में आरम्भ हुआ, ब्राह्मणों के काल में लोग यज्ञ को ही सब कुछ समझते थे, इत्यादि, यह सब बातें उन की भूल को ही दिखाती हैं। ऐसे लेखकों ने इन ग्रन्थों का ऐतिहासिक दृष्टि से पाठ नहीं किया। यदि किया होता, तो यह बात कोई न लिखता कि ब्राह्मण-काल और था, और उपनिषद्-काल और।

जिस प्रकार आज भी अनेक विषयों का ज्ञाता एक ही ग्रन्थकार भिन्न २ विषयों पर लिखता हुआ भिन्न २ परिभाषाओं से अलंकृत भाषा में पृथक् २ सिद्धान्तों

---

१ देखो, श० ६।५।३।४॥ ६।७।१।२०॥ १०।१।२।३॥ १०।३।३।६॥ १०।५।२।७॥

का प्रतिपादन करता है,वैसे ही उन प्राचीन आचार्यों ने भी किया था । आधिदैविक विषयों पर लिखते हुए उन्हों ने अपना ध्यान अधिकांश में उन्हीं विषयों पर रखा है । और आध्यात्मिकतत्त्वों का प्रकाश करते समय वे प्रायः उसी अध्यात्मवाद में ही बन्द रहे हैं । यह है भी उचित ही । एक अनन्य ईश्वरभक्त भी गणितशास्त्र का ग्रन्थ लिखते समय गणितविद्या का ही प्रतिपादन करेगा, न कि ईश्वरभक्ति का । ऐसी अवस्था में समान-कर्ताओं के होते हुए ब्राह्मण-काल, उपनिषद्-काल आदि की सीमा बान्धना, अपने नितान्त अज्ञ होने का प्रमाण देना है । ऐतिहासिक सचाईयों से आंखें बन्द करने वाले, केवल भाषा-विज्ञान (philology) के ही प्रेमियों को अपने कल्पित "महा-भाषा-भेद" का कारण कहीं अन्यत्र ढूंढना चाहिए । हम तो समझते हैं कि विषय-भेद और देश-भेद से भी भाषाभेद उत्पन्न हो जाता है । अस्तु ।

इस पर भी यह परम सन्तोषजनक है, कि ब्राह्मण-ग्रन्थों के उपनिषद् और आरण्यक भागों को भी जो कि ब्राह्मणों का निजू अंश हैं यदि सर्वथा पृथक् रख दिया जावे, तो भी ब्राह्मणों में ऐसी पर्याप्त सामग्री है जिस में परम अध्यात्मवाद का स्वच्छ दर्शन हो जाता है ।

आत्मा का अस्तित्व और पुनर्जन्म

शतपथ ३ । २ । २ । २३ ॥ में लिखा है—

अथ यत्र सुप्त्वा पुनर्नावद्रास्यन्भवति । तद्वाचयति-पुनर्मनः पुनरायुर्म ऽआगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म ऽआगन्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म ऽआगन्निति । [यजुः ४।१५॥] सर्वे ह वा ऽएते स्वपतो ऽपक्रामन्ति प्राण एव न । तैरेवैतत्सुप्त्वा पुनः संगच्छते । तस्मादाह—पुनर्मनः··· ।

अर्थात्—अब जब (यजमान) सो कर पुनः सोने की इच्छा नहीं करता, तब (अध्वर्यु) उस से अगला मन्त्र बुलवाता है—

फिर मन, फिर आयु मुझे प्राप्त हो । फिर प्राण, फिर आत्मा मुझे प्राप्त हो । फिर चक्षु, फिर श्रोत्र मुझे प्राप्त हो । ये सब ही सोते हुए से परे चले जाते हैं, प्राण ही नहीं जाता । उन सब के साथ सोने के पश्चात् फिर युक्त हो जाता है ।

यह मन्त्र वस्तुतः **पुनर्जन्म** का प्रतिपादन करता है । ब्राह्मणों के प्रवक्ता यह आवश्यक समझते थे कि उन के प्रत्येक कर्म के साथ यथाशक्य कोई मन्त्र विनियुक्त हो जावे, तो अच्छा है । इसी लिए उन्हों ने यजमान के सो कर उठने के पश्चात्

की क्रिया में इस मन्त्र का भी विनियोग कर दिया। ब्राह्मण मन्त्र समाप्ति के आगे स्वयं कहता है कि—"ये सब ही सोते हुए से परे चले जाते हैं, प्राण ही नहीं जाता।" परन्तु मन्त्र में तो यह भी प्रार्थना है कि—"फिर प्राण मुझे प्राप्त हो। यदि यह प्राण निरन्तर काम कर रहा था, तो इस के पुनः प्राप्त करने की इच्छा निरर्थक है। यह सत्य है कि सोते समय प्राणों के सिवा सब इन्द्रियगण सो जाते हैं। आत्मा भी आवरणयुक्त हो जाता है। यजुर्वेद ३४। ५५॥ में कहा है—

तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।

अर्थात्—सब इन्द्रियों के सोने पर प्राण और अपान रूपी दो देव न सोने वाले जागते हैं।

इस लिए मूल मन्त्र का अभिप्राय ऐसी अवस्था से ही है, जब कि प्राण भी फिर प्राप्त हों। यह अवस्था तो पुनर्जन्म की है। उसी अवस्था में आत्मा पुनः अहंभाव को प्राप्त होता है। इस मन्त्र का विनियोग करने से प्रकट है कि शतपथ में आत्मा का अस्तित्व और उस का पुनर्जन्म में आना माना है।

पुनः शतपथ ३। ८। ३। ८॥ में कहा है—

आत्मा वै मनो हृदयं प्राणः।

अर्थात्—आत्मा (जीवात्मा ही) मन है और हृदय प्राण है।

दश वा ऽइमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशो यस्मिन्नेते प्राणाः प्रतिष्ठिता एतावान्वै पुरुषः। श० ११। २। १। २॥

अर्थात्—मनुष्य में ये दश प्राण हैं, आत्मा ग्यारहवां है। इसी आत्मा में, अर्थात् आत्मा के आश्रय ये प्राण ठहरते हैं। इतना ही मनुष्य है।

एगलिङ्ग यहां भी **आत्मा** पद का body शरीर अर्थ करता है। यह उसकी भूल है। श० ११।६।३।७॥ में कहा है—

कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति।

अर्थात्—रुद्र कौन हैं। दश ये मनुष्य में प्राण हैं, **आत्मा ग्यारहवां है।** वे जब इस मर्त्य शरीर से निकलते हैं, तब रुलाते हैं।

अब यहां स्पष्ट ही कहा गया है कि दश प्राण और ग्यारहवां आत्मा इस मर्त्य

शरीर से निकलते हैं। ईश्वर का धन्यवाद है, कि यहां पर एगलिङ्ग आत्मा पद का शरीर अर्थ नहीं करता, प्रत्युत self (spirit) आत्मा ही अर्थ करता है। इसी प्रकार यदि पूर्व भी वह पक्षपात न करता, तो क्या ही अच्छा होता। इन प्रमाणों से आत्मा का अस्तित्व भले प्रकार प्रकट हो जाता है।

हम पहले पृ० ११ पर पुनर्जन्म के विषय में संक्षेपरूप से शतपथ से दो प्रमाण लिख चुके हैं। वे दोनों और कई अन्य प्रमाण अब विस्तार से दिए जाते हैं।

स यत्सायमस्तमिते द्वे ऽआहुती जुहोति। तदेताभ्यां पूर्वाभ्यां पद्भ्यामेतस्मिन्मृत्यौ प्रतितिष्ठत्यथ यत्प्रातरनुदिते द्वे ऽआहुती जुहोति तदेताभ्यामपराभ्यां पद्भ्यामेतस्मिन्मृत्यौ प्रतितिष्ठति स एनमेष उद्यन्नेवादायोदेति तदेवं मृत्युमर्ति मुच्यते सैषाग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिरति ह वै पुनर्मृत्युं मुच्यते य एवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिं वेद॥ श० २।३।३।६॥

अर्थात्—वह जब सायं को सूर्यास्त होने पर दो आहुति देता है, तो इन अगले पाओं से उस मृत्यु पर ठहरता है। और जब प्रातः सूर्योदय से पूर्व दो आहुति देता है, तो इन पिछले पाओं से उस मृत्यु पर ठहरता है। वह (सूर्य) इस (अग्निहोत्री) को ऊपर लेता हुआ चढ़ता है। ऐसे वह मौत से छूट जाता है। यही अग्निहोत्र में मृत्यु से अतिमुक्ति है। वह वार वार की मौत से छूटता है, जो इस अग्निहोत्र में मृत्यु से अतिमुक्ति को जानता है।

तदाहुः। किं तदग्नौ क्रियते येन यजमानः पुनर्मृत्युमपजयतीत्यग्निर्वा ऽएष देवता भवति यो ऽग्निं चिनुते ऽमृतमु वा ऽअग्निः। श्रीर्देवाः। श्रियं गच्छति यशो देवा यशो ह भवति य एवं वेद॥

श० १०।१।४।१४॥

अर्थात्—तब कहते हैं, अग्निचयन में कौन सी ऐसी बात की जाती है, जिस से यजमान वार वार की मौत को जीत लेता है। अग्निरूप देवता ही (तेजोमय दिव्यगुणक) वह हो जाता है, जो अग्नि का चयन करता है। अग्नि (ब्रह्म और उस की विभूति कारण अग्नि) ही अमृत है। दिव्यगुण वाले पदार्थ इसकी विभूतियां हैं। वह विभूति वाला हो जाता है। दिव्यगुण वाले पदार्थ यशरूप हैं। वह यशस्वी हो जाता है, जो ऐसा जानता है।

ता१ँ हैतां गोतमो राहूगणः । विदां चकार सा ह जनकं वैदेहं प्रत्युत्ससाद । ता१ँ हाङ्गजिद्ब्राह्मणेष्वन्वियेष । तामु ह याज्ञवल्क्ये विवेद । स होवाच सहस्रं भो याज्ञवल्क्य दद्मो यस्मिन्वयं त्वयि मित्रविन्दामेति । विन्दते मित्र१ँ राष्ट्रमस्य भवत्यप पुनर्मृत्युं जयति सर्वमायुरेति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजते यो वै तदेवं वेद ॥ श० ११ ४ । ३ । २० ॥

अर्थात्—उस निश्चय ही इस (मित्रविन्दा यज्ञ) को **गोतम राहूगण** ने जाना था । वह (मित्रविन्दा) विदेह के राजा जनक के पास चली गई । उसने इसे अङ्गो= वेदाङ्गों के जानने वाले ब्राह्मणों में ढूंढ़ा । उसे याज्ञवल्क्य में पाया । वह (राजा) बोला हे याज्ञवल्क्य सहस्र (सुवर्ण मुद्रा) हम तुम्हें देते हैं, जिस तुझमें मित्रविन्दा को हमने पाया । प्राप्त करता है मित्र को, साम्राज्य उसी का होता है, बार बार की मौत को जीत लेता है, सारी आयु अर्थात् सौ वर्ष प्राप्त करता है, जो ऐसा जानता हुआ, इस इष्टि से यज्ञ करता है, अथवा जो ऐसा जानता है ।

तस्य वा ऽएतस्य ब्रह्मयज्ञस्य । चत्वारो वषट्कारा यद्वातो वाति यद्विद्योतते यत्स्तनयति यदवस्फूर्जति तस्मादेवंविद्वाते वाति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जत्यधीयीतैव वषट्काराणामच्छम्बट्कारायाति ह वै पुनर्मृत्युं मुच्यते गच्छति ब्रह्मणः सात्मता१ँ । श० ११ । ५।६।६ ॥

अर्थात्—वह जो ब्रह्मयज्ञ (वेद का स्वाध्याय) है, उस के चार वषट्कार हैं । जो वायु चलता है, जो बिजली चमकती है, जो गर्जता है, जो कड़कता है । इस लिये, जो यह जानता है (कि वायु का चलना आदि स्वाध्याय के वषट्कार हैं) वह वायु के चलने पर, बिजली चमकने पर, गर्जने पर, कड़कने पर, स्वाध्याय अवश्य करे, ताकि उसके वषट्कार नष्ट न हो जावें । वह बार बार की मौत से छूट जाता है, परमात्मा की समीपता को जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ।

स षण्मासानुदङेति षडावृत्तांस्तस्मात्सत्रिणः षडेवोर्ध्वान्मासो यन्ति षडावृत्तानन्तरेणो ह वा एतमशनाया च पुनर्मृत्युश्चापाशनायां च पुनर्मृत्युं च जयन्ति ये वैषुवमहरुपयन्ति । कौ० । २५ । १ ॥

वह (सूर्य) छः मास उत्तर को जाता है, और छः उलटा । इस लिये यज्ञ

करने वाले छः मास आगे जाते हैं, और छः उलटे। इसके विना भूख और मनर्मृत्यु है भूख और वार वार की मौत को जीतते हैं, जो विषुवन्त दिन की इष्टि करते हैं।

आ० बै० कीथ का कथन

इन प्रमाणों के सम्बन्ध में कीथ महाशय कहते हैं—"नचिकेता इस वर की प्रार्थना करता है, कि उस के पुण्यकर्म नष्ट न हो जावें। (तै० ब्रा० ३।११।८।५॥) क्योंकि कहा गया है, कि दिन और रात अगले लोक में उस पुरुष के पुण्यकर्मों को समाप्त कर देते हैं, जो इष्टिविशेषों को नहीं जानता (तै० ब्रा० ३।१०।११।२॥)। इसी लिये यह भय बन जाता है कि अगले लोक में इष्ट अमृतत्व के स्थान वार वार मृत्यु होगा। इस लिये अनेक कर्म इस से बचाने वाले कहे गये हैं।"[1]

कीथ महाशय का यह अभिप्राय है कि पूर्वोक्त प्रमाणों में जो वार वार की मौत का जीतना लिखा है, वह अगले लोक की वार वार की मृत्यु का ही जीतना है। इस लोक की पुनर्जन्म के पश्चात् वार वार की मौत का नहीं। इसमें कीथ ने शतपथ १२।९।३।१२॥ का प्रमाण भी दिया है—

पितॄनेव तन्मर्त्यान्त्सतोऽमृतयोनौ दधाति मर्त्यान्त्सतोऽमृतयोनेः प्रजनयत्यप ह वै पितॄणां पुनर्मृत्युं जयति॥......

कीथ का सम्भावित अर्थ—मरणधर्मा होते हुए पितरों को अमृतरूप गर्भ में रखता है, और उन मरणधर्मा को अमृतरूप गर्भ से उत्पन्न कराता है। पितरों की वार वार की मौत को जीत लेता है, जो ऐसा जानता है।

यदि स्थूल दृष्टि से देखा जावे, तो कीथ का पूर्वोक्त कथन कुछ ठीक प्रतीत होता है। परन्तु थोड़ा सा भी सूक्ष्म विचार करने पर कीथ की भारी भूल तत्काल सामने आ जाती है। कीथ का दिया हुआ प्रमाण श० १२।९।३॥ की १२वीं कण्डिका है। इससे पहले ११वीं कण्डिका भी कीथ को देखनी चाहिए थी। वह इस प्रकार है—

पशूनेव तन्मर्त्यान्त्सतोऽमृतयोनौ दधाति मर्त्यान्त्सतोऽमृतयोनेः प्रजनयत्यप ह वै पशूनां पुनर्मृत्युं जयति।

कीथ के ढंग का अर्थ—मरणधर्मा होते हुए पशुओं को अमृतरूपगर्भ में रखता है। और उन मरणधर्मा को अमृतरूप गर्भ से उत्पन्न कराता है। पशुओं की वार वार की मौत को जीत लेता है, जो ऐसा जानता है।

---

1 The philosophy of the Veda, pp 572-573.

अब हम कीथ महाशय से पूछते हैं कि यदि १२वीं कण्डिका से उसने यह अभिप्राय लिया था कि ब्राह्मणों में जहां २ पर पुनर्मृत्यु का जीतना वा उस से छूटना लिखा है, तो वह पितरों का अगले लोक में पुनर्मृत्यु से बचना है, तो इस ११वीं कण्डिका से उन्हें यही अभिप्राय लेना चाहिए था कि पुनर्मृत्यु सम्बन्धी प्रकरणों में पशुओं की पुनर्मृत्यु का वर्णन है। ऐसा उन्हों ने नहीं किया। इससे प्रतीत होता है कि या तो उन्होंने इन सारी कण्डिकाओं को देखा नहीं, और यदि देखा है, तो इस ११वीं कण्डिका को अपने पक्ष में आपत्तिजनक जान उसे जानते बूझते छोड़ दिया है।

हमारे विचार में इन दोनों कण्डिकाओं में **पशु** और **पितर** शब्द अपने साधारण अर्थों को नहीं देते। हां यदि कीथ ऐसा मानता है, तो उसे पशुओं का भी पुनर्जन्म मानना पड़ेगा। सम्भव है, यहां पशु का अर्थ प्राण और पितर का अर्थ ऋतु हो। पर यथार्थ अर्थ अभी हम निश्चित नहीं कर सके।

ब्राह्मणग्रन्थ क्यों पुनर्जन्म को न मानें, जब कि वेद स्वयं इस सिद्धान्त का पोषक है। इस ग्रन्थ में हम वेदों से पुनर्जन्म के अनेक प्रमाण नहीं देंगे। यह विषय प्रथम भाग में ही लिखा जायगा। यहां तो यजुर्वेद से केवल एक प्रसिद्ध मन्त्र देकर ही हम सन्तुष्ट रहेंगे।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ य०। ४०।३॥

मैत्रायणी संहिता में लिखा है—

असुर्यो वा एता यदोषधयः॥ १। ६। ३॥

इस प्रमाण से मन्त्र का यह अर्थ बनता है—अन्धकार और तमोगुण से आवृत ओषधि समूह में वह मर कर जन्म लेते हैं, जो आत्मघाती होते हैं।

इससे पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है, कि वेद में भी पुनर्जन्म को वैसे ही माना है, जैसा कि ब्राह्मणों और उपनिषदों में, और जैसा आज तक आर्य लोग मानते चले आ रहे हैं।

स मृत्युर्देवानब्रवीत्। इत्थमेव सर्वे मनुष्या अमृता भविष्यन्त्यथ को मह्यं भागो भविष्यतीति ते होचुर्नातो परः कश्चन सहशरीरेणामृतो ऽसद्यदैव त्वमेतं भागꣳ हरासा ऽअथ व्यावृत्य शरीरेणामृतो ऽसद्यो ऽमृतो ऽसद्विद्यया वा कर्मणा वेति यद्वै तदब्रुवन्विद्यया वा कर्मणा

वेत्येषा हैव सा विद्या यदग्निरेतदु हैव तत्कर्म यदग्निः॥ श० १०।४।३।९॥

(जब सृष्टि बन रही थी, तब परमाणुओं के यथार्थ योग से कारण अग्नि आदि दिव्य पदार्थ अमर हो गए। अर्थात् प्रलय काल तक ऐसे ही रहेंगे। यह जो अग्नि-चयन है, इस के द्वारा यज्ञकर्ता सृष्टि बनते समय के उस वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करता है, और अब भी सृष्टि स्थिर रहने के जो नियम हैं, उन्हें जानता है, और आकाश मण्डल में जो कोई त्रुटि वायु आदि में हो जाती है, उसे दूर करता है। उस के फल स्वरूप वह अमरत्व को प्राप्त करता है।) इस भाव को अलंकाररूप से ब्राह्मण कहता है—

अर्थात्—मृत्यु देवों को बोला। इसी प्रकार (अग्नि चयन करके) मनुष्य अमृत हो जाएंगे। (मृत्यु ने पूछा) और क्या मेरा भाग होगा। वे (देवगण) बोले, (अब क्योंकि सृष्टि बन गई है और हमारा अमर होना हमारे शरीर का धारण करना, अर्थात् परमाणुओं का यथार्थ योग ही था, परन्तु) अब से लेकर कोई शरीर सहित अमर न होगा। (अब सब शरीर कार्य—शरीर होंगे, इस लिये उन शरीरों का नाश अवश्य होगा) जब तू उस अपने भाग (शरीर) को हर लेगा, तब उस शरीर से पृथक् होकर अमर होगा। जो अमर होगा वह विद्या से वा कर्म से (अमर होगा) जो वे (देवगण) बोले कि विद्या से वा कर्म से, तो वह यही विद्या है जो अग्नि-(चयन) है, और वह यही (श्रेष्ठतम) कर्म है, जो अग्नि (चयन) है।

ते य ऽएवमेतद्विदुः। ये वैतत्कर्म कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति ते सम्भवन्त एवामृतत्वमभिसम्भवन्त्यथ य ऽएवं न विदुर्ये वैतत्कर्म न कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति त ऽएतस्यैवान्नं पुनः पुनर्भवन्ति॥

श० १०। ४। ३। १०॥

अर्थात्—वे जो इस को ऐसा जानते हैं, अथवा वे जो यह कर्म करते हैं, मर कर फिर उत्पन्न होते हैं। और वे उत्पन्न होते हुए ही जीवन मुक्तों के रूप में उत्पन्न होते हैं, (जहां से सीधे मुक्त हो जाते हैं।) और जो ऐसा नहीं जानते और जो यह काम नहीं करते, मर कर फिर साधारणरूप में ही उत्पन्न होते हैं। वे इसी (मृत्यु) का अन्न वार वार बनते है, अर्थात् पुनर्जन्म के चक्कर मे पड़े रहते हैं।

अमर आत्मा

पूर्वोक्त कण्डिकों में यह भाव स्पष्ट पाया जाता है कि शरीर से भिन्न कोई पदार्थ

है, जो शरीर छोड़कर अमरत्व को प्राप्त होता है। और वही पदार्थ दूसरी अवस्थाओं में वार वार जन्म मरण के बन्धन में फंसता है। यह पदार्थ जीवात्मा है। यह जीवात्मा अमर है।

कीथ ने इन कण्डिकाओं का भी दूसरा ही भाव जाना है।[1] वह भाव असंगत सा है। इस लिये इस पर विचार नहीं किया गया।

इतना तो सत्य है कि ब्राह्मणों में कई स्थानों पर यज्ञ के फल में अगले लोक में शुभ शरीर का मिलना लिखा है। जैसे—

स ह सर्वतनूरेव यजमानो ऽमुष्मिंल्लोके सम्भवति॥ श० ४।६।१।१॥

अर्थात्—निश्चय ही वह यजमान सम्पूर्ण शुभ शरीर सहित उस अगले लोक में उत्पन्न होता है।

परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं है, कि सब प्राणी मर कर उसी लोक को जाते हैं। अनेक प्राणी पुनः इसी लोक में भी उत्पन्न होते हैं, और उन में से कई एक के सम्बन्ध में पूर्वोक्त प्रमाण हैं।

अब हम ब्राह्मणों से आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म के विषय के पर्याप्त प्रमाण दे चुके हैं। ये प्रमाण अधिकांश में शतपथ से ही दिए गए हैं। शतपथ का प्रवक्ता याज्ञवल्क्य यद्यपि प्रवीण याज्ञिक और आधिदैविक तत्वों का परम पंडित था, पर इनसे भी कहीं अधिक वह आत्मतत्त्व का ज्ञाता था, वह ब्रह्मनिष्ठ था। आधिदैविक ज्ञान से वह ब्रह्मवाद का अधिक प्यारा था। इसी लिये वह संन्यासी बना, और इसी लिये उसके ब्राह्मण में उसके प्रिय विषयकी झलक जगह २ पाई जाती है।

प्रजापति=पुरुष=ब्रह्म

ब्राह्मणों में आत्मा के वर्णन का संक्षेप से उल्लेख कर दिया गया है, अब आत्मा के भी अन्तरात्मा, परमात्मा के विषय में ब्राह्मण क्या कहते हैं, यह लिखा जाता है। वैदिक धर्म आस्तिक धर्म है। वैदिक ऋषि परमात्मा के स्मरण किये विना कोई काम आरम्भ ही न करते थे। परमात्मा का निज नाम **ओम्** है। इस नाम की उन्हों ने इतनी महिमा गाई है, कि यज्ञों में जहां मौन रहना पड़ता है, वहां किसी प्रश्न के उत्तर में **ओम्** कह कर अपनी स्वीकारी जताने की प्रथा चलाई है। इसी ओम् से सब व्याहृतियां और उन से सब वेदों का प्रकट होना लिखा है। इस लिए इस तत्त्व का वर्णन करना भी अत्यावश्यक है।

1 The Philosophy of the Veda, p, 573.

ब्राह्मणों में साक्षात ब्रह्मवाद के कहने वाले अनेक मन्त्र भिन्न २ कर्मों में विनियुक्त किए गए हैं। अर्थ उन का चाहे और पदार्थों में भी घटे, पर ब्रह्मपरक तो है ही। श० ३। ६। ३। ११॥ में कहा है—

अग्ने नय सुपथा राये ऽस्मान्…… । यजु० ४०। १७॥

अर्थात्—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् हमें भले मार्ग से मुक्ति के ऐश्वर्य के लिए ले चल।

अतः इस मन्त्र के इस प्रकरण में आ जाने से यह निश्चित है कि ब्राह्मणों वाले ब्रह्मवाद के मन्त्रों का भी विनियोग अपने २ कर्मों में कर लेते थे। अब देखो, ब्राह्मण प्रजापति नाम से ब्रह्म का ही कथन करता है—

अष्टौ वसवः। एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इमे ऽएव द्यावापृथिवी त्रयस्त्रिꣳश्यौ त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवाः प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशस्तदेनं प्रजापतिं करोत्येतद्वा ऽअस्त्येतद्ध्यमृतं यद्ध्यमृतं तद्ध्यस्त्येतदु तद्य-न्मर्त्यꣳ स एष प्रजापतिः सर्वं वै प्रजापतिस्तदेनं प्रजापतिं करोति।

श० ४। ५। ७। २॥

अर्थात्—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, यह ही दोनों द्यौ और पृथिवी तेंतीसवें हैं। तेंतीस ही देव हैं। प्रजापति चौंतीसवां है। तो इस (यजमान) को प्रजापति का (जानने वाला) बनाता है। यही वह है जो अमृत है, और जो अमृत है, वही यह है। जो मरणधर्मा है, वह भी प्रजापति (का ही काम) है। सब कुछ प्रजापति है। तो इस (यजमान) को प्रजापति (का जानने वाला) बनाता है।

इसी भाव का विस्तार श० ११।६।३।५–१०॥ और श० १४।६।६।३–१०॥ में है। इन दोनों स्थलों में प्रजापति यज्ञ का वाची है। परन्तु इस अर्थ में यह ३३ देवों के अन्तर्गत है। ३४वां देव ब्रह्म=परमात्मा है। वही ३४वां देव पूर्वोक्त प्रमाण में प्रजापति है। तां० ब्रा० १७।११।३॥ में भी कहा है—

प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशो देवतानाम्।

अर्थात्—देवताओं का प्रजापति चौंतीसवां है।

तै० ब्रा० १।८।७।१॥ में भी कहा है—

त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवताः। प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशः।

अर्थात्—तेंतीस देवता हैं। प्रजापति चौंतीसवां है।

फिर एक स्थल में प्रजापति और पुरुष दोनों शब्द पर्यायरूप से आए हैं और ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के वाचक हैं—

सो ऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत । भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति सो ऽश्राम्यत्स तपो ऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव-विद्या१७ सैवास्मै प्रतिष्ठाभवत्तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति ।
श० ६ । १ । १ । ८ ॥

अर्थात्— वह जो यह (पूर्ण) पुरुष प्रजापति है, उस ने कामना की । मैं बहुत अर्थात् महिमा वाला हो जाऊं, प्रजा वाला होऊं । उस ने (जगत् के परमाणुओं को क्रिया देने का) श्रम किया, उस ने (ज्ञानरूप) तप तपा । उस के थकने पर (क्रिया का चक्कर चल पड़ने पर) और (ज्ञानरूप) तप होने पर ब्रह्म=वेद को उस ने सब से पहले उत्पन किया, इसी त्रयी विद्या को । वही उस की प्रतिष्ठा है (अर्थात् आधार है । व्याहृतियों और वेदमन्त्रों पर से सारा संसार फिर बना) । इसी लिए कहते हैं वेद इस सारे संसार का आधार है ।

इसी प्रकार फिर प्रजापति नाम से परमात्मा का वर्णन है—

प्रजापतिर्वा ऽइदमग्र ऽआसीत् । एक एव सो ऽकामयत ।श०६।१।३।१॥

अर्थात्—प्रजापति परमात्मा ही इस (विकृतिरूप संसार बनने से) पहले था । एक ही (वह था) । उस ने कामना की ।

श० ७।४।१।१६-२०॥ में इसी प्रजापति परमात्मा को मन्त्र की व्याख्या करते हुए **हिरण्यगर्भ** नाम से स्मरण किया है ।

फिर अन्यत्र भी शतपथ में कहा है—

प्रजापतिर्ह वा ऽदमग्र ऽएक एवास । स ऐक्षत । २।२।४।१॥

अर्थात्—प्रजापति परमात्मा ही इस (जगत् बनने से पहले एक ही था । उस ने (प्रकृति में) ईक्षण किया ।

न वै प्रजापतिं सवनैराप्तुमर्हत्येकधैवैनमाप्नोति नर्चमन्वाह न यजुर्वदति न वै प्रजापतिं वाचाप्तुमर्हति मनसैवैनमाप्नोति । का० सं०२९।६॥

अर्थात्—प्रजापति=परमात्मा को सवनों से प्राप्त नहीं कर सकता । एक ही प्रकार से इसे प्राप्त करता है । ऋचा को नहीं कहता, यजु भी नहीं बोलता । प्रजापति को वाणी से भी प्राप्त नहीं कर सकता । मन से ही उसे प्राप्त करता है । यह निस्सन्देह

परमात्मा का वर्णन ही है। क्योंकि उपनिषदों में भी ऐसा ही लिखा है—

मनसैवेदमाप्तव्यम्। कठ० उप० ४। ११॥

अर्थात्—मन से ही यह (ब्रह्म) प्राप्त करना चाहिये

मनसैवानुद्रष्टव्यम्। बृ० उप० ४। ११॥

अर्थात्—मन से ही (उस ब्रह्म को) देखना चाहिये।

प्रजापतिर्वा ऽअमृतः। श० ६। ३। १। १७॥

अर्थात्—परमात्मा अमृत, अजन्मा, अनादि अनन्त है।

इसी प्रजापति परमात्मा की रची हुई यह विविध प्रकार की सृष्टि है। इस में तीन प्रकार के लोक हैं। उन का वर्णन भी ब्राह्मणों में आता है।

तीन लोक

त्रयो वा ऽइमे लोकाः। श० १। २। ४। २०॥

अर्थात्—तीन ही ये लोक हैं।

त्रय इमे लोकाः। का० सं० ३१। ६॥

तस्मात्......त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः।

श० ११। ५। ८। १॥

अर्थात्—उस प्रजापति परमात्मा ने...तीन लोकों को उत्पन्न किया। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक।

इन्हीं तीन लोकों में प्रजापति की सब प्रकार की सृष्टि चल रही है। ये तीन लोक हमारी दृष्टि से ही कहे गये हैं। वैसे तो लोक तीन प्रकार के हैं और अनेक हैं। किसी प्राचीन ब्राह्मण का पाठ आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।४।७।१६॥ में दिया है—

एकरात्रं चेदतिथीन्वासयेत्पार्थिवाँल्लोकानभिजयति द्वितीययान्तरिक्ष्याँस्तृतीयया दिव्याँश्चतुर्थ्या परावतो लोकानपरिमिताभिरपरिमिताँल्लोकानभिजयतीति विज्ञायते।

अर्थात्—यदि एक रात अतिथियों को वास देता है, तो पार्थिव लोकों को जीतता है। दूसरी (रात वास देने से) अन्तरिक्ष में होने वाले लोकों को, तीसरी से दिव्य लोकों को, चौथी से उनसे भी परे जो लोक हैं, और अपरिमितों से अपरिमित लोकों को जीतता है, ऐसा ब्राह्मण से ज्ञात होता है।

नित्य जीवात्मा अपने अपने कर्म के अनुसार इन में से भिन्न २ लोकों में जन्म लेता है। मनुष्य शरीर सब से श्रेष्ठ शरीर माना गया है। उस मनुष्य को इस पृथिवी पर जिस प्रकार से परम सुख मिले, उस का विधान ब्राह्मणग्रन्थ करते हैं। आज भी पश्चिम में लौकिक विद्या ने बहुत उन्नति की है। परन्तु उस सारी उन्नति में सुख की मात्रा यद्यपि अधिक तो की गई है, पर जो कर्मजन्य दुःख आते हैं, उनसे निपटारे का कोई उपाय नहीं सोचा गया। पश्चिम वाले ऐसा कर भी नहीं सकते थे। अमर आत्मा में उन का विश्वास नहीं है। इस लिए प्रवाहरूप से कर्मों के सिद्धान्त को उन्हों ने नहीं जाना। ब्राह्मण का पहला उपदेश है कि मनुष्य सौ वर्ष तक जीवे, इस से अधिक भी जीवे और सुखी जीवे।

मानव आयु

शतायुर्वै पुरुषः। कौ० ब्रा० ११।७॥

अर्थात्—मनुष्य का आयु सौ वर्ष का है। और शतपथ १।९।३।१९॥ में तो कहा है—

अपि हि भूयाꣳसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।

अर्थात्—सौ वर्ष से भी बहुत अधिक पुरुष जीता है।

पूर्ण आयु भोगने के उपाय

पूरी आयु भोगने के जो उपाय ब्राह्मणों में कहे गये हैं, उन में से कतिपय आगे दिए जाते हैं।

मर्त्याः पितरः पुरा ह्यायुषो म्रियते यो ऽनुदिते मन्थत्यपहतपाप्मानो देवा अप पाप्मानꣳ हते ऽमृता देवा नामृतत्वस्याशास्ति सर्वमायुरेति॥[1] श० २।१।४।९॥

अर्थात्—रात्रियां=पितर मरणधर्मा हैं। (पूरी) आयु से पहले मर जाता है, जो सूर्योदय से पहले अग्निमन्थन करता है। दिनों=देवों ने अपने अन्दर से (सूर्य द्वारा) पाप का नाश कर दिया है, (जो सूर्योदय के पश्चात् अग्निमन्थन करता है) वह पाप का नाश करता है। दिन अमृत हैं। (सूर्योदय के पश्चात् अग्निमन्थन करने

---

१ **एतद्वै मनुष्यस्यामृतत्वꣳ यत्सर्वमायुरेति। मै० सं० १।२।३॥**
अर्थात्—यही मनुष्य का अमृतपन है, जो सारी आयु प्राप्त करता है।

वाले को यद्यपि) अमृत की आशा नहीं है, (पर वह) पूरी आयु को प्राप्त करता है ।

नैव देवा अतिक्रामन्ति । न पितरो न पशवो मनुष्या एवैके ऽतिक्रामन्ति तस्माद्यो मनुष्याणां मेद्यत्यशुभे मेद्यति । विहूर्छति हि न ह्यनाय चन भवत्यनृतꣳ हि कृत्वा मेद्यति । तस्मादु सायंप्रातराश्येव स्यात्स यो हैवं विद्वान्त्सायंप्रातराशी भवति सर्वꣳ हैवायुरेति ।

श० २ । ४ । २ । ६ ॥

अर्थात्—अग्नि, वायु, रश्मियां, दिन आदि देव (प्रजापति परमात्मा के बनाए नियमों का) अतिक्रमण नहीं करते, ऋतु, रात्री आदि पितर भी (ऐसा) नहीं (करते) न ही पशु । मनुष्य ही एक उल्लङ्घन करते हैं । इस लिए मनुष्यों में जो मांस बढ़ाता है (बहुत मोटा हो जाता है), लड़खड़ाता है, चलने योग्य नहीं रहता । अनृत कर के (अनेक वार खा कर) वह मोटा होता है । इस लिए सायं प्रातः (दो काल) खाने वाला ही होवे, इस प्रकार जो विद्वान् सायं प्रातः खाने वाला होता है, सारी ही (सौ वर्ष की) आयु प्राप्त करता है ।

इस का यह अभिप्राय है कि स्वस्थ पुरुष को सायं प्रातः दो काल ही खाना चाहिए । इतना मोटापन शरीर में बढ़ने नहीं देना चाहिए, जिस से चलना, दौड़ना आदि भी कठिन हो जाए ।

आयुषे कमग्निहोत्रं हूयते । सर्वमायुरेति य एवꣳ वेद ।

मै० सं० १ । ८ । ५ ॥

अर्थात्—आयु के लिए ही अग्निहोत्र की आहुतियां दी जाती हैं । सारी आयु प्राप्त करता है, जो ऐसा जानता है ।

यो ह वै देवानामायुष्मतश्चायुष्कृतश्च वेद सर्वमायुरेति । न पुरायुषः प्रमीयते । मै० सं० २।३।५॥

अर्थात्—निश्चय ही जो अग्नि, वायु आदि देवों को आयु वाला और आयु देने वाला जानता है, सारी आयु को प्राप्त होता है । पूरी आयु से पहले नहीं मरता । इससे आगे कहा है—

एते वै देवा आयुष्मन्तश्चायुष्कृतश्च यदिमे प्राणाः ।

अर्थात्—यही देवता आयुवाले और आयु देने वाले हैं, जो ये प्राण हैं। इसका अभिप्राय यही है कि पुरुष प्राणायाम आदि करके भी अपने आयु को बढ़ावे।

जरा वै देवहितमायुस्तावतीर्हि समा जीवति।..................
आयुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो ऽग्निमुत्सादयते। शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्य आयुर्वीर्यं हिरण्यं यद्धिरण्यं शतमानं ददात्यायुरेव वीर्यं पुनरालभते। का० सं० ९। २॥

अर्थात्—बुढ़ापा देवों का हितकारी आयु है, उतने ही वर्ष जीता है।...आयु से और वीर्य से वह नष्ट होता है, जो अग्नि को बुझाता है। सौ वर्षकी आयु वाला पुरुष है, और सौ प्रकार के बल वाला, आयु, बल हिरण्य (एक ही हैं।) जो सुवर्ण सौ मान वाला (सौ सुवर्ण मुद्रा) देता है, आयु और बल ही पुनः प्राप्त करता है।

पूर्णं गृह्णीयाद्यं कामयेत सर्वमायुरियादिति पूर्णमेवास्मा आयुर्गृह्णाति सर्वमायुरेति। का० सं० २८। १॥

अर्थात्—पूर्ण ग्रहण करे, जिस की इच्छा करे, सारी आयु प्राप्त करे, पूर्ण ही इस के लिए आयु ग्रहण करता है, सारी आयु प्राप्त करता है।

हिरण्यमभिव्यनित्यायुर्वै हिरण्यमायुषैवात्मनमभिधिनोति।
का० सं० २९। ६॥

अर्थात्—सुवर्ण पर श्वास फेंकता है। आयु ही सोना है। आयु से ही अपने आपको तृप्त करता है।

वैदिक ग्रन्थों में सुवर्ण और आयु का बड़ा सम्बन्ध माना गया है। सोने का दान, सोने का शरीर से स्पर्श यह बहुत कल्याणकारी माने गए है। अथर्ववेद१।३५।२॥ में भी लिखा है—

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः।

अर्थात्—जो सोना धारण करता है, वह प्राणियों में अपना आयु लम्बा करता है।

यं कामयेदामयाविनं जीवेदिति तं व्यादायाभिव्यन्यादमृतेनैवैनमभिव्यनिति जीवति सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते। का०सं० ३७।१०॥

अर्थात्—जिस रोगी को चाहे, कि यह जीता रहे, उसका मुख खोलकर उस पर

श्वास फेंके। अमृत से ही उस पर श्वास फेंकता है। वह (रोगी) जीता रहता है। सारी आयु प्राप्त करता है। नहीं आयु से पहले मरता।[1]

इन प्रमाणों से निश्चित होता है, कि ब्राह्मण ग्रन्थों के आचार्य मानव आयु का सौ वर्ष और उस से भी अधिक होना बड़ा आवश्यक समझते थे।[2]

सुखी गृहस्थ

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रधान अभिप्राय यह है, कि इन सौ वर्षों में मनुष्य अत्यन्त सुख से रहे। ब्राह्मणों में ब्रह्मचर्य काल का वर्णन है तो सही, पर बहुत थोड़ा।[3] उस काल का अधिक वर्णन करना ब्राह्मणों का प्रसङ्ग नहीं। ब्राह्मण आधिदैविक तत्त्वों को बताते हैं। इन आधिदैविक तत्त्वों का ही नमूना मात्र ब्राह्मणों में वर्णन किए गए यज्ञ हैं। ये यज्ञ गृहस्थ के ही धर्म हैं। इस लिए गृहस्थ का जैसा सुन्दर वर्णन ब्राह्मणों में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नहीं। ब्राह्मण कहते हैं कि वैदिक गृहस्थ को सौ वर्ष और उस से अधिक पूर्ण सुख से जीना चाहिए। इस सुख में यदि पूर्वजन्मों के कर्म बाधा डालें, तो उन्हें यज्ञरूपी अनेक प्रायश्चित्तों से हम दूर कर सकते हैं। इस प्रकार किसी याज्ञिक को रोगी नहीं होना चाहिए। याज्ञिक को ही नहीं, प्रत्युत एक याज्ञिक अपने यज्ञ के प्रभाव से सारे देश में से रोग दूर कर सकता है। ब्राह्मण कहते हैं—

ऋतुसन्धिषु हि व्याधिर्जायते। कौ० ५। १॥

---

१ तुलना करो, तै० सं० ६।६।१०।३७॥ श० ४।६।१।६॥

२ आयु सम्बन्धी शेष प्रमाणों के लिये देखो, तै० सं० ७।५।७।४२॥ काठक सं० १०।४॥ श० ५।२।१।२८॥ ६।७।४।२॥ मै० सं० ४।२।४॥४।६।६॥

३ आपस्तम्बधर्मसूत्र १।१।१।११॥ में ब्रह्मचारी के उपनयन सम्बन्ध का एक ब्राह्मण वाक्य मिलता है—

तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाविद्वानिति हि ब्राह्मणम्॥

श० ११।५।४।१८॥ में कहा है—

तदाहुः। न ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नीयात्।

और देखो आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।१।३।२६॥ में ब्राह्मणपाठ। तथा गो० पू० २।२॥ श० ११।३।३।७॥

ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते । गो० उ० १ । १६ ॥

अर्थात्—दो ऋतुओं के सन्धिकाल में ही व्याधि=रोग उत्पन्न होता है।

इस रोग की उत्पत्ति को यज्ञ में ओषधिविशेष के प्रयोग करने से एक याज्ञिक रोक सकता है। ब्राह्मण कहता है—

यदपामार्गहोमो भवति रक्षसामपहत्यै । तै० १।७।१।८॥

अर्थात्—यह जो अपामार्ग=पुठकण्डा से होम करना है, यह राक्षसों=रोग के कीटाणुओं को मारने के लिए है।

इन रोगों को फैलाने वाले राक्षसों के नाशक निम्नलिखित पदार्थ ब्राह्मणों में कहे गए हैं—

अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता । श० १ । २ । १ । ६ ॥

अर्थात्—यह अग्नि ही कीटाणुओं का मारने वाला है।

अग्नेर्वा ऽएतद्रेतो यद्धिरण्यं नाष्ट्राणाᳬ रक्षसामपहत्यै ।
श० १४ । १ । ३ । २९ ॥

अर्थात्—अग्नि का ही यह सार है, जो सुवर्ण है, (यह सुवर्ण) नाशक कीटाणुओं के हनन के लिए है।

सूर्यो हि नाष्ट्राणाᳬ रक्षसामपहन्ता । श० १।३।४।८॥

अर्थात्—सूर्य का तेज ही नाशक कीटाणुओं का मारने वाला है।

ते (देवाः) एतᳬ रक्षोहणं वनस्पतिमपश्यन् कार्ष्यमर्य्यम् ।
श० ७ । ४ । १ । ३७ ॥

अर्थात्—उन्होंने कार्ष्यमर्य्य नाम की वनस्पति को जो कीटाणुओं को मारने वाली है, देखा।

ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता । श० १।१।४।६॥

अर्थात्—वेदवक्ता विद्वान् ही कीटाणुओं का नाशक है।

साम हि नाष्ट्राणाᳬ रक्षसामपहन्ता । श० ४।४।५।६॥

अर्थात्—साममन्त्रों के पाठ से उत्पन्न हुआ २ स्वर नाशक कीटाणुओं के मारने वाला है।

आपो वै रक्षोघ्नीः । तै० ब्रा० ३ । २ । ३ । १२ ॥

अर्थात्—जल ही राक्षस नाशक है।।

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि अग्नि, सोना, सूर्य, अपामार्ग या पुठकण्डा, कार्ष्मर्य, वेदवेत्ता विद्वान्, साममन्त्रों की स्वरें और जल, ये सब रोग के कीटाणुओं के नाशक हैं। आज भी संसार में यही पदार्थ हैं, जिन से कीटाणुओं का नाश किया जाता है। ये कीटाणु रोगों को उत्पन्न करके मनुष्य का आयु कम करते हैं। इसी लिए मानव आयु को बढ़ाने के उपाय बताने के विचार से ब्राह्मणों ने पूर्वोक्त वर्णन किया है। प्राचीन आर्य जो कानों में शुभ सुवर्ण कुण्डल धारण करते थे, तो उस का अभिप्राय भी रोगों को दूर रख कर दीर्घ जीवन की प्राप्ति करना ही था। एक याज्ञिक इन सब उपायों से अपने और अपने देश के रोगों को दूर करता है। ब्राह्मण ग्रन्थ जब मनुष्य का आयु ही सौ वर्ष का बताते हैं, तो इस का अभिप्राय यह भी है, कि कोई मनुष्य सौ वर्ष से पहले न मरे, पिता के सामने पुत्र की कभी मृत्यु हो ही न। अहो, गृहस्थ का कैसा सुन्दर दृश्य है। जिस घर में पिता के जीते जी उस का कोई सन्तान न मरे, वह घर कितना सुखपूर्ण घर हो सकता है। इतना ही नहीं, ब्राह्मण यह भी कहता है, की प्रत्येक गृहस्थ के घर में पुत्र अवश्य उत्पन्न होना चाहिए।

नापुत्रस्य लोको ऽस्ति। ऐ० ब्रा० ७। १३॥

अर्थात्—पुत्रहीन का संसार में कल्याण नहीं।

इन्हीं पुत्रों के आश्रय पर वृद्धावस्था में पिता जीते हैं। शतपथ १२।२।३।४॥ में कहा है—

तस्मादुत्तरवयसे पुत्रान्पितोपजीवति।

अर्थात्—वृद्धावस्था में पुत्रों के आश्रय पर पिता जीता है।

जिस व्यक्ति के हां पुराने जन्मों के कर्म के फलानुसार पुत्र नहीं होता, उस के लिए पुत्रेष्टि का करना लिखा है। इस इष्टि द्वारा कार्यकर्ता प्रायश्चित्त करता है और पुराने जन्मों के कर्म के फल को इस प्रायश्चित्त से निवृत्त करता है।[1]

पुत्र आदि सन्तान जिस प्रकार से योग्य बन सकते हैं, उस का अत्यन्त सुन्दर, पर संक्षिप्त वर्णन ब्राह्मणों में पाया जाता है। श० १०।५।२।६॥ में एक विचित्र बात कही गई है। इस की परीक्षा होनी चाहिए।

---

१ प्रजाकामो देविकाभिर्यजेत। ...विन्दते पुत्रम्। का०सं० १२।८॥
अर्थात्—प्रजा की कामना वाला देविका से यज्ञ करे।... पुत्र को प्राप्त करता है।

तस्माज्जायाया अन्ते नाश्नीयाद्वीर्यवान्हास्माज्जायते वीर्यवन्तमु ह सा जनयति यस्या अन्ते नाश्नाति ।

अर्थात्—इस लिए अपनी स्त्री के समीप न खावे, बड़ा बलवान् पुत्र ही उस से उत्पन्न होता है। बलवान् को ही वह जन्म देती है, जिस के समीप पति भोजन नहीं करता।

स्त्री भी पुरुष के समीप भोजन न करे, ऐसा भाव भी अन्यत्र मिलता है—

तस्मादिमा मानुष्य स्त्रियस्तिर इवैव पुꣳसो जिघत्सन्ति ।
श० १ । ९ । २ । १२ ॥

अर्थात्—इस लिए मनुष्यों की स्त्रियां, पुरुषों से परे ही खाती हैं। हमारे इस देश में यह बात अभी अभी तक चली आ रही थी। इस आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क से ही इस का लोप होना आरम्भ हो रहा है।

संस्कार, जिन का गृह्यसूत्रों में बड़ा विस्तार है, वेदमन्त्रों के आधार पर पहले ब्राह्मणों में ही कहे गए हैं। श० ६।१।३।९॥ में कहा है—

तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात् ।

अर्थात्—इस लिए जन्मे हुए पुत्र का नाम रखे।

गृहस्थ में स्त्री का स्थान

हम कह चुके हैं, कि आधिदैविक तत्त्वों का वर्णन करते हुए ब्राह्मणग्रन्थ यज्ञों का ही अधिकांश में कथन करते हैं। यज्ञों का करना गृहस्थों का ही काम है। गृहस्थाश्रम स्त्री पुरुष दोनों के मेल से चलता है। इस लिए सुखी गृहस्थ के लिए कैसी देवियां होनी चाहिएं, स्त्रियों का क्या अधिकार है, इत्यादि विषयों पर जो कुछ ब्राह्मणों में मिलता है, उस का अब वर्णन किया जाता है।

एवमिव हि योषां प्रशꣳसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तराꣳसा मध्ये संग्राह्येति । श० १ । २ । ५ । १६ ॥

अर्थात्—इसी सूरत वाली स्त्री की प्रशंसा करते हैं। स्थूलाग्र जघना, कन्धों के बीच में छाती का ऊपर का भाग श्रोणी की अपेक्षा कुछ तंग और मध्य में (कमर में) सिकुड़ी हुई।

पश्चाद्वरीयसी पृथुश्रोणिरिति वै योषां प्रशᳩसन्ति।
श० ३।५।१।११॥

अर्थात्—पीछे से चौड़े जघन वाली, मोटी श्रोणी वाली स्त्री की प्रशंसा करते हैं।

तस्माद्रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका। श० १३।१।९।६॥

अर्थात्—इस लिए रूपवती युवति (मनुष्यों को) प्यारी होने वाली होती है।

एतदु वै योषायै समृद्धᳩ रूपं यत् सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।
श० ६।५।१।१०॥

अर्थात्—यही स्त्री का समृद्धरूप है, जो यह सुन्दर लम्बे केशों के जूड़े वाली, सुन्दर माथे वाली, और सुजघना है।

इन गुणों वाली स्त्री से पुरुष विवाह करे। क्योंकि—

अयज्ञो वा एषः। यो ऽपत्नीकः। तै० ब्रा० २।२।२।६॥

अर्थात्—वह यज्ञ का अधिकारी नहीं है, जो पत्नीहीन है।

अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः। यत्पत्नी। तै० ब्रा० ३।३।३।५॥

अर्थात्—यह शरीर का आधा भाग है, जो पत्नी है।

साधारण भाषा में भी स्त्री को अर्धाङ्गी कहते हैं। प्राचीन काल से ही यह भाव आर्यजाति के हृदय में बना चला आता है। आर्य स्त्रियों का ब्राह्मण काल में बड़ा सम्मान था क्योंकि कहा है—

श्रिया वा एतद्रूपं यत्पत्न्यः। तै० ब्रा० २।६।४।७॥

अर्थात्—श्री का ही ये पत्नियां रूप हैं।

ब्राह्मणों में जहां स्त्री को कुछ नीची दृष्टि से देखा गया है, वहां गृहस्थ की दृष्टि से नहीं, प्रत्युत ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का नियम पालन करने के लिए यज्ञविशेषों में ही ऐसा किया गया है। प्रवर्ग्य के वर्णन में शतपथ १४।१।१।३१॥ कहता है—

अनृतᳩ स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत।

अर्थात्—स्त्री, शूद्र, कुत्ता और कालापच्छी (कौआ) अनृत=झूठ हैं, इन्हें न देखे। मैत्रायणी संहिता ३।६।३॥ में इसी भाव से कहा है—

त्रया व नैर्ऋता अक्षाः स्त्रियः स्वप्नः।

अर्थात्—तीन निर्ऋति सम्बन्धी हैं, पासे स्त्रियां और स्वप्न।

स्त्रियों की प्रकृति के विषय में ब्राह्मण में एक ऐसी बात कही गई है, जो अभी तक सब संसार में सत्य सिद्ध हो रही है।

तस्मादप्येतर्हि मोघसꣳहिता एव योषा । तस्माद्य एव नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवैता निमिश्लतमा इव । श० ३।२।४।६॥

अर्थात्—इस लिए आज तक भी स्त्रियां निरर्थक बातों की ओर जाती हैं।...। अतः जो नाचता है, जो गाता है, उसी को यह तत्काल चाहने वाली बनती हैं।

तस्माद्गायन्स्त्रियाः प्रियः। मै० सं० ३।७।३॥

अर्थात्—(गाथा को देवों ने गाया और वेद का गन्धर्वों ने उच्चारण किया। वाणी गन्धर्वों को छोड़ देवों के समीप चली गई। इसी लिये विवाह में गाथा गाते हैं) इस लिये गाता हुआ स्त्री का प्रिय होता है।

यह बात सारे संसार में ही पाई जाती है। साधारण स्त्रियां गाने बजाने में ही अपना समय व्यतीत करती हैं और गाने वालों को प्यार करती हैं।

साधारण स्त्रियों के काम करने के विषय में भी प्राचीन काल का एक दृश्य ब्राह्मण उपस्थित करता है—

तद्वा ऽएतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम् । श० १२।७।२।११॥

अर्थात्—यही स्त्रियों का कर्म है, जो ऊन और सूत (का कातना आदि)।

क्या पश्चिम और क्या पूर्व में अब भी स्त्रियां ऊन और सूत का ही काम करती हैं। यदि भारत में स्त्रियां चरखा कातती हैं, तो योरुप और अमरीका में वे गुलुबन्द, जुराब, टाई आदि ही बुनती रहती हैं। यदि कोई स्त्री उच्च विदुषी बनती है, तो वह लाखों, करोड़ों में विरली ही होती है।

कन्या के जन्मने पर प्राचीन लोग प्रसन्न नहीं होते थे। मैत्रायणी संहिता ४।६।४॥ में कहा है—

तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमाꣳसम् ।

अर्थात्—इस लिए उत्पन्न हुई २ कन्या को फेंकते हैं, (तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं) पुरुष को नहीं।

जैसा हर काल में देखा जाता है, अनेक स्त्रियां पतिव्रत धर्म का पालन नहीं करतीं, इस लिये वे कुलटा बन जाती हैं। ब्राह्मण में वैदिक भाव को दर्शाते हुए स्त्री के पतिव्रत धर्म पर बल दिया गया है। स्त्री जिस मनुष्य की एक वार हो जावे, बस उस की बन के रहे। शतपथ २।५।२।२०॥ में कहा है—

स पत्नीमुदानेष्यन्पृच्छति केन चरसीति वरुण्यं वा ऽएतत्स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरत्यथो नेन्मे ऽन्तः शल्पा जुहवदिति तस्मात्पृच्छति निरुक्तं वा ऽएनः कनीयो भवति सत्यꣳ हि भवति तस्माद्धेव पृच्छति सा यन्न प्रतिजानीत ज्ञातिभ्यो हास्यै तदहितꣳ स्यात्।

अर्थात्—(वह प्रतिप्रस्थाता यजमान की) पत्नी को परे ले जाने के समय पूछता है, किस के साथ तू संगति करती है। वरुण सम्बन्धी (पाप)[१] वह स्त्री करती है, जो दूसरे की होती हुई, दूसरे के साथ संगति करती है। वह अपने मन में गुप्त पीड़ा रखती हुई हवि न दे, इस लिए पूछता है। **स्वीकार किया हुआ पाप थोड़ा रह जाता है**। वह सत्य ही हो जाता है। यही कारण है कि वह पूछता है। वह स्त्री जो कुछ स्वीकार नहीं करती, वह उस के सम्बन्धियों के लिए अहितकर होगा (जिन को वह चाहती है, वे दुःखी होंगे।)

पति यदि गुणहीन भी हो, तो भी स्त्री का धर्म उस की सेवा करना ही है। इस विषय में सुकन्या के आख्यानरूप में ब्राह्मण का वचन देखने योग्य है—

सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मां पिता ऽदान्नैवाहं तं जीवन्तꣳ हास्यमीति। श० ४। १। ५। ६॥

अर्थात्—वह (सुकन्या अश्विद्वय को) बोली, जिस मनुष्य के लिए मेरे पिता ने मुझे दे दिया, उस के जीते जी मैं उसे नहीं छोड़ूंगी।

आचार्य विश्वरूप अपनी बालक्रीडा टीका १।६६॥ में इसी वचन का अभिप्राय लिखते हुए कहता है—

---

१ **वरुण्य** बात पाप होती है। श० १२।७।२।१७॥ में कहा है—

वरुणो वा एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति॥

अर्थात्—वरुण उसे ग्रहण करता है, जो पाप से गृहीत होता है।

एवं च सत्याम्नाया अपि क्षत्रियविषया एव नैवाहं तं जीवन्तꣳ हास्यामि, इत्यादि ।

अर्थात्—यह वाक्य क्षत्रियों के नियोग विषय का माना जा सकता है । जीने में समर्थ पुरुष को स्त्री न त्यागे यह ब्राह्मण का अर्थ है । फिर शतपथ कहता है—

पतयो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा । श० १।६।२।१४॥

अर्थात्—पति ही स्त्री के लिए प्रतिष्ठा है ।

गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा । श० ३ । ३ । १ । १० ॥

अर्थात्—घर में ठहरना ही पत्नी की प्रतिष्ठा है ।

प्राचीन काल में गार्गी आदि ब्रह्मवादिनिआं तो सभाओं में जाती थीं, पर साधारण स्त्रियां सभा में नहीं जाती थीं ।

तस्मात्पुमाꣳसः सभाꣳ यन्ति न स्त्रियः । मै० सं०४।७।४॥

अर्थात्—इस लिये पुरुष सभाओं में जाते हैं, स्त्रियां नहीं ।

वासिष्ठ धर्मसूत्र १२।२४॥ में काठक ब्राह्मण का निम्नलिखित पाठ उद्धृत है—

अपि नः श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयीरन्निति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वर इति ।

अर्थात्—(जो नराधम है, और किसी समय भी संयमी नहीं रह सकता, उस का कथन कर के स्त्रियां इन्द्र से बोलीं) हम में से वे भी जो कल ही बच्चा जनने वाली हैं, पतियों के साथ सोवें । यह वर स्त्रियों को इन्द्र ने दे दिया ।[1]

स्त्रीहत्या एक निन्द्य कर्म है । इस के विषय में ब्राह्मण कहता है—

न वै स्त्रियं घ्नन्ति । श० ११ । ४ । ३ । २ ॥

अर्थात्—(प्रजापति देवताओं से बोला) स्त्री की हत्या नहीं करते ।

न वै योषा कंचन हिनस्ति । श० ६।३।१।२६॥

अर्थात्—स्त्री किसी को नहीं मारती ।

विवाह

यद्यपि कन्या का बेचना बड़ा जघन्य कर्म है, पर कहीं २ यह प्रथा प्रचलित ही होगी, इस लिए ब्राह्मण कहता है—

तस्माद्दुहितृमते ऽधिरथं शतं देयम्, इतीह क्रयो विज्ञायते ।[2]

---

१ वासिष्ठ धर्मसूत्र १।३६॥ में किसी संहिता वा ब्राह्मण से उद्धृत पाठ । तुलना करो, आप० धर्मसूत्र २।६।१३।११॥

२ तुलना करो बाल क्रीड़ा १।८०॥

अर्थात्—इस लिए कन्या वाले के लिए सौ (मुद्रा) और रथ देना चाहिए।

मैत्रायणी संहिता १।१०।११॥ में भी ऐसा ही भाव है—

अनृतꣳ वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरति।

अर्थात्—झूठी बात ही वह करती है, जो पति से खरीदी हुई दूसरों के साथ संगति करती है।

रजस्वला स्त्री के सम्बन्ध में, धर्मशास्त्रों में जो अनेक नियम बनाए गए हैं, उन का मूल वासिष्ठ धर्मसूत्र ५।८॥ में किसी ब्राह्मण से दिया गया है—

विज्ञायते हि—तस्माद्रजस्वलाया अन्नं नाश्नीयात्।

अर्थात्—ब्राह्मण में कहा है-इस लिए रजस्वला का (पकाया वा छुआ) अन्न न खावे।

भ्रातृहीना कन्या से विवाह अच्छा नहीं समझा जाता था। इस विषय में निरुक्त ३।५॥ का एक प्रमाण है। वह प्रमाण भाल्लवियों के ब्राह्मण वा संहिता से लिया गया है, ऐसा बालक्रीडा में विश्वरूप ने लिखा है—

नाभ्रातीमुपयच्छेत् तत्तोकं ह्यस्य भवति, इति भाल्लविनां श्रुतेः।

बालक्रीड़ा १।५३॥

अर्थात्—भ्रातृहीना कन्या से विवाह न करे, उस कन्या का बालक कन्या के पिता की कुल में चला जाता है।

इसी विषय में वासिष्ठ धर्मसूत्र १७।१६॥ में एक और ब्राह्मण से पाठ लिया गया है—

विज्ञायते—अभ्रातृका पुंसः पितॄनभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम्।

अर्थात्—ब्राह्मण से जाना जाता है- भ्रातृहीना कन्या (अपनी कुल के) पितरों को लौटती है, लौटती हुई वह उन का पुत्र बनती है।

गृहस्थ में रहते हुए मनुष्य से अनेक पाप हो सकते हैं। पिछले जन्मों के पाप कर्मों और इस जन्म के पापों का फल दुःख है। पाप क्या है। ईश्वरीय सृष्टि में जो ऋतरूप के स्थायी नियम चल रहे हैं, उन को उलट पुलट करने का यत्न करना और आत्मोन्नति में बाधा डालना पाप है। ईश्वरीय सृष्टि में मुख्यरूप से तेंतीस देवता काम कर रहे हैं। वे अग्नि, वायु, जल, सूर्य आदि हैं। जो अग्नि को अपने

आराम के लिए तो वर्त लेता है, परन्तु उस के स्वच्छ रखने का यत्न नहीं करता, जो वायु को दुर्गन्धयुक्त करता है, जो जल को अपवित्र करता है, जो सूर्य की रश्मियों को बिगाड़ता है, वह पाप कर रहा है। जो पुरुष अनियम पूर्वक चलने से अपने शरीर के अन्दर भी इन देवताओं को गन्दा करता है, वह पाप करता है। जो पुरुष ज्ञान में उन्नति नहीं करता, अनृतवादी है, वह भी पाप कर रहा है। और भी अनेक पाप हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में उन का उल्लेख पाया जाता है। उन सब के करने से पुरुष को दुःख होता है, वेदना होती है। उस के जीवन का सुख हट जाता है। इस लिए ब्राह्मणग्रन्थों में इन सब पापों से बचने का उपदेश है। और यदि इन में से कोई भूलें हो भी गई हैं, तो भी ब्राह्मण कहता है कि ईश्वरीय सृष्टि में जिन २ नियमों के तोड़ने से तुम्हें फलरूप में दुःख मिलना है, उन्हें यदि स्वयं ठीक कर दो, तो तुम्हें दुःख नहीं होंगे। उन दुःखों को दूर करने का एक मात्र उपाय यज्ञ है। इस यज्ञ से सारी सृष्टि पर हमारा राज्य हो जाता है। हम अपनी भूलों को दूर करने का उपाय भी यज्ञ से ही करते हैं। इस लिए अब पहले उन भूलों अथवा पापों का कुछ वर्णन करके फिर यज्ञों का वर्णन किया जाएगा। वैसे तो जो पाप पुण्य प्राचीन धर्मसूत्रों और मानव धर्मशास्त्र में कहे हैं, वे सब ही ब्राह्मणों में मिलते होंगे, परन्तु इस समय सब ब्राह्मण नहीं मिलते। इस समय तो क्या, सम्प्राप्त धर्मसूत्रों के सङ्कलन काल में भी अनेक ब्राह्मणग्रन्थ नष्ट हो गए थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र १।४।१२।१०॥ में कहा है—

ब्राह्मणोक्ता विधयस्तेषामुत्सन्नाः पाठा प्रयोगादनुमीयन्ते ।[1]

अर्थात्—(धर्मशास्त्रोक्त) विधियां ब्राह्मणों में कही गई हैं। पर उन पाठों (प्रमाणों) वाले ब्राह्मण नष्ट हो गए हैं। इसलिये अब तो धर्मशास्त्रों के प्रयोगों से ही उन पाठों का अस्तित्व अनुमान किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में सब पाप पुण्यों

---

१ तुलना करो—

शाखानां विप्रकीर्णत्वात् पुरुषाणां प्रमादतः ।

नाना प्रकरणस्थत्वात् स्मृतिमूलं न गृह्यते ॥ बालक्रीडा, उपोद्घात ।

यही पाठ तन्त्रवार्तिक चौखम्बा सं० पृ० ७६ पर मिलता है।

का वर्णन तो इन ब्राह्मणों में मिल ही नहीं सकता। हम पहले पृ० ६२ पर किसी ब्राह्मण के प्रमाण से यह लिख चुके हैं, कि ब्राह्मणों और धर्मशास्त्रों के समान-प्रवक्ता थे। इसलिये यह कोई आवश्यक नहीं कि पाप और पुण्य का विस्तृत विचार ब्राह्मणों में मिले। ब्राह्मण तो इस विषय को भी प्रसङ्गतः ही कहते हैं। इसलिये पाप पुण्यों का जो कुछ थोड़ा सा वर्णन हमें मिला है, वही नीचे दिया जाता है।

सत्य

हम कई स्थानों पर पहले लिख चुके हैं, कि ब्राह्मणों का प्रधान विषय आधिदेविक तत्त्वों का खोलना ही है। उन तत्त्वों को खोलते हुऐ ब्राह्मणग्रन्थ यज्ञों का प्रतिपादन करते हैं। उस प्रतिपादन को करते हुए ब्राह्मण यज्ञ को ही सब कुछ समझते हैं। उस यज्ञ में किसी प्रकार की त्रुटि आना सारे परिश्रम का निष्फल होना समझा जाता है। इस लिये जो भी पाप हैं, उनका यज्ञ में विशेषरूप से निषेध किया गया है। कई बातें पाप तो नहीं हैं, पर यज्ञों मे उनका धारण करना भी पुण्य माना गया है। इसलिये इन्हीं दो प्रकार के भावों से पापों और शुभकर्मों का अगला वर्णन पढ़ना चाहिये। सत्य का बोलना, सत्य का मानना, सत्यस्वरूप और सत्यसङ्कल्प बनने का यत्न करना, ये सब बातें वैदिकधर्म का प्रधान अङ्ग हैं। वेदमन्त्रों में सत्य का बड़ा उज्ज्वलरूप वर्णन किया गया है। वह इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में ही लिखा जायगा। ब्राह्मण सत्य के विषय में क्या कहते हैं, यह अब लिखा जाता है।

शतपथ ३। १। ३। १८॥ में कहा है—

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति।

अर्थात्—अपवित्र वह पुरुष है, जो झूठ बोलता है।

पुनः ताण्ड्य ब्राह्मण ८। ६। १३॥ में कहा है—

एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्।

अर्थात्—यह वाणी का छिद्र है, जो असत्य (बोलना) है। जिस प्रकार छिद्र में से सब कुछ गिर जाता है, उसी प्रकार अनृतवादी की वाणी में से सब कुछ गिर जाता है। उसके शब्दों में कोई प्रभाव नहीं रहता।

अथ यो अनृतं वदति यथाग्निꣳ समिद्धं तमुदकेनाभिषिञ्चेदेवꣳ हैनꣳ स जासयति तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति श्वः श्वः पापीयान् भवति तस्माद् सत्यमेव वदेत्। श० २। २।२।१९॥

अर्थात्—और जो झूठ बोलता है, वह ऐसा ही करता है, जैसे उस जलती हुई अग्नि को जल से सिञ्चन करे। इसी प्रकार वह उस (अग्नि) को निर्बल करता है। उस (अनृतवादी) का अपना तेज भी थोड़ा थोड़ा होता जाता है। वह प्रतिदिन पापी होता जाता है इस लिये मनुष्य सत्य ही बोले।

तै० सं० २। ५। ५। ३२ में कहा है—

नानृतं वदेन्न मांꣳसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयात्।

अर्थात्—यज्ञविशेष में अनृत न बोले, मांस न खावे, स्त्री के समीप न जावे।

अनृत बोलना तो सदा ही पाप है, ऐसा पहले प्रमाणों से निश्चित हो चुका है। और विवाहित होने पर भी संयमी रहे, ऐसा अगली बात का अभिप्राय है।

नैतेन पशुनेष्ट्वोपरि शयीत न मांꣳसमश्नीयान्न मिथुनमुपेयात्।
श० ६।२।२।३६॥

अर्थात्—इस पशु की इष्टि देकर ऊपर (चारपाई पर) न सोवे, मांस न खावे, ब्रह्मचर्य धारण करे।

मन्त्रों में कहीं २ **ऋत** और **सत्य** में भेद दर्शाया गया है। ब्राह्मणों में भी यही अर्थभेद कहीं २ पाया जाता है। पर जहां अनृतकथन का निषेध है, वहां अनृत और असत्य पर्यायवाची ही हैं।

शतपथ ६। ७। ३। ११॥ में यजु १२। १४॥ का अर्थ करते हुए कहा है—

ऋतमिति सत्यम्।

अर्थात्—ऋत का अर्थ सत्य है। सत्य क्या है। जैसा देखा सुना हो, वैसा कहना सत्य है। इसके विपरीत कहना अनृत है। ऐ० ब्रा० २। ४०॥ में यह भाव भले प्रकार स्पष्ट किया गया है—

चक्षुर्वा ऋतं तस्माद्यतरो विवदमानयोराहाहमनुष्ठ्या चक्षुषादर्शमिति तस्य श्रद्दधाति।

अर्थात्—आंख सत्य का (सहारा है) इस लिये जब दो विवाद करते हैं, तो उनमें से जो कहता है, मैंने वस्तुतः यह अपनी आंख से देखा है उसके वचन में लोग श्रद्धा करते हैं।

ऋतेनैवैनꣳ स्वर्गं लोकं गमयन्ति। तां० १८। २। ९॥

अर्थात्—सत्य के मार्ग से ही इसे स्वर्गलोक में पहुंचाते हैं।

तद्यत्तत् सत्यं। त्रयी सा विद्या। श० ९। ५। १। १८॥

अर्थात्—तो जो सत्य है यही वेदरूपी त्रयीविद्या है। अतः वेद का स्वाध्याय करना सत्य मार्ग पर चलना है।

एवꣳ ह वाऽअस्य जितमनपजय्यमेवं यशो भवति य एवं विद्वान्त्सत्यं वदति। श० ३। ४। २।८॥

अर्थात्—इस प्रकार उसका विजय है उसका यश जीता नहीं जा सकता जो इस प्रकार से जानता हुआ सत्य बोलता है। झूठ को बता कर हमने सत्य का स्वरूप इसलिये लिखा है कि जो कुछ सत्य नहीं वह भी झूठ है, पाप है।

जाबाल ब्राह्मण की श्रुति है—

अन्य पाप

स यदा राजानमुन्नेतोन्नयति, अथैनस्विन उपतिष्ठन्ते ऽत उपब्रुवते इत्थं ब्राह्मणमवधिषमित्थं गुरोर्जायामभ्यगामिति। निरुक्तमेनो यथा यथा तान् ऋत्विजो राजा च ब्रूयुरश्वमेधावभृथपूता भवथेति। ते ऽपोऽभ्यवयन्ति। यथाहिस्त्वचो निर्मुच्यते, एवं सर्वस्मात् पाप्मनो निर्मुच्यन्ते। तान् न जुगुप्सेयुः। स यावन्तमश्वमेधेनेष्ट्वा लोकं जयति। त्रिस्तावन्तं जयति। यस्यैवं विदुषः एवमेनस्विनो ऽवभृथमभ्यवयन्तीति

जाबालि श्रुतिः बालक्रीडा ३। २३७॥ पर उद्धृत।

अर्थात्—वह ले जाने वाला जब राजा को ले जाता है तब पापी समीप ठहरते हैं, और बोलते हैं। इस प्रकार मैंने ब्राह्मण को मारा, इस प्रकार गुरु की पत्नी के पास गया। स्पष्ट होता है पाप, जैसे २ उनको ऋत्विग् लोग और राजा बोलें कि अश्वमेध के अन्त के स्नान से पवित्र हो जाओ। वे जल को अपने ऊपर छिड़कते हैं। जिस प्रकार सांप केंचली से मुक्त हो जाता है, इसी प्रकार सब पापों से मुक्त होते हैं।

---

१ **ब्राह्मणो न हन्तव्यः।**

अर्थात्—ब्राह्मण की हत्या मत करो। यह किसी ब्राह्मण का वचन है, ऐसा अनेक पुराने ग्रन्थों में कहा गया है। देखो बालक्रीडा ३। २२२॥

उनकी निन्दा न करें। वह जितने लोक को अश्वमेध से जीतता है उससे तिगुने लोक को वह जीतता है, जिसके अवभृथ को पापी लोग ऐसे छिड़कते हैं।

इस का अभिप्राय यह नहीं है, कि प्राचीन काल में आर्यावर्त में सब लोग बड़े पापी होते थे, वे ब्राह्मणवध और गुरुभार्यागमन करते थे। प्रत्युत इसका यही तात्पर्य है कि हर एक मनुष्य को, यदि वह भूल से कभी पाप कर चुका है, तो समय पड़ने पर बड़े से बड़े पाप का स्वीकार करना चाहिए। स्वीकार किया हुआ पाप थोड़ा रह जाता है, यह पूर्व पृ० १८६ पर शतपथ के प्रमाण से लिखा गया है। इस प्रमाण के यहां देने का यही मुख्य प्रयोजन है कि ब्राह्मणों में ब्राह्मणवध और गुरुभार्यागमन बड़े पाप माने गए हैं।

चरकों के अग्निषोमीय ब्राह्मण में कहा है—

तस्माद्ब्राह्मणः सुरां न पिबेत्। पाप्मनात्मानं नेत्सꣳसृजा इति।
मै० सं० २।४।२॥

तस्माद्ब्राह्मणस्सुरां न पिबति पाप्मना नेत्संसृजा इति।
का०.सं० १२। १२॥

तस्माज्ज्यायांश्च कनीयांश्च स्नुषा च श्वशुरश्च सुरां पीत्वा सह लालपत आसते। का० सं० १२। १२॥

अर्थात्—इसलिए ब्राह्मण सुरा न पीवे। पाप से अपने आप को मत उत्पन्न करे।[1]

इस लिए बड़ा और छोटा, स्नुषा और श्वसुर सुरा पीकर एक दूसरे से झगड़ने लग पड़ते हैं।

ब्राह्मण का मुख्य काम ज्ञान विज्ञान का पढ़ना पढ़ाना है। उस में सुरा बाधा डालती है, इस लिए ब्राह्मण के लिए ही प्रधानरूप से सुरा का निषेध किया गया है।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिः—

तद्वै मा तात तपति पापं कर्म मया कृतम्॥ ए० ब्रा० ७।१७॥

अर्थात्—वह आजीगर्त सौयवसि बोला—

प्यारे पुत्र! मुझे तपाता है, मेरा किया पापकर्म। इससे प्रकट होता है, कि

---

१ तुलना करो बालक्रीडा ३। २२२॥

घोर आपत्ति के समय में भी सन्तान को बेचना नहीं चाहिए। आजीगर्त ऐसा घृणित कर्म करके अब पछता रहा है।

बाल क्रीड़ा ३। २३७॥ पर ब्राह्मण प्रमाण से भ्रूणहत्या को पाप लिखा है—

काठके ऽप्यश्वमेधवदग्निष्टोमस्यापि "भ्रूणहत्याया वा एषोऽति मुच्यते योऽग्निष्टोमसंस्थं यजते।[1]

अर्थात्—काठक में अश्वमेध के समान अग्निष्टोम सम्बन्धी एक फलश्रुति है—भ्रूणहत्या (के पाप) से वह छूट जाता है, जो अग्निष्टोम संस्था का यज्ञ करता है।

शतपथ १। ४। ५। १३॥ में कहा है—

आत्रेय्या योषितैनस्वी।[2]

अर्थात्—रजस्वला स्त्री के (संग) से पुरुष पापी होता है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र १। १। १। ११॥ मे किसी ब्राह्मण का वचन उद्धृत है—

तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते यश्चाविद्वान्, इति हि ब्राह्मणम्।

अर्थात्—अन्धकार से वह अन्धकार में प्रवेश करता है, जिसे मूर्ख उपनयन देता है (जिस का गुरु अविद्वान् है) और जो स्वयं मूर्ख है।

इस ब्राह्मण वाक्य में अज्ञानी की घोर निन्दा मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि आर्यजाति मे विद्वान् बनना एक पुण्य कर्म समझा जाता था।

हम कह चुके हैं, कि ईश्वरीय सृष्टि के नियमों का तोड़ना पाप है। कई रोग

---

१ तुलना करो बालक्रीडा ३। २४४॥—

तथा चाम्नायः—सर्वां ब्रह्महत्यामपहन्ति यो अश्वमेधेन यजते। अग्निष्टुताभिशस्यमानं याजयेत् भ्रूणहत्याया वा एषो ऽतिमुच्यते यो ऽभिजिता यजेत, इति।

२ तुलना करो बालक्रीडा ३। २४५॥—

रजस्वला के अन्य नियमों के लिये देखो बोधायण गृह्य सूत्र १। ७। ३६॥में किसी ब्राह्मण का प्रमाण—

तस्यै खर्वस्तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेद्खर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय इति ब्राह्मणम्॥

पुराने जन्मों के कर्मफल के रूप में आते हैं, और कई इसी जन्म में स्वास्थ्य नियमों के तोड़ने से। अतः रोगी होना पाप है। इस लिए काठक संहिता १३।६॥ में कहा है—

पाप्मनैष गृहीतो य आमयावी।

अर्थात्—पाप से वह ग्रहण किया हुआ है, जो रोगी है।

तस्माद्दीक्षितस्य नान्नमद्यान्नाश्लीलं कीर्तयेन्न नाम गृह्णीयात्॥

का० सं० २३। ६॥

अर्थात्—इसलिये दीक्षित का अन्न न खावे, गन्दी वाणी न बोले, नाम न ग्रहण करे।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र २। ३। ६। १६, २०॥ में किसी ब्राह्मण का प्रमाण दिया गया है। वह इस प्रकार है—

द्विषन्द्विषतो वा नान्नमश्नीयाद्दोषेण वा मीमांसमानस्य मीमांसितस्य वा॥ १९॥

पापमानँ हि स तस्य भक्ष्यतीति विज्ञायते॥२०॥

अर्थात्—द्वेष करते हुए का, और द्वेष करने वाले का अन्न न खावे। (उसका भी अन्न न खावे) जो दोष पूर्वक (यज्ञशास्त्र की) मीमांसा करता है, अथवा मीमांसा कर चुका है, पापरूप अन्न को ही वह खाता है।

इससे प्रतीत होता है कि द्वेष का भाव रखना और शास्त्र की अशुद्ध मीमांसा करना पाप है।

यथा ह वा इदं निषादा वा सेलगा वा पापकृतो वा वित्तवन्तं पुरुषमरण्ये गृहीत्वा कर्त्तमन्वस्य वित्तमादाय द्रवन्ति। ऐ० ब्रा० ८। १। १॥

अर्थात्—जिस प्रकार से निषाद, या लुटेरे, या पापकर्म करने वाले धनवान पुरुष को जङ्गल में पकड़ कर उसे गढ़े में डाल देते हैं, और उस का धन ले कर भाग जाते हैं। इस से प्रकट होता है कि दूसरों का धन लूटना पापकर्म है।

पापस्य वा इमे कर्मणः कर्त्तार आसतेऽपूतायै वाचो वदितारो यच्छ्यापर्णाः। ऐ० ब्रा० ७। २७॥

अर्थात्—ये श्यापर्ण, जो पापकर्म के करने वाले, अपवित्र=गन्दी वाणी के बोलने वाले, वहां बैठे हैं।

इस प्रमाण से ज्ञात होता है, कि गन्दी वाणी का बोलना अर्थात् गाली आदि देना पाप है।

यह शुभाशुभ कर्म संक्षेप से कहे गए हैं। इन में से शुभ वा पुण्य कर्मों का फल इस लोक में या अगले लोक में सुख है। अशुभ या पाप कर्मों का फल दुःख है। इस दुःख की निवृत्ति यज्ञों में प्रायश्चित्तों द्वारा कही गई है। पाप करते समय सृष्टि नियम में जो कुछ गड़बड़ की गई थी वही यज्ञ द्वारा दूर की जाती है। जिस यज्ञ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है अब उस का स्वरूप संक्षेप से कहा जायगा।

यज्ञ का स्वरूप

यजुर्वेद १।१॥ की व्याख्या करते हुए श० १।७।१।५॥ में कहा है—

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।

अर्थात्—समस्त कर्मों में से यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है। ऐसा ही काठक संहिता ३०।१०॥ में भी लिखा है। ब्राह्मण तो यज्ञ की इतनी महिमा समझते हैं कि वह ब्रह्म को भी यज्ञस्वरूप ही बताते हैं। जगत् में जो कुछ प्रत्यक्ष यज्ञरूप दिखाई दे रहा है वही प्रजापति है।

एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः। श० ४।३।४।३॥

अर्थात्—यह प्रजापति ही है जो प्रत्यक्ष यज्ञ है। संसार में जड़ जगत् में जो यज्ञ हो रहा है, सूर्य उस का केन्द्र है। श० १४।१।१।६॥ में कहा है—

स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः।

अर्थात्—वह जो यज्ञ है वह यही सूर्य है। इसी महायज्ञ का चित्र मनुष्य इस पृथिवी पर बनाता है। पृथिवी पर वेदी ही यज्ञ का केन्द्रस्थान है। ऐतरेय ३।६॥ में कहा है—

तं (यज्ञं) वेद्यामन्वविन्दन् यद्वेद्यामन्वविन्दंस्तद्वेदेर्वेदित्वम्।

अर्थात्—उस यज्ञ को वेदि में प्राप्त किया, क्योंकि वेदि में प्राप्त किया, अतः यही वेदि का वेदिपन है। ऐसा ही और ब्राह्मणों में भी लिखा है। यह वेदि

बड़ी छोटी होती है, पर इस में किए गए कर्म का प्रभाव अद्भुत है। यही वेदि कई स्थलों में वामन विष्णु कहा गया है। श० १।२।५।५॥ से आरम्भ कर के सातवीं कण्डिका तक इसी वामन विष्णु रूपी वेदि का वर्णन है। इसी से देवताओं ने इस विशाल पृथिवी को प्राप्त किया। नहीं, नहीं इस पृथिवी को ही नहीं, और देवताओं का क्या कहना, मनुष्य भी इस वेदि से तीनों लोकों पर राज्य कर सकते हैं।

ऋग्वेद १। २२॥ का प्रसिद्ध मन्त्र है—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥१७॥

इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्मपरक भी है और सूर्य परक भी है। पर इसका एक और अद्भुत अर्थ भी है-

अर्थात्—इस वामन विष्णु वेदि में किया हुआ अग्निहोत्रादि कर्म तीनों लोकों में अपना प्रभाव रखता है। इसी लिये ऐ० ब्राह्मण के आरम्भ में कहा गया है—

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः ॥ १ । १ ॥

अर्थात्—अग्नि देवताओं में प्रथम है और सूर्य्य अन्तिम। इसका अभिप्राय यह है कि वेदि में जा अग्नि होती है उसी में पहिले हवि दी जाती है। श० २।५।१।८॥ में भी कहा है—

अग्निर्वै देवतानां मुखम् ।

अर्थात्—यह जड़ अग्नि ही सारे भौतिक देवताओं का मुख है। इसी में डाला हुआ हवि वायु के सहारे सूर्य्य की ओर अर्थात् ऊपर को जाता है। ऊपर जाकर वह सारे अन्तरिक्ष में फैल जाता है। उसी अन्तरिक्ष में सूर्य्य के प्रभाव से मेघ मंडल के साथ वह हवि नीचे उतरता है, और सब देवताओं को तृप्त करता जाता है। इस लिये हमने कहा था कि इस वेदि से मनुष्य तीनों लोकों को जीतता है। यज्ञ द्वारा पृथिवी के पदार्थ शुद्ध होते हैं, अन्तरिक्ष के पदार्थ शुद्ध होते हैं, और सूर्य्य की रश्मियां पवित्र होती हैं। सूर्य्य की रश्मियां कैसे पवित्र होती हैं, यह हम सहसा नहीं बता सकते। ब्राह्मणों का गहरा पाठ ही इस बात को स्पष्ट करेगा। यज्ञ इन पदार्थों को ही शुद्ध नहीं करता, प्रत्युत इन पदार्थों को शुद्ध करता हुआ मनुष्यमात्र का कल्याण करता है। इसी लिये ब्राह्मण में कहा है—

कल्पते यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति ।
ऐ० १ । ७ ॥

अर्थात्—यज्ञ को भी समर्थ करता है, उसी जनता के लिये समर्थ करता है, जहां पर इस प्रकार का जानने वाला होता होता है।

इस यज्ञ के अनेक प्रकार कहे गए हैं । अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध तक यज्ञ कहे गये हैं । यह जितने यज्ञ हैं, इन सब में ही एक बात का प्रधानरूप से ध्यान रखा गया है । जो कुछ सृष्टि में हो रहा है, वही यज्ञ में किया जाता है । इसके दो लाभ हैं । एक तो याज्ञिक को सृष्टि नियम का ज्ञान प्रत्यक्ष समान होता जाता है, और दूसरे सृष्टि नियम को यह यज्ञ सहायता पहुंचाता है। सूर्य अपने बल से इस संसार की दुर्गन्धि को दूर करता है, और जल को पवित्र करता है। मनुष्य का किया हुआ अग्निहोत्र भी यही दोनों काम करता है । संवत्सर में ३६० दिन हैं। मनुष्य में ३६० अस्थिएं हैं ।[1] ३६० ही ईंटें अग्निचयन में चिनी जाती हैं। सृष्टि नियम का यही ज्ञान है, और सृष्टि नियम को यही सहायता पहुंचाना है । इसी के फल में पुरुष अनेक पापों से तर जाता है ।

यज्ञों के मुख्य भेद

गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि यज्ञ की इक्कीस संस्थाएं हैं—

स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत् ।
गो० पू० १ । १२ ॥

अर्थात्—यज्ञ त्रिवृत, सात तन्तु वाला और इक्कीस संस्था युक्त है । इसे उस ने देखा।

इस का विस्तार आगे किया गया है—

सप्त सुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सप्त तथैकविंशतिः ।
गो० पू० ५ । २५ ॥

अर्थात्—सात सोम संस्था, सात पाकयज्ञ और सात हविर्यज्ञ हैं । यही सब मिला कर इक्कीस संस्था का यज्ञ है ।

---

१ देखो, शतपथ १२।३।२।३॥ मानव अस्थियों के विषय में देखो, Medicine of Ancient India Part I, Osteology, by R. Hoernle. यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है, यद्यपि हम इस से सर्वांश में सहमत नहीं ।

इन इक्कीस में से सात संस्था गृह्याग्नि की हैं, और शेष चौदह श्रौताग्नि की। उन का व्योरा इस प्रकार है—

गृह्याग्नि की संस्था—

(१) **पाक संस्था**—१ अष्टका, २ पार्वण स्थालीपाक, ३ मासिक श्राद्ध, ४ श्रावणी, ५ आग्रहायणी, ६ चैत्री, ७ आश्वयुजी।

श्रौताग्नि की संस्था—

(२) **हविर्यज्ञ** या **हविः संस्था**—१ अग्न्याधान, २ अग्निहोत्र, ३ दर्शपूर्णमास, ४ चातुर्मास्या, ५ आग्रयणेष्टि, ६ निरूढ पशुबन्ध, ७ सौत्रामणि।

(३) **सोम संस्था**—१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोडशी, ५ अतिरात्र, ६ अप्तोर्याम, ७ वाजपेय।[१]

यही इक्कीस संस्था रूपी यज्ञ है। और भी अनेक छोटे बड़े यज्ञ हैं, पर वे सब ही इन का भागमात्र हैं। गोपथ ब्राह्मण में एक और जगह इन यज्ञों का वर्णन किया है।

अथातो यज्ञक्रमा अग्न्याधेयमग्न्याधेयात्पूर्णाहुतिः पूर्णाहुतेरग्निहोत्र-मग्निहोत्राद्दर्शपूर्णमासौ दर्शपूर्णमासाभ्यामाग्रयणमाग्रयणाच्चातुर्मास्यानि चातुर्मास्येभ्यः पशुबन्धः पशुबन्धादग्निष्टोमो ऽग्निष्टोमाद्राजसूयो राजसूयाद्वाजपेयो वाजपेयादश्वमेधो ऽश्वमेधात् पुरुषमेधः पुरुषमेधा-त्सर्वमेधः सर्वमेधाद्दक्षिणावन्तो दक्षिणावद्भ्यो ऽदक्षिणा अदक्षिणाः सहस्रदक्षिणे प्रत्यतिष्ठंस्ते वा एते यज्ञक्रमाः। गो० पू० ५। ७॥

अर्थात्—अब यज्ञ का क्रम कहा जाता है। १ अग्न्याधेय, २ पूर्णाहुतिः, ३ अग्निहोत्र, ४ दर्शपूर्णमास, ५ आग्रयण, ६ चातुर्मास्य, ७ पशुबन्ध, ८ अग्निष्टोम, ९ राजसूय, १० वाजपेय, ११ अश्वमेध, १२ पुरुषमेध, १३ सर्वमेध। इनके अतिरिक्त कुछ और भी यज्ञ कहे गए हैं।

---

१ शतपथ में भी एक स्थान पर कुछ यज्ञों के नाम एक साथ मिलते हैं—

अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुबन्धꣳ सौम्यम-ध्वरम्। १०। ४। २। ४॥

यज्ञ पापों से तारने वाला है

शतपथ २ । ३ । १ । ६ ॥ में कहा है—

सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ।

अर्थात्—सब पापों से छूट जाता है, जो इस प्रकार जानता हुआ अग्निहोत्र करता है ।

तेनेष्ट्वा सर्वां पापकृत्याᳫं सर्वां ब्रह्महत्यामपजघान सर्वां ह वै पापकृत्याᳫं सर्वां ब्रह्महत्यामपहन्ति यो ऽश्वमेधेन यजते ।

श० १३ । ५ । ४ । १ ॥

अर्थात्—उस अश्वमेध से यज्ञ करके सब पाप कर्मों को सारी ब्रह्महत्या को नाश किया । सारे पाप कर्म को सारी ब्रह्म हत्या को नष्ट करता है, जो अश्वमेध से यज्ञ करता है ।

पारिक्षिता यजमाना अश्वमेधैः परो ऽवरम् ।
अजहुः कर्म पापकं पुण्याः पुण्येन कर्मणा, इति ॥ श० १३।५।४।३॥

अर्थात्—भले पारिक्षितों ने अश्वमेधों से एक के पीछे दूसरे पाप कर्मों का नाश किया, पुण्य कर्म द्वारा ।

तद्यथाहिर्जीर्णायास्त्वचो निर्मुच्येत इषीका वा मुञ्जात् ।
एवं हैवैते सर्वस्मात्पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्ते ये शाकलां जुह्वति ।

गो० उ० ४ । ६ ॥

अर्थात्—तो जिस प्रकार से सांप जीर्ण केंचली से छूटता है, इषीका को छुडावे । इस प्रकार वे सब पापों से छूट जाते हैं, जो शाकला की हवि देते हैं ।

अंहसा वा एष गृहीतो यो भ्रातृव्यवानंहस एव तेन मुच्यते यदिन्द्रायेन्द्रियवत इन्द्रियमेव तेनात्मन्धत्ते । का० सं० १० । १०॥

अर्थात्—पाप से ही वह गृहीत है, जो शत्रु वाला है । पाप से ही उसे मुक्त करता है, जो इन्द्रियवान इन्द्र के लिए (यज्ञ करता है ।) इस से (शुद्ध) इन्द्रियों को शरीर में धारण करता है ।

तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मानᳫं हत्वापहतपाप्मैत-त्कर्मारभते । श० ६।२।२।१९॥

अर्थात्—इस प्रकार वह यजमान पौर्णमास से ही पाप का नाश करके, शुद्ध होकर यह कर्म आरम्भ करता है।

पाप्मानꣳ हैष हन्ति यो यजते तमिमं पाप्मानꣳ हतमपो हराणीति। षड्विंश ३। १। ३॥

अर्थात्—पाप को वह मारता है जो (यजमान) यज्ञ करता है। उस नष्ट हुए २ पाप वाले को जल के समीप ले जावे।

तेन पाप्मानं भ्रातृव्यꣳ स्तृणुते वसीयानात्मना भवति एतया स्तुते। षड्विंश ३। ४। ५॥

अर्थात्—उस से पापयुक्त शत्रु का नाश करता है, अपने आप अत्यन्त ऐश्वर्य वाला होता है, जो इस से स्तुति करता है। इन प्रमाणों से प्रकट होता है कि यज्ञ वस्तुत: पापनाशक है। इस यज्ञ का प्रभाव मन्त्रों के पाठ से बहुत ही बढ़ा रहता है। मन्त्रों का पाठ चित्त को शांति देता है। मन्त्रों के स्वरसहित शुद्ध पाठ से वैसा ही चक्र वायुमण्डल और आकाश में चलने लग पड़ता है जैसा कि सृष्टि बनते समय जब मन्त्र उत्पन्न हुए थे, चल रहा था। इसी लिए यज्ञों में मन्त्रपाठ का महत्व बताते हुए ऐ० ब्रा० १।४।३॥ में कहा है—

एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्मक्रियमाणमृगभिवदति।

अर्थात्—यही यज्ञ की समृद्धि=सम्पूर्णता है जो रूप की सम्पूर्णता है, अर्थात् जिस प्रकार का कर्म किया जा रहा है उसी को ऋचा कहती है। ऋचा कर्म को ही नहीं कहती प्रत्युत ऋचा के उच्चारण से सारे वायुमण्डल में परिवर्तन हो जाता है। उस ऋचा का अर्थ चित्त को शान्त करता है और ठीन उच्चारण प्रसन्नता भी देता है।

यज्ञ और बलिदान

ब्राह्मण ग्रन्थों में जो यज्ञ कहे गये हैं उन में से अनेकों में बलिदान का विधान पाया जाता है। हमारा निज का इस बलिदान वाले यज्ञ में विश्वास नहीं। शथपथ में एक कथन है जिस के पाठ से प्रतीत होता है कि वनस्पतियां ही यज्ञ के योग्य हैं।

अग्निर्ह्येव यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञिय इति वनस्पतयो हि यज्ञिया न हि मनुष्या यज्ञेरन्यद्वनस्पतयो न स्युस्तस्मादाह वनस्पतिर्यज्ञिय इति।

श० ३। २। २। ९॥

अर्थात्—अग्नि ही यज्ञ है, और वनस्पतियां ही यज्ञ के योग्य हैं। मनुष्य यज्ञ न कर सकते यदि वनस्पतियां न होतीं। इस लिए कहा है कि वनस्पतियां यज्ञ के योग्य हैं।

इस से प्रकट होता है कि यज्ञ के लिए वनस्पतियां ही उपयुक्त पदार्थ हैं। पशु आदिकों की बली क्यों और कब से आरम्भ हुई, ब्राह्मणों में बलियों के प्रकरण का सर्वत्र प्रक्षेप हुआ है या नहीं, यह सब विचारणीय है।

देवता

ब्राह्मणों में समस्त यज्ञों की हवियों को ग्रहण करने वाले देवता कहे गए हैं। यह देवता दो प्रकार के हैं। एक हैं मनुष्यदेव, और दूसरे भौतिकदेव। मनुष्यदेवों के सम्बन्ध में ब्राह्मण कहते हैं—

ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाᳬसो ऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः।

श० २।२।२।६॥ २।४।३।१४॥

अर्थात्—जो वेदादि के जानने वाले, बहुश्रुत, अत्यन्त विद्वान् हैं, वे मनुष्यों में देव हैं। फिर शतपथ कहता है—

विद्वाᳬसो हि देवाः। श० ३।७।३।१०॥

अर्थात्—विद्वान् ही देवता हैं। बोधायन गृह्यसूत्र में तो इस मनुष्यदेव के भाव को और भी स्पष्ट किया है। वहां लिखा है—

अथ यदि कामयेत् देवं जनयेयमिति संवत्सरमेतद्व्रतं चरेत्।

अर्थात्—यदि कामना करे कि देव=बहुविद्वान् को जन्म दूं, तो वर्ष पर्यन्त यह व्रत करे।

मनुष्यों में विद्वानों वा श्रेष्ठों को देव कहते थे, इस का प्रमाण १८०० वर्ष पूर्व भारत में आने वाले यूनानी यात्री अपोलोनियस के यात्रा वृत्तान्त में भी मिलता है—

The Emperor next asked the question: "why is it that men call you a god? "Because, "answered Appollonius, " every man that is thought to be good, is honoured by the title of god." I have shown in my narrative of India how this tenet passed into our hero's philosophy."[1]

1 Philostratus, A life of Appollonious, Book VIII. ch. VI. Vol, II. P. 281. ed by F. C. Conybeare.

अर्थात्—तब सम्राट् ने पूछा—लोग तुम्हें देवता क्यों कहते हैं। अपोलोनियस ने उत्तर दिया—क्योंकि जो पुरुष श्रेष्ठ समझा जाता है उस की प्रतिष्ठा इस शब्द से की जाती है। अपोलोनियस का जीवन लेखक लिखता है, कि वह बता चुका है कि भारत का यह सिद्धान्त उस के चरित्र नायक के फलसफे में कैसे प्रविष्ट हुआ। पूर्वोक्त सब प्रमाणों से प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में भौतिक देवों को ही देव नहीं माना गया है, प्रत्युत विद्वानों को भी देव कहा गया है।

शतपथ में संसार की उस अवस्था का भी वर्णन मिलता है, जबकि देव=विद्वान् आर्य और साधारण मनुष्य एकत्र रहते थे।

उभये ह वाऽ इदमग्रे सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च। २। ३। ४। ४॥

अर्थात्—इस अवस्था से पूर्व, दोनों विद्वान् और साधारण मनुष्य एकत्र रहते थे।

विद्वानों के अतिरिक्त जो भौतिक देव हैं उनका अब वर्णन किया जाता है। हम पूर्व पृष्ठ२००पर कह चुके हैं कि अग्नि देवताओं में प्रथम है और विष्णु अन्तिम। इन दोनों के बीच में अन्तरिक्ष स्थानी देवता हैं। यह देवता पूर्वोक्त यज्ञ से तृप्त होते हैं।

सत्यसंहिता वै देवाः। ऐ० ब्रा० १। ६॥

अर्थात्—यह देव एक स्थायी नियम में चलने वाले हैं। इनमें से इन्द्र या विद्युत् अत्यन्त बलशाली है।

इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः। कौ० ब्रा० ६। १४॥

अर्थात्—देवों में इन्द्र अत्यन्त शक्ति वाला वा बल वाला है। इन्हीं सब देवों का कथन करते हुए ब्राह्मणों ने सारे सृष्टि नियम का वर्णन किया है, अन्तरिक्षस्थ पदार्थों के अनेक तत्त्व कहे हैं, वृष्टि विद्या का भी बहुत सा कथन किया है, यदि ब्राह्मणों के इन आधिदैविक अर्थों का पूरा ज्ञान हो जावे, तो आज भी हमें विज्ञान की अनेक बातों का पता लग सकता है। ब्राह्मणों का पाठ करते हुए प्रत्येक देवता के यथार्थ स्वरूप और गुण कर्मों का जानना अत्यन्त आवश्यक है। आशा है। जब संसार के विद्वान् इन ब्राह्मणादि ग्रन्थों को उपेक्षा की दृष्टि से देखना छोड़कर ध्यानपूर्वक इनका पाठ करेंगे, तो संसार के ज्ञान में पर्याप्त उन्नति होगी।

वृष्टि का वर्णन

सारी वृष्टि विद्या का बड़ा सुन्दर वर्णन ब्राह्मणग्रन्थों में पाया जाता है। उस वर्णन को पढ़ कर प्रत्येक विचारवान पुरुष जान सकता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवचन

करने वाले वृष्टि विज्ञान में पर्याप्त गति रखते थे। शतपथ ५। ३। ५। १७॥ में कहा है—

अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः।

अर्थात्—ताप के प्रभाव से जलधूम उत्पन्न होता है। उसी जलधूम के बादल बनते हैं और बादल से वृष्टि होती है।

अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति धामच्छद्दिव भूत्वा वर्षति मरुतस्सृष्टां वृष्टिं नयन्ति॥ यदासा आदित्यो ऽर्वाङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथ वर्षति। का० सं० ११। १०॥[1]

अर्थात्—अग्नि=ताप ही इस भूमि पर से वृष्टि को ऊपर ले जाता है। सूर्य के समान अर्थात् अग्नि के प्रभाव से ही वर्षा होती है। वायु गण उत्पन्न हुई २ वृष्टि को नीचे लाते हैं। जब वह सूर्य अर्वाङ् किरणों से काम करता है तब वर्षा होती है।

विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति। ऐ० ब्रा० २। ४१॥

अर्थात्—विद्युत् या अग्नि का ताप ही वर्षा और खाने योग्य पदार्थों को देता है।

तस्या एते घोरे तन्वौ विद्युच्च ह्रादुनिश्च। शतपथ १२।८।३।११॥

अर्थात्—उस वृष्टि के ये दो भयङ्कर रूप हैं, जो बिजली (का चमकना) और ओले (पड़ना)।

तौ यदि कृष्णौ स्यातामन्यतरो वा कृष्णस्तत्र विद्याद्वर्षिष्यत्यैषमः पर्जन्यो वृष्टिमान्भविष्यतीत्येतदु विज्ञानम्।

श० ३। ३। ४। ११॥

अर्थात्—(सोम की गाड़ी के बैल) यदि दोनों काले हों, अथवा उन में से एक काला हो, तब जाने वर्षा होगी, बादल उस वर्ष बहुत बरसेगा, यही विज्ञान है।

काले पदार्थ का वर्षा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। यह क्यों है, इस के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। पञ्जाबी में भी हम इस भाव का एक वचन सुनते आए हैं—

कालिया इट्टां काले रोड़, मींह वरावे जोरो जोर।

वायु का भी वर्षा के साथ बड़ा सम्बन्ध है। ब्राह्मण कहता है—

अयं वै वर्षस्येष्टे यो ऽयं पवते। श० १। ८। ३। १२॥

---

1 तुलना करो, तै० सं० २। ४। ९। १०॥ मै० सं० २। ४। ८॥

अर्थात्— यही वर्षा को चलाने वाला है, जो यह वायु चलता है। वायु के ही प्रभाव से बादल बन जाते हैं, यह सब जानते हैं।

तस्माद्यां दिशं वायुरेति तां दिशं वृष्टिरन्वेति। श० ८।२।३।५॥

अर्थात्—इसलिए जिस दिशा को वायु जाता है, उसी दिशा को वृष्टि जाती है।

मरुतो वै वर्षस्येशते। श० ९।१।२।५॥

अर्थात—**वायुगण** (morsoon) ही वर्षा पर राज्य करते हैं।

आजकल भी वर्षा के सम्बन्ध में हम सर्वत्र यही विचार देखते हैं।

इतो ह्यग्निर्वृष्टिं वनुते। शतपथ ३।८।२।२२॥

अर्थात्—इसी भूमि पर से अग्नि = ताप वृष्टि को प्राप्त करता है। श्रौतसूत्रों में **कारीरि** इष्टि की बड़ी प्रशंसा है। इसी के द्वारा अपनी इच्छा से वर्षा प्राप्त की जा सकती है। आर्य लोग ऐसा करते भी आए हैं। उसी का वर्णन ब्राह्मणों में भी है। मै० सं० १।१०।१२॥ मे कहा है—

सौम्यानि वै करीराणि सौमी ह्य त्वेवाहुतिरमुतो वृष्टिं च्यावयति

अर्थात्—सोम सम्बन्धी ही ये करीरि इष्टियां हैं। सोम सम्बन्धी ही यह आहुति होती है, जो अन्तरिक्ष से वर्षा को यहां ले आती है।

वर्ष्य उदके यजेतैतद्ध्यन्नाद्यस्य नेदिष्ठं वृष्टिकामो यजेत वायुर्वा इमे समीरयति। मै० सं० ४।३।३॥[1]

अर्थात्—वर्षा के जल से यज्ञ करे, यही खाने योग्य पदार्थों के अत्यन्त समीप है। वर्षा की कामना वाला यज्ञ करे। वायु ही इन्हें ले जाता है।

आपो ह वै वृत्रं जघ्नुस्तेनैवैतद्वीर्येणापः स्यन्दन्ते। श० ३।९।४।१४॥

अर्थात्—(आकाशस्थ) जलों ने बादल को नष्ट किया। उस ही बल से जल (सदा) बहते रहते हैं।

वर्षा का विज्ञान प्राप्त करते २ ब्राह्मणों वाले विद्युत सम्बन्धी बातों को भी जान गए थे।

एतस्यामुदीच्यान्दिशि भूयिष्ठं विद्योतते। ष० २।४॥

अर्थात्—इस उदीची = उत्तर की दिशा में बिजली बहुत चमकती है।

---

१ वर्षा सम्बन्धी प्रमाणों के लिए देखो, श० ७।५।२।३७॥ मै० सं० १।१०।७॥ ३।८।६॥ ४।७।७॥

विद्युद्वाऽ अपां ज्योतिः । श० ७।५।२।४६॥

अर्थात्—बिजली जलों का तेज है।

वर्षा की विद्या प्राचीन आर्यावर्त में बहुत ही अच्छी तरह से जानी गई थी। इसी विद्या का विशेष वर्णन वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में किया है। यज्ञों द्वारा शुद्ध हुआ २ वर्षा का जल अन्न और जलों को शुद्ध करता है। शुद्ध अन्न जल से शुद्ध शरीर बनते हैं, रोग नहीं होते। नीरोग शरीर ही सब काम कर सकता है। इन्हीं कारणों से वर्षा सम्बन्धी विद्या में ब्राह्मणग्रन्थ वालों ने इतना परिश्रम किया।

विज्ञान सम्बन्धी अन्य बातें

वृष्टि-विद्या के अतिरिक्त और भी अनेक विज्ञान सम्बन्धी बातें हैं, जो ब्राह्मण-ग्रन्थों में पाई जाती हैं। उनमें से कुछ प्रधान बातें यहां लिखी जाती हैं।

समुद्र

इमं लोकᳬ सर्वतः समुद्रः पर्येति।...इमं लोकं दक्षिणावृत्समुद्रः पर्येति। श० ७।१।१।१३॥

अर्थात्—इस पृथिवी लोक को समुद्र सब ओर से घेरता है।...इस पृथिवी को (पूर्व से) दक्षिण की ओर बहने वाला समुद्र घेरता है। (सूर्य की गति के अनुसार ही यह समुद्र की गति है।)

भूगोल के जानने वाले जानते हैं कि पृथिवी के दक्षिण की ओर ही समुद्र का अधिकांश भाग है।

तस्मादिमांल्लोकान्त्सर्वतः समुद्रः पर्येति। श० ९।१।२।३॥

अर्थात्—(इस सौर जगत् सम्बन्धी) सब ही लोकों को समुद्र सब ओर से घेरता है। अर्थात् पृथिवी के सिवा दूसरे लोकों की भी यही दशा है।

सूर्य

स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाऽथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तादथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवावस्तात्कुरुते रात्रिं परस्तात्स

वा एष न कदाचन निम्रोचति। ऐ० ब्रा० ३। ४४॥[1]

अर्थात्—वह (सूर्य) न कभी अस्त होता है, न उदय होता है। उस (सूर्य) को जब अस्त हो रहा है, ऐसा (साधारण लोग) मानते हैं तो दिन के अन्त को प्राप्त करके अपने द्वारा दो विरोधी भाव उत्पन्न करता है, अर्थात् रात को ही इस ओर बनाता है, दिन को दूसरी ओर। और जो (साधारण लोग) मानते हैं, कि यह (सूर्य) प्रातः उदय होता है, तो रात के अन्त को प्राप्त होकर अपने द्वारा दो विरोधी भाव उत्पन्न करता है, अर्थात् दिन को ही इस ओर बनाता है, रात को उस ओर। वह (सूर्य) कभी नहीं डूबता।

प्राणापान

प्राणापानौ पवित्रे। तै० ब्रा० ३। ३। ४। ४॥

अर्थात्—प्राण और अपान पवित्र करने वाले हैं। पवित्रे कुशा के बने होते हैं। उन दोनों से यज्ञ में जल छिड़क कर पदार्थों को पवित्र करते हैं। पवित्र करने से ही उनका पवित्रे नाम पड़ा है। मनुष्य शरीर में भी रक्त को प्राणापान पवित्र करते हैं। इसी लिए ब्राह्मण कहता है, प्राणापान पवित्र करने वाले हैं।

प्राणोदान के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा है। देखो शतपथ १।८।१।४४॥

शतꣳ शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति। अहोरात्राभ्यां पुरुषः समेन तावत्कृत्वः प्राणीत चाप चानिति॥

श० १२। ३। २। ८॥

अर्थात्—१००×१००+८००=१०८०० इतने परिमाण वाला पुरुष है, इस लिए कहते हैं, दिन और रात में पुरुष इतनी वार ही प्राण लेता है (और इतनी वार ही) अपान लेता है। अर्थात् १०८००+१०८००=२१६००।

हम शरीरशास्त्र सम्बन्धी समस्त आधुनिक ग्रन्थों से जानते हैं, कि एक मिनट में पुरुष १५ वार श्वास लेता है। इस प्रकार एक घण्टे में ६०×१५=६०० श्वास हुए। और २४ घण्टों में ६००×२४=२१६०० श्वास ही बनते हैं।

वर्षा

तस्माद् बृहतस्तोत्रे दुन्दुभीनुद्वादयन्ति वर्षुकः पर्जन्यो भवति।

जै० ब्रा० १।१४३॥

---

१ तुलना करो, गो० उ० ४। ११॥

अर्थात्—इस लिए बृहतस्तोत्र में दुन्दुभिओं को बजाते हैं, बादल बरसने वाला होता है।

जब बादल घिरे हुए हों, तो ऊंचा शब्द करने से वर्षा आरम्भ हो जाती है। काश्मीर देश में अमरनाथ की यात्रा करते हुए हत्यारे तालाब के निकट ऊंचा बोलना वर्जित है। ऐसा करने से वहां बरफ गिरने लगती है। इस लिए ब्राह्मण का लिखना उचित ही है।[1]

पृथिवी की पूर्वावस्था

प्रजापतेर्वा एतज्ज्येष्ठं तोकं यत्पर्वतास्ते पक्षिणा आसंस्ते यत्र यत्राकामयन्त तत्परापातमासताथ वा इयं तर्हि शिथिलासीत्तेषामिन्द्रः पक्षानच्छिनत्तैरिमामदृंहद्ये पक्षा आसंस्ते जीमूता अभवंस्तस्मात्ते गिरिमुपप्लवन्ते योनिर्ह्येषामेष तस्माद्गिरौ भूयिष्ठं वर्षति।

का० सं० ३६। ७॥

अर्थात्—प्रजापति = सूर्य के ये बड़े पुत्र हैं, जो बादल हैं। वे पक्षियों के समान पंख रखते थे (अर्थात् उड़ने वाले हैं।) वे जहां २ कामना करते हुए, वहीं पर (वर्षा-रूप में) गिर कर ठहरे। तब यह पृथिवी शिथिल थी (अर्थात् इस का ऊपर का भाग कठिन नहीं हुआ था।) इन्द्र अर्थात् वायु और विद्युत् ने उन बादलों का उड़ना बन्द करके, उन्हें बरसाया और इस पृथिवी को जलमय करके इसे दृढ़ किया। (तब पृथिवी का ऊपर का भाग ठंडा होकर सख्त हो गया। जो उन बादलों के पर थे, वहां (पृथिवी में से) पर्वत बनों। इस लिए बादल पर्वतों को दौड़ते हैं। पर्वत ही बादलों की योनि (उत्पत्ति स्थान) है। इसी लिए पर्वत में बहुत वर्षा होती है।[2]

धातुओं को टांका लगाना

लवणेन सुवर्णं संदध्यात्। गो० पू० १। १४॥

अर्थात्—लवण से सोने को टांका लगावे।

सुवर्णेन रजतम् (संदध्यात्)। गो० पू० १। १५॥

अर्थात्—सोने से चान्दी को टांका लगावे।

---

१ तुलना करो मै० सं० ३। ८। ६॥ का सं० २५। १०॥

२ तुलना करो मै० सं० १। १०। १३॥

रेखागणित (Geometry)

ब्राह्मण काल में रेखागणित का ज्ञान भी पर्याप्त बढ़ा हुआ था। इस का विस्तृत वर्णन तो शुल्बसूत्रों के स्थान में किया जायगा। यहां पर केवल उन स्थलों का संकेत करना अभिप्रेत है, जहां पर ब्राह्मणों में ऐसा वर्णन मिलता है।

शतपथ १०।२।२।५–८॥ में **चतुरश्रश्येनचिति** का कुछ वर्णन पाया जाता है। इस में मध्य में चार अश्र, पक्षों के दो अश्र (squares) और पूंछ का एक अश्र होता है। सब मिल कर सात अश्र हो जाते हैं। इस लिए शतपथ कहता है—

स वै सप्तपुरुषो भवति।...चत्वारो हि तस्य पुरुषस्यात्मा त्रयः पक्षपुच्छानि। १०। २। २। ५॥

अर्थात्—वह वेदि सात पुरुष वाली होती है।...चार (अश्र) उस पुरुष का शरीर और तीन (अश्र) पक्ष और पूंछ के।

इस वेदि का आकार श्येन पक्षी के समान होता है। इसके बनाने वाले को अश्रों (triangle) का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

कई साधारण लोग इस कठिनरूप वाली वेदि को न बना कर एक अश्र वाली वेदि ही बनाते थे। उन का शतपथ खण्डन करता है—

तद्धैके। एकविधं प्रथमं विदधाति...न तथा कुर्यात्। १०।२।३।१७॥

तस्मादु सप्तविधमेव प्रथमं विदधीत। १०।२।३।१८॥

अर्थात्—कई एक (साधारण लोग) एकविध एक ही अश्र पहले बनाते हैं।... वैसा न करे।

इस लिए पहले ही सात प्रकार की बनावे।

काठक संहिता में वेदियों के और भी रूप कहे हैं—

प्रउगचितं चिन्वीत। २१। ४॥

अर्थात्—प्रउगचित (triangle) रूप वाली अग्नि का चयन करे।

उभयतः प्रउगं चिन्वीत। २१। ४॥

अर्थात्—दोनों ओर (Squares) रूप वाली अग्नि बनावे।

रथचक्रचितं चिन्वीत। २१। ४॥

अर्थात्—रथचक्र के समान गोलाकार अग्नि चयन करे।

द्रोणचितं चिन्वीत। २१। ४॥

अर्थात्—द्रोणाकार (trough) चिति चिने।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार की वेदियां शतपथ, तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता आदि में कही गई हैं। इन के बनाने वालों को रेखागणित के कई कठिन रहस्यों का भी ज्ञान था। इस बात का विशेष उल्लेख जर्मन विद्वान् बर्क ने किया है। देखो Z. D. M. G. सन् १६०१, पृ० ५४३—५७६।

स्वर्ग

ब्राह्मणग्रन्थों में सब शुभ कर्मों का फल स्वर्ग कहा गया है—

ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति। श० ६।५।४।८॥

अर्थात्—जो मनुष्य पुण्य कर्म करने वाले हैं, वे स्वर्ग लोक को जाते हैं।

यही स्वर्ग लोक यज्ञ, तप आदि से भी प्राप्त होता है।

देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाहुतिभिः स्वर्गं लोकमायन्।
ऐ० ब्रा० ३। ४२॥

अर्थात्—विद्वान् जन यज्ञ से, श्रम से, तप से और आहुतियां देकर स्वर्ग लोक को प्राप्त हुए।

स्वर्गलोक क्या है, और ब्राह्मण वालों का स्वर्ग से क्या अभिप्राय था, यह बड़ा संदिग्ध विषय है। एक जगह पर कहा गया है—

सहस्राश्वीने वा इतः स्वर्गो लोकः। ऐ० ब्रा० २।१७॥

अर्थात्—एक तेज़ घोड़ा हज़ार दिन में जितना चलता है, उतना ही यहां से स्वर्गलोक है। फिर दूसरे ब्राह्मण में कहा है—

चतुश्चत्वारिᳪशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात् प्लक्षः प्रास्रवणस्तावदितः स्वर्गो लोकः सरस्वतीसम्मितेनाध्वना स्वर्गं लोकं यन्ति। तां० २५। १०। १६॥

अर्थात्—चवालीस आश्वीन सरस्वती के विनशन से प्लक्ष का स्थान है। उतना ही यहां से स्वर्ग लोक है। सरस्वती सम्मित मार्ग से ही स्वर्ग लोक को जाते हैं।

दोनों ब्राह्मणों के कथन में कुछ भेद है। यह भेद क्यों पड़ गया, इस का कारण ढूंढना चाहिए। ऐतरेय ब्राह्मण वाले सहस्र पद का अर्थ बहुत भी हो सकता है। सहस्र और शत शब्द बहुवाची माने गए हैं।

शतयोजने ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति। कौ० ८।३॥

अर्थात्—अनेक योजन यहां से सूर्य तपता है। इस प्रकार पूर्वोक्त दोनों ब्राह्मणों में से ताण्ड्य ब्राह्मण का कथन युक्ति युक्त हो सकता है। हम पहले पृ० १५ पर लिख चुके है कि ताण्ड्य लोग नर्मदा के उत्तर भाग में रहते थे। वहां से हिमालय प्रदेश की दूरी लगभग चवालीस आश्वीन ही है। हिमालय ही पुराने आर्यों का स्वर्गलोक था। वहीं इन्द्र नाम के सहस्रों राजाओं ने राज्य किया है।

ब्राह्मणों में कई स्थानों पर सूर्य लोक भी स्वर्गलोक कहा गया है—

एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः। तै० ब्रा० ३।८।१०।३॥

अर्थात्—यह सूर्य ही स्वर्ग लोक है। यह स्वर्ग लोक मृत्यु के अनन्तर ही प्राप्त होता है। और इस पृथिवी पर का स्वर्गलोक हिमालय तो पुरुषार्थी को सदा ही प्राप्त था। सम्भवतः इसका यह भी अभिप्राय हो सकता है, कि इस जन्म के पुण्य कर्मों के भारी फल अगले जन्म में ही सुखविशेष के रूप में मिलते हैं, साधारण फल इस जन्म में भले ही मिलें।

और भी अनेक पदार्थ हैं, जो स्वर्गलोक के नाम से पुकारे गए हैं। सबका भाव यही प्रतीत होता है कि सुखविशेष का ही नाम स्वर्गलोक है, चाहे वह इस पृथिवी पर भोगा जावे, या ईश्वर की इस अथाह सृष्टि में से किसी और लोक में। होगा वह लोक भी ऐसा ही। हां, इतना सम्भव है कि वहां दुःख कुछ कम हों।

ग्यारहवां अध्याय

चार वर्ण

इस अध्याय में ब्राह्मण काल सम्बन्धी अब यह अन्तिम बात कह कर हम ब्राह्मणों के विषय की समाप्ति करेंगे। ब्राह्मणों में मनुष्यों के प्रसिद्ध चार विभागों का वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

चत्वारो वै वर्णाः। ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः। ५।५।४।९॥

अर्थात्—वर्ण चार ही हैं। ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र।

फिर मैत्रायणी संहिता में भी कहा है—

चत्वारो वै पुरुषा ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः। ४।४।६॥

अर्थात्—चार प्रकार के ही मनुष्य हैं, ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र।

इन चारों का अब क्रमशः वर्णन किया जाता है।

ये ब्राह्मण ही हैं, जो मनुष्यदेव हैं—

अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः। ष० १। १॥

अर्थात्—यही मनुष्यों में देव हैं, जो ब्राह्मण हैं। अर्थात् ब्राह्मण को बहुत विद्वान् होना चाहिए।

फिर कहा है—

आग्नेयो वै ब्राह्मणः। तै० ब्रा० २। ७। ३। १॥

अर्थात्—अग्नि के गुणों से विभूषित ही ब्राह्मण हैं। वे ज्ञानवान, तेजोमय आदि हैं।

ब्राह्मण के अवश्य ही सब संस्कार होने चाहिएं, इस विषय में कहा है—

एष ह वै सान्तपनो ऽग्निर्यद् ब्राह्मणो यस्य गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म-नामकर्ण-निष्क्रमण-अन्नप्राशन-गोदान-चूडाकरण-उपनयन-आप्लावन-अग्निहोत्र-व्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपनः। गो० पू० २। २३॥

अर्थात्—यह सान्तपन अग्नि ही है, जो ब्राह्मण है, जिस के गर्भाधान से लेकर व्रतचर्यादि संस्कार किए गए हैं, वह सान्तपन है।

मनुष्यों में ब्राह्मण क्यों श्रेष्ठ माना गया है, इस विषय में कहा है—

ब्रह्म हि ब्राह्मणः । श० ५ । १ । ५ । २ ॥

अर्थात्—वेद ही ब्राह्मण है ।

वेद आर्य जाति का सब से बड़ा कोष है । उस कोष की जो कोई रक्षा करता था, वह आर्यों के लिए अत्यन्त मान्य होता था । ब्राह्मण वेद को कण्ठस्थ रखता था, वेद को पढ़ाता था, इस लिए ब्राह्मण ही मान्य दृष्टि से वेद कहा गया है ।

हम पसले कह चुके हैं कि ब्राह्मण को तो कभी भी सुरा न पीनी चाहिए । इस का भाव यही है कि ब्राह्मण को कोई ऐसा काम न करना चाहिए, जिस से उस की बुद्धि भ्रष्ट हो । इसी भाव से ब्राह्मण में कहा है—

अशिव इव वाऽ एष भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य । श० १२।८।१।५॥

अर्थात्—अकल्याणकारी के समान ही यह भोजन है, जो सुरा है, ब्राह्मण का ।

दीक्षित होते हुए क्षत्रिय और वैश्य भी कुछ काल के लिये ब्राह्मण अर्थात् सौम्य स्वभाव वाले, सत्यवक्ता, तपस्वी बनते हैं, यह ब्राह्मण कहता है—

स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति । ऐ० ७।२३॥

अर्थात्—वह (क्षत्रिय) ही दीक्षित होकर ब्राह्मणपन को प्राप्त होता है ।

तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्राह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३।२।१।४०॥

अर्थात्—इसी लिए (दीक्षित) क्षत्रिय अथवा वैश्य (हो, उसे) ब्राह्मण ही कहे । ब्राह्मण ही उत्पन्न होता है, जो यज्ञ से उत्पन्न होता है ।

य उ वै कश्च यजते ब्राह्मणीभूयेवैव यजते । श० १३।४।१।३॥

अर्थात्—जो कोई ही यज्ञ करता है, ब्राह्मण हो कर ही यज्ञ करता है ।

ब्राह्मण अपना समय गाने बजाने में कभी नष्ट न करे । हां वेद का स्वरसहित पढ़ना तो उस का धर्म ही है—

ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येत् । गो० पू० २ । २१ ॥

अर्थात्—ब्राह्मण न ही गावे, न नाचे ।

ब्राह्मण को ब्रह्मवर्चसी=वेद के तेज वाला बनना चाहिए—

तद्ध्येव ब्राह्मणेनैष्टव्यं यद्ब्रह्मवर्चसी स्यादिति । श० १।९।३।१६॥

अर्थात्—यह ही ब्राह्मण को इष्ट होना चाहिए, जो ब्रह्मवर्चसी होवे ।

ब्राह्मणों से विद्वान् ही बलवान् है, क्योंकि कहा है—

यो वै ब्राह्मणानामनुचानतमः स एषां वीर्यवत्तमः । श० ४।६।६।५॥

अर्थात्—जो ही ब्राह्मणों में परम विद्वान् है, वह इन में अत्यन्त बलवान् है।

इस बलवान् ब्राह्मण के कौन से शस्त्र हैं—

एतानि वै ब्रह्मण आयुधानि यद्यज्ञायुधानि । ऐ० ब्रा० ७।१४॥

अर्थात्—यही ब्रह्म=सौम्यशक्ति के शस्त्र हैं, जो यज्ञ के शस्त्र हैं।

तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यङ्करोति मुखतो हि सृष्टः ।

ता० ६ । १ । ६ ॥

अर्थात्—इस लिए ब्राह्मण मुख से ही अपना बल दिखाता है।[1] मुख अर्थात् मुख्य गुणों से ही उत्पन्न हुआ है। ज्ञान ही मुख्य गुण है।

पूर्वोक्त विद्या आदि गुणयुक्त ब्राह्मण ही सर्वत्र मान की दृष्टि से देखे जाते थे।

क्षत्रिय

क्षत्रं राजन्यः । ऐ० ब्रा० ८ । ६ ॥

अर्थात्—बलरूप ही क्षत्रिय है।

क्षत्रं हि राष्ट्रम् । ऐ० ब्रा० ७ । २२ ॥

अर्थात्—बलरूप का अस्तित्व ही राज्य है। बलहीन जातियां राष्ट्र को ठीक नहीं रख सकतीं।

क्षत्रियों की सम्पत्ति

तस्मादु क्षत्रियो भूयिष्ठं हि पशूनामीष्टे । गो० उ० ६ । ७॥

अर्थात्—इस लिए क्षत्रिय सब से अधिक पशुओं का स्वामी होता है।

इससे प्रकट होता है कि राजाओं के पास सहस्रों घोड़े, गो आदि होने चाहिएं।

क्षत्रियों और ब्राह्मणों का सम्बन्ध

तद्यत्र ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते । ऐ० ब्रा० ८ । ९ ॥

अर्थात्—जहां ज्ञानशक्ति के आश्रय बलशक्ति काम करती है, वही राष्ट्र सम्पत्ति-

---

१ तुलना करो मनुः—

वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्याद्रीन् द्विजः ॥११।३३॥

शाली (होता है) वही राष्ट्र वीरों वाला होता है। इसी राष्ट्र में वीर=शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न होता है।

इस कथन में स्पष्ट उपदेश किया गया है कि क्षत्रियों को विद्वानों के आधीन रह कर ही राज्य प्रबन्ध करना चाहिए। वेदादि शास्त्रों में अनेक स्थानों पर कहा गया है, कि संसार के कल्याण के लिए, भुजबल और ज्ञानबल को परस्पर मिल कर काम करना चाहिए। जो आधुनिक ग्रन्थकार पुराने आर्यों को ब्राह्मणों के आधिपत्य के नीचे दबा हुआ समझते हैं, उन्हों ने आर्य जाति के भाव को नहीं समझा। आर्य लोग विद्याबल को सब बलों में सर्वोपरि मानते थे। ब्राह्मण में वह बल पूरे रूप से पाया जाता है,ऐसा पूर्वोक्त प्रमाणों द्वारा प्रकट किया जा चुका है। इस लिए क्षात्र-बल को ब्राह्मणों के साथ मिल कर ही काम करना चाहिए।

यो वै राजा ब्राह्मणाद्बलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीयान्भवति।

श० ५। ४। ४। १५॥

अर्थात्—जो राजा ब्राह्मण से निर्बल है (जिस के पास विद्वान् ब्राह्मण नहीं हैं) वह शत्रुओं से बल वाला होता है। अर्थात् विद्वान् ब्राह्मणों के मन्त्री आदि पदों को सुशोभित न करने पर राजा के शत्रु बढ़ जाते हैं।

तत्तदवक्लृप्तमेव। यद्ब्राह्मणोऽराजन्यः स्याद्यद्यु राजानं लभेत समृद्धं तदेतद्ध त्वेवानवक्लृप्तं। यत्क्षत्रियोऽब्राह्मणो भवति यद्ध किं च कर्म्म कुरुतेऽप्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण न हैवास्मै तत्समृध्यते तस्मादु क्षत्रियेण कर्म करिष्यमाणेनोपसर्तव्य एव ब्राह्मणः सꣳहैवास्मै तद्ब्रह्मप्रसूतं कर्म ऽर्ध्यते। श० ४।१।४।६॥

अर्थात्—तब यह युक्त ही है, कि ब्राह्मण राजा के विना ही हो। यदि (ब्राह्मण) राजा को प्राप्त ही करे, यह (दोनों ब्राह्मण और राजा या क्षत्रिय) के लिए कल्याणकारी होता है। यह सर्वथा अयुक्त है, कि क्षत्रिय=राजा ब्राह्मण के विना हो। क्योंकि जो कर्म वह करता है, ब्रह्म और मित्र से अप्रसूत, नहीं वह इस के लिए समृद्धियुक्त होता। इस लिए जब क्षत्रिय कोई (भारी और साहस का) काम करने लगे तो ब्राह्मण के समीप जावे, क्योंकि ब्राह्मण से बताए हुए कर्म में वह सफल होता है।

जो सौम्य गुणयुक्त निष्कपट विद्वान्, सात्विक स्वभाव वाला व्यक्ति है, उसे राजा की कोई आवश्यकता नहीं। प्रथम तो उस के शत्रु होते ही नहीं, और यदि होते हैं, तो उन्हें सच्चा ब्राह्मण अपनी वाणी से परास्त कर देता है। क्षत्रिय को वस्तुतः पदे पदे ब्राह्मण की बड़ी आवश्यकता है। ठीक सम्मति से क्षत्रिय सफल हो जाता है। चन्द्रगुप्त, एक ब्राह्मण की सम्मति से ही कितना महान् बन गया। अतः पूर्वोक्त ब्राह्मण राजनीति के वास्तविक तत्त्व को बताता है।

क्षत्रिय के शस्त्र

एतानि क्षत्रस्यायुधानि यदश्वरथः कवच इषुधन्व।

ऐ० ब्रा० ७। १९॥

अर्थात्—यही क्षात्र बल के शस्त्र हैं, जो घोड़ा, रथ, कवच, तीर और धनुष।

युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यम्। श० १३।१।५।६॥

अर्थात्—युद्ध ही क्षत्रिय का बल है।

राजा

तस्माद्राजा बाहुबली भावुकः। श० १३।२।२।५॥

अर्थात्—इस लिए बाहुबल युक्त राजा प्रिय होता है।

तस्माद्राजोरुबली भावुकः। श० १३।२।२।८॥

अर्थात्—इस लिए जंघा में बलवान् राजा प्रिय होता है।

नाऽराजकस्य युद्धमस्ति। तै० ब्रा० १।५।९।१॥

अर्थात्—जिस देश में अराजकता है, वह देश किसी से युद्ध नहीं कर सकता। जिस देश के लोग परस्पर लड़ते झगड़ते हैं, जहां कोई नियम नहीं है, वहां ऐसा ही हाल होता है।

राजा युद्ध में कैसे जाता था

तद्यथा महाराजः पुरस्तात्सैनानीकानि प्रत्युह्याभयं पन्थानमन्वियात्। कौ० ५। ५॥

अर्थात्—तो जिस प्रकार एक बड़ा राजा सब से आगे सेना के अग्रभाग को कर के निर्भय हो कर मार्ग को तय करता है।

इस से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय सम्राट् युद्ध में जाते समय सेना के अग्रभाग को आगे रखते थे।

वैश्य

राष्ट्राणि वै विशः । ऐ० ब्रा० ८ । २६ ॥

अर्थात्—वैश्य ही राष्ट्र हैं । वैश्य के धन कमाने पर ही राज्य में सब वर्णों का काम चलता है ।

वैश्यों का वर्णन इन ब्राह्मणों में थोड़ा ही मिलता है ।

शूद्र

प्राचीन शास्त्रों में शूद्र की बड़ी निन्दा पाई जाती है । इस का अभिप्राय यह नहीं है कि आर्य लोग शूद्रों के विरोधी थे । आर्य सभ्यता में शूद्र उसी को कहा गया है, जो यत्न किए जाने पर भी पढ़ लिख न सके, मूर्ख का मूर्ख रहे । वह संसार में किसी प्रकार भी उन्नति नहीं कर सकता । ऐसे आदमियों के काम तो दूसरों की सेवा और उदरपूर्ति ही हैं । इसी लिए ब्राह्मण कहता है—

तस्मात्पादावनेज्यन्नाति वर्द्धते पत्तो हि सृष्टः । तां० ६।१।११॥

अर्थात्—इस लिये पाओं को धोता हुआ, अधिक वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, पाओं से ही उत्पन्न हुआ २ है ।

जो अज्ञानी है वह श्रम से ही अपना जीवन निर्वाह कर सकता है, इस लिए ब्राह्मण कहता है—

तपो वै शूद्रः । श० १३ । ६ । २ । १० ॥

असुर्य्यः शूद्रः । तै० १ । २ । ६ । ७ ॥

अर्थात्—श्रमरूप ही शूद्र है ।

ज्ञानहीन ही शूद्र है ।

ऐसे मूर्ख के समीप वेद का पढ़ना निरर्थक है, इस लिए ब्राह्मण कहता है—

पंद्यु ह वा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम् । वेदान्तसूत्र १।३।३८॥ पर शङ्करभाष्योद्धृत किसी ब्राह्मण का पाठ ।

अर्थात्—पांव वाला चलता फिरता ही यह श्मशान है जो शूद्र है, इस लिए (जिस प्रकार श्मशान में स्वाध्याय वर्जित है, वैसे ही) शूद्र के समीप नहीं पढ़ना चाहिए । इस का भाव तो यही था कि शूद्र को वेद का उपदेश सुनाने का कोई लाभ नहीं । मध्यम काल के तंग दिल लोगों ने यह ही समझ लिया कि यदि वेद

पढ़ने वाले के पास से भी कोई शूद्र निकल जावे, तो शूद्र को दण्ड देना चाहिये। यह भाव नवीन स्मृतिकारों का है, वैदिकों का नहीं।

अज्ञानी होने से ही शूद्र का यज्ञ में अधिकार नहीं है, इसी लिए कहा है—

तस्माच्छूद्रो यज्ञे ऽनवक्लृप्तः। तै० सं० ७।१।१।६॥

अर्थात्—इसी लिए शूद्र यज्ञ में ठीक नहीं समझा गया।

यही चारों वर्ण थे। जो आर्य्य जाति के अङ्ग थे।

वर्ण परिवर्तन

ब्राह्मणों के पाठ से पता लगता है कि यह चारों वर्ण साधारणतया जन्म से ही माने जाते थे। ब्राह्मण अवश्य ही अपने लड़के को ब्राह्मण अर्थात् वेदवेत्ता बनाता था, और क्षत्रिय अपने लड़के को युद्ध विद्या विशारद। ब्राह्मण पुत्र के लिए ब्राह्मण बनना है भी सरल। इसी लिए एक ही कुल में एक के पीछे दूसरा सहस्रों ब्राह्मण बनते गए थे। पर ब्राह्मणों का पाठ यह भी बताता है कि जन्म से वर्ण एक कड़ा नियम न था। तप से, ज्ञान से, घोर परिश्रम से, एक अब्राह्मण भी ब्राह्मण बन सकता था। इसी प्रकार विद्या गुणहीन एक ब्राह्मण भी नाममात्र का ही ब्राह्मण रह जाता था।

ब्राह्मण में कहा है—

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्त्रमासत ते कवषमैलूषं सोमादनयन दास्याः पुत्रः कितवो ऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति।.........स बहिर्धन्वोदूळह पिपासया वित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत्, प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु, इति। ऐ० ब्रा० २। १९॥

अर्थात्—ऋषि जन सरस्वती के तट पर यज्ञ करते थे, उन्हों ने **कवष ऐलूष**[1] को सोम से परे कर दिया, दासी का पुत्र, धोखा देने वाला, अब्राह्मण, किस प्रकार य ह हमारे मध्य में दीक्षित हुआ है। वह बाहर जंगल में गया पिपासा से संतप्त। उसने यह अपोनप्त्र देवता वाला सूक्त देखा। प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु। ऋ० १०।३०॥

---

१ इसी कवष ऐलूष सम्बन्धी एक कथा छागलेयोपनिषद् में मिलती है। वहां भी इसे **दास्याः पुत्रः** कहा है। तुलना करो, कौ० ब्रा० १२। ३॥

इस से प्रतीत होता है कि एक अब्राह्मण भी मन्त्रों का द्रष्टा बन गया। उसे ही ऋषियों ने वेदार्थ द्रष्टा ब्राह्मण मान कर पुनः अपने यज्ञ में बुलाया।

मानव जीवन के सम्बन्ध में ब्राह्मण का एक सुन्दर उपदेश

अभिमान की निन्दा

अभिमान बड़ा बुरा कर्म है। अभिमान करने वाले के जीवन से सारा रस उड़ जाता है। अभिमान और अत्यभिमान करने से ही जर्मन जैसा बड़ा साम्राज्य परास्त हो गया। अभिमान को सब ही बुरा कहते आए हैं। प्राचीन काल में ब्राह्मणग्रन्थ के प्रवचनकर्ता ने भी इस तत्त्व को जान लिया था। इसी लिए शतपथ में कहा है—

तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमानः। ५।१।१।१॥

अर्थात्—इस लिए अतिमान=अभिमान न करे। हार, अधःपतन का ही यह मुख है, जो अभिमान है।
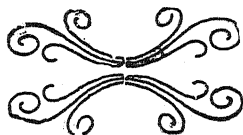
बारहवां अध्याय

आरण्यक ग्रन्थ

१—आरण्यक शब्द और उस का अर्थ

अरण्य अर्थात् एकान्त जङ्गल में रह कर यज्ञों के रहस्य के बताने वाली जिस विद्या का पाठ किया जाता था, वह विद्या जिन ग्रन्थों में बन्द है, उन्हें आरण्यक कहते हैं।

२—सायण और आरण्यक शब्द का अर्थ

ऐतरेय ब्राह्मणभाष्य के प्राक्कथन में सायण लिखता है—

आरण्यव्रतरूपं ब्राह्मणम्।

अर्थात्—जङ्गल में रहने वाले जो वानप्रस्थ लोग थे, वे जो यज्ञ आदि करते थे, उन के इन यज्ञों को बताने वाले ब्राह्मण के समान जो ग्रन्थ हैं, वे आरण्यक हैं।[1]

पुनः ऐतरेयारण्यक भाष्य के प्राक्कथन में सायण लिखता है—

ऐतरेयब्राह्मणे ऽस्ति काण्डमारण्यकाभिधम्।
अरण्य एव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते ॥ ५ ॥
सत्रप्रकरणे ऽनुक्तिररण्याध्ययनाय हि।
महाव्रतस्य तस्यात्र हौत्रं कर्म विविच्यते ॥ ८ ॥

अर्थात्—ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तर्गत ही आरण्यक नाम वाला काण्ड है। वन में ही पढ़ाये जाने के योग्य होने से इस का आरण्यक नाम है।

सत्र प्रकरण में यह विषय नहीं कहा गया, क्योंकि इस का वन में ही पाठ होता है। उस वन में पढ़े जाने वाले महाव्रत का यहां हौत्रकर्म विचार किया जाता है।

सायणप्रदर्शित पूर्वोक्त दोनों अर्थों में थोड़ा सा भेद है। इसी कारण से योरुप में पहले को मानने वाले वैबर और डाइसन और दूसरे अर्थ को मानने वाले ओल्डनबर्ग और मैकडानल आदि हैं।[1]

हमारा विचार है कि अभी तक सारे आरण्यक ग्रन्थ नहीं मिलते। सम्भव है ऐसे भी आरण्यक ग्रन्थ हों, जिन में सायण का एक अर्थ घटे, और ऐसे भी हों, जिन में दूसरा अर्थ घटे।

---

१ कीथ ऐतरेय आरण्यक भूमिका पृ० १६।

रहस्य

आरण्यकों का पुराना नाम **रहस्य** भी है । गोपथ ब्रा० पू० २ । १० ॥ में यही नाम मिलता है । मनु २ । १४० ॥ में भी यही नाम मिलता है । हम पृ० १०० के दूसरे टिप्पण में कह चुके हैं, कि मस्करी रहस्य शब्द का आरण्यक ही अर्थ करता है । वासिष्ठधर्मसूत्र ४ । ४ ॥ में निम्नलिखित पाठ है—

तस्या भर्तुरभिचार उक्तं प्रायश्चित्तं रहस्येषु

अर्थात्—उस स्वतन्त्र (कुमार्गगामिनी) स्त्री के पति का अभिचार और प्रायश्चित्त **रहस्य** में कहा गया है । इस सूत्र का संकेत बृहदारण्यक के अन्तिम भाग की ओर प्रतीत होता है । यदि हमारा अनुमान ठीक है, तो यहां भी रहस्य शब्द से आरण्यक का ही अभिप्राय लिया गया है ।

अनेक आरण्यक ब्राह्मणों का भाग मात्र थे

हम पृ० १०० के चौथे नोट में बोधायन धर्मसूत्र ३।७।७।१६॥ के प्रमाण से यह बात दिखा चुके हैं, कि आरण्यक का वचन भी **ब्राह्मण** कह कर लिखा गया है । दूर क्यों जावें,बृहदारण्यक शतपथ ही का तो भाग है । ऐसे ही जैमिनीय आरण्यक भी जैमिनीय ब्राह्मण का भाग है ।

अनेक उपनिषद् आरण्यकान्तर्गत हैं

इस समय जो अनेक उपनिषद् ग्रन्थ मिलते हैं, उन में से कई एक आरण्यक ग्रन्थों का भाग ही हैं । ऐतरेयोपनिषद् ऐतरेयारण्यकान्तर्गत है, कौषीतकि उपनिषद् शाङ्खायनारण्यकान्तर्गत, तैत्तिरीयोपनिषद् तैत्तिरीयारण्यकान्तर्गत है, इत्यादि ।

तेरहवां अध्याय

उपलब्ध आरण्यकों का वर्णन

ऋग्वेदीय आरण्यक

१—ऐ त रे य आ र ण्य क[1]

ग्र न्थ प रि मा ण—ऐतरेय आरण्यक में कुल पांच आरण्यक हैं। पहले आरण्यक में ५ अध्याय, दूसरे में ७, तीसरे में २, चौथे में १, और पांचवें में ३ अध्याय हैं। सब मिला कर अध्याय संख्या १८ है। प्रत्येक अध्याय खण्डों में विभक्त है।

वि शे ष ता यें—**प्रथमारण्यक** में **महाव्रत** का वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण ३।१–३८॥ आदि में **गवामयन** का वर्णन है। उसी गवामयन में महाव्रत का भी एक दिन होता है। उस दिन के प्रातः, माध्यन्दिन और सायं सवनों का यहां उल्लेख है। इस आरण्यक की भाषा ब्राह्मणशैली की सी ही है।

दूसरे आरण्यक के दो स्पष्ट विभाग हैं। अध्याय १–३ में उक्थ का अर्थ बताया गया है। अध्याय ४–६ **उपनिषद्** है।

तीसरे आरण्यक में संहिता के भेदों का कथन किया है—

अथातो निर्भुजप्रवादाः । पृथिव्यायतनं निर्भुजं दिव्यायतनं प्रतृण्णमन्तरिक्षायतनमुभयमन्तरेण । ३।१।३॥

अर्थात्—निर्भुज=विना विभक्त हुई २ संहिता के अब उच्चारण (कहे जाते हैं।) इस निर्भुज=मूल संहिता का पृथिवी निवास है। प्रतृण्ण=पदपाठ का द्यौ स्थान है। उभयमन्तरेण=क्रमपाठ का अन्तरिक्ष स्थान है।

३।५॥ में स्वर, स्पर्श और ऊष्म आदि वर्णों के भेद कहे हैं। इस आरण्यक में ऋषियों के नाम अधिक आते हैं।

चौथे आरण्यक में केवल महानाम्नी ऋचाओं का संग्रह है। ये ऋचायें सामवेद की **नैगेय शाखा** में भी मिलती हैं।

---

१ **क–ऐतरेय आरण्यकम्**, सायणभाष्यसहितम्। सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र। एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७६।

ख–ऐतरेय आरण्यक, डाक्टर कीथ सम्पादित, आक्सफोर्ड, सन् १९०९।

पांचवे आरण्यक में निष्कैवल्य शस्त्र का, जो महाव्रत के मध्यन्दिन सवन में पढ़ा जाता है, वर्णन है। यह आरण्यक सूत्रों से मिलती जुलती भाषा में है।

स ङ्क ल न—ऐतरेय महिदास जो ऐतरेय ब्राह्मण का सङ्कलन और प्रवचन कर्ता है, आरण्यक के भी पहले तीन आरण्यकों का प्रवचन करने वाला है।

चौथे आरण्यक का सङ्कलन **आश्वलायन** ने किया था। षड्गुरुशिष्य ऋक्-सर्वानुक्रमणी वृत्ति की भूमिका में लिखता है—

शौनकीयं च दशकं तच्छिष्यस्य त्रिकं तथा।

द्वादशाध्यायकं सूत्रं चतुष्कगृह्यमेव च॥

चतुर्थारण्यकं चेति ह्याश्वलायनसूत्रकम्।

अर्थात्—शौनक ने ऋग्वेद सम्बन्धी दस ग्रन्थ लिखे, और उस के शिष्य आश्वलायन ने तीन ग्रन्थ लिखे। वे तीन ग्रन्थ ये हैं—(१) बारह अध्याय का श्रौतसूत्र, (२) चार अध्याय का गृह्यसूत्र, और चौथा आरण्यक, यही आश्वलायन के सूत्र हैं।

पांचवें आरण्यक का सङ्कलन **शौनक** ने किया है। ऐतरेय आरण्यक के भाष्य में सायण कहता है—

अत एव पञ्चमे शौनकेनोदाहृतः। १।४।१॥

ताश्च पञ्चमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः। १।४।१॥

अर्थात्—पांचवें आरण्यक में शौनक ऐसा कहता है। इस से प्रतीत होता है, कि सायण की दृष्टि में पांचवे आरण्यक का कहने वाला शौनक ही था।

ऐतरेय आरण्यक के पाठ के सम्बन्ध में अपने प्राक्कथन में कीथ कहता है—

"As might be expected they (the verbal coincidences between the Aitareya Bráhmana and the Aranyaka) are constant and show unmistakably the connexion of the two works."

अर्थात्—ऐतरेय ब्राह्मण और आरण्यक की भाषा में, उन के शब्द-प्रयोग में बहुत सदृशता है। इस से ज्ञात होता है कि दोनों ग्रन्थों का परस्पर सम्बन्ध है।

फिर अपनी भूमिका पृ० १ पर कीथ ने लिखा है—

"but it (the use of additional Mss.) establishes the fact that the tradition as to the text seems unbroken."

अर्थात्—अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रयोग से निश्चित हो जाता है, कि आरणयक का पाठ विना टूटने आदि के शुद्धरूप में ही हमारे तक चला आ रहा है।

२—शांखायन आरण्यक[1]

ग्रन्थ परिमाण—शाङ्खायन आरणयक में कुल पन्द्रह अध्याय हैं। पहले अध्याय में ८, दूसरे में १८, तीसरे में ७, चौथे में १५, पांचवें में ८, छठे में २०, सातवें में २३, आठवें में ११, नवमें में ८, दसवें में ८, ग्यारहवें में ८, बारहवें में ८, तेरहवें में १, चौदहवें में २ और पन्द्रहवें में १ खणड है। कुल आरणयक में १३७ खणड हैं।

विशेषतायें—यह आरणयक प्रायः सब ही विषयों में ऐतरेय आरणयक से बहुत मिलता जुलता है। जो महाव्रत आदि कर्तव्य ऐतरेय आरणयक में कहे गये हैं, वही इस में कहे गये हैं।

इस के पहले दो अध्याय किसी २ हस्तलेख में ब्राह्मण का भाग ही माने गए हैं।

देशों में से **उशीनर, मत्स्य, कुरुपञ्चाल** और **काशिविदेह** का यहां वर्णन मिलता है।

इस के तीसरे अध्याय से कौषीतकि उपनिषद् का आरम्भ होता है, और छठे के अन्त में उपनिषद् समाप्त होता है। इस प्रकार उपनिषद् के चार अध्याय ही हैं।

सङ्कलन—आरणयक के अन्त में एक वंश मिलता है। उस में कहा है—

गुणाख्याच्छाङ्खायनादस्माभिरधीतम्। १५॥

अर्थात्—गुणाख्य शाङ्खायन से हम ने यह विद्या पढ़ी है।

यह **अस्माभिः** शब्द का प्रयोग करने वाले गुणाख्य शाङ्खायन के अनेक शिष्य होंगे, जिन्हों ने गुणाख्य शाङ्खायन से सुन कर इस आरणयक को प्रचलित किया होगा। अथवा सारे १४ अध्यायों का प्रवचन शाङ्खायन ने किया होगा, और अन्तिम वंश का आधुनिक क्रम उस के शिष्यों ने जोड़ा होगा।

---

१ क—**शाङ्खायन आरणयक,** अध्याय १—२॥ सम्पादक डा० वाल्टर फ्राइडलणडर बर्लिन सन् १९००।

ख—**शाङ्खायन आरणयक** अध्याय ७—१५॥ सम्पादक डा० कीथ, सन् १९०९।

ग—**शाङ्खायनारण्यकम्,** आनन्दाश्रम पूना, सम्पादक पं० श्रीधर शास्त्री पाठक। सन् १९२२।

यजुर्वेदीय आरण्यक

३—बृहदारण्यक (माध्यन्दिन)[1]

ग्रन्थ परिमाण – इस आरण्यक में कुल ६ अध्याय हैं। पहले अध्याय में ६ ब्राह्मण, दूसरे में ५, तीसरे में ९, चौथे में ५, पांचवें में १५, और छठे अध्याय में ४ ब्राह्मण हैं। कुल मिला कर सारे आरण्यक में ४४ अवान्तर ब्राह्मण हैं। प्रत्येक अवान्तर ब्राह्मण खण्डों या कण्डिकाओं में विभक्त है।

पांचवें और छठे अध्याय को आचार्यों ने खिल माना है। इन छः अध्यायों से पहले कभी दो अध्याय और थे, जो आरण्यक का भाग माने जाते थे। उन में कर्मकाण्डविशेष लिखा है। शङ्कर आदि आचार्यों ने कर्मकांड विषयक होने से काण्व आरण्यक मे उन पर अपना भाष्य नहीं किया। इसी लिये पीछे से वह दोनों अध्याय आरण्यक से जुदा हो गए, और आरण्यक छः अध्याय का ही रह गया।

विशेषतायें—यह आरण्यक माध्यन्दिन शतपथ का ही भाग है। शतपथ १०।६।४॥ से इसका आरम्भ होता है। पर शतपथ का अगला सारा भाग ही आरण्यक नहीं है। जो आरण्यक है, वह ब्राह्मण में से छांट२ कर निकाला गया प्रतीत होता है। काण्व आरण्यक से इन का अन्तर कुछ पाठभेदों के रूप में ही है। जो विशेषतायें काण्वबृहदारण्यक की आगे लिखी जायेंगी, वही इस शाखा की समझनी चाहियें।

संकलन– इस का संकलन माध्यन्दिन शतपथ के साथ ही हुआ है।

४—बृहदारण्यक (काण्व)[2]

ग्रन्थ परिमाण- इस आरण्यक में कुल छः ब्राह्मण या अध्याय हैं। पहले अध्याय में ६ ब्राह्मण, दूसरे में ६, तीसरे में ९, चौथे में ६, और पांचवें में १५, और छठे में ५ ब्राह्मण हैं। सारे आरण्यक में कुल ४७ ब्राह्मण हैं। प्रत्येक अवान्तर ब्राह्मण खण्ड या कण्डिकाओं में विभक्त है। अध्याय सम्बन्ध में इस शाखा का भी वैसा ही हाल हुआ है, जैसा माध्यन्दिन आरण्यक का हाल पहले लिखा जा चुका है।

---

[1] BRHADARANJAKOPANISHAD in der MADHJAMDINA-RECENSION, सम्पादक ओटो बिहट्लिङ्क, सेंटपीटर्सबर्ग, सन् १८८९।

[2] इस के अब तक अनेकों ही संस्करण छप चुके हैं।

वि शे ष ता यें – वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करने वाला, कौन ऐसा भद्र पुरुष है, जिस ने इस ग्रन्थ का पाठ न किया हो। अत एव इस का संक्षिप्त वर्णन ही यहां किया जाता है। इस आरण्यक को उपनिषद् भी कहते हैं। यह नाम क्यों पड़ गया, इस का उत्तर इतना ही दिया जा सकता है कि इस आरण्यक में आलङ्कारिक रूप से यज्ञ के रहस्य का थोड़ा सा वर्णन करके अधिकांश में आत्मज्ञान के तत्त्वों का ही उपदेश किया है। **याज्ञवल्क्य** इस आरण्यक का प्रधान पात्र है। उस के साथ विदेहराज **जनक** का भी इस आरण्यक में पर्याप्त भाग है। इसी आरण्यक में **संन्यास** का स्पष्ट शब्दों में विधान पाया जाता है—

एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति एतद्ध स्म वै तत्पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नो ऽयमात्माऽयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति। ४।४।२२॥

अर्थात्–इसी आत्मा को जान कर मुनि होता है। इसी ब्रह्मलोक की इच्छा करते हुए **परिव्राजक=संन्यासी** संन्यास धारण करते हैं। पूर्व काल के विद्वान् भी ऐसा ही कहते हैं और प्रजा की कामना नहीं करते। क्या प्रजा से हम करेंगे, जब कि यह आत्मा और यह लोक ही हमारे लिए इष्ट है। वे कहते हैं, पुत्रैषणा, वित्तैषणा, और लोकैषणा से उठ कर भिक्षा वृत्ति ही करते हैं।

इसी आरण्यक में गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियां ब्रह्मवादिनीयों का उत्कृष्ट रूप उपस्थित करती हैं।

ब्रह्म, आत्मा और पुनर्जन्म का इस आरण्यक मे बड़ा विषद वर्णन किया गया है। ये सब विषय आगे यथास्थान लिखे जायेंगे।

संसार का कौन सा देश है, कौन सी सभ्यता है, कौन सा ज्ञान विज्ञान है, जो इतने सत्यवक्ता, निस्पृह आत्मज्ञानी उत्पन्न कर सका है, जितनों का कि यहां उल्लेख मिलता है।

स ङ्क ल न—शतपथ के पाठ से हमारा यह दृढ़ विश्वास हो गया है, कि बृहदारण्यक का सङ्कलन भी शतपथ ब्राह्मण के साथ ही हुआ था। आरण्यक ब्राह्मण का अङ्ग है, उस से किसी प्रकार भी पृथक् नहीं।

५—तै त्ति री या र ण्य क[1]

ग्र न्थ प रि मा ण—इस आरण्यक में कुल दस प्रपाठक हैं। दसवें प्रपाठक की बड़ी अस्त व्यस्त दशा है। सायण अपने भाष्य के आरम्भ में इसे खिल काण्ड ही समझता है—

यथा बृहदारण्यके सप्तमाष्टमाध्यायौ[2] खिलकाण्डत्वेनाचार्यैरुदाहृतौ, तथेयं नारायणीया व्याख्या याज्ञिक्युपनिषदपि खिलकाण्डरूपा तल्लक्षणोपेतत्वात्।

अर्थात्—जिस प्रकार बृहदारण्यक में सातवां[2] और आठवां[2] अध्याय आचार्यों ने खिल काण्ड रूप माने हैं, उसी प्रकार यह नारायणोपनिषद्रूपी नारायण की व्याख्या खिलकाण्डरूपी याज्ञिक्युपनिषद् है, वैसे ही लक्षणों से युक्त होने से।

पहले प्रपाठक में ३२ अनुवाक, दूसरे में २०, तीसरे में २१, चौथे में ४२, पांचवें में १२, छठे में १२, सातवें में १२, आठवें में ६, नवमें में १० अनुवाक हैं। कुल मिला कर ये १७० अनुवाक बनते हैं। दसवां प्रपाठक खिल ही नहीं, प्रत्युत उस की अनुवाक संख्या भी निश्चित नहीं है। सायण इस प्रपाठक के भाष्य के आरम्भ में लिखता है—

तत्र द्रविडानां चतुःषष्ठ्यनुवाकपाठः। आन्ध्राणामशीत्यनुवाकपाठः। कर्णाटकेषु केषाञ्चिच्चतुःसप्ततिपाठः। अपरेषां नवाशीतिपाठः। तत्र वयं पाठान्तराणि यथासम्भवं सूचयन्तो ऽशीतिपाठं[3] प्राधान्येन व्याख्यास्यामः।

---

१ क—**तैत्तिरीयारण्यकं** सायणभाष्यसहितम्। सम्पादक राजेन्द्र लाल मित्र, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, सन् १८७२।

ख—**तैत्तिरीयारण्यकं** श्रीमत्सायणाचार्य विरचितभाष्यसमेतम्। भाग १, २, सन् १८६७, १८६८।

२ आजकल का पांचवां और छठा अध्याय।

३ यह पाठ राजेन्द्र लाल के संस्करण का है। उसी के संस्करण मे केवल ६४ अनुवाकों पर ही सायणभाष्य छपा है। आनन्दाश्रम संस्करण में इस स्थान पर मूल में चतुःषष्टिपाठं = ६४ अनुवाकों के भाव का ही पाठ छापा गया है।

अर्थात्—नारायणोपनिषद् में अथवा तैत्तिरीयारण्यक के दशम प्रपाठक में द्राविडपाठ में ६४ अनुवाक हैं। आन्ध्रपाठ में ८० अनुवाक हैं। कर्णाटक के कई पाठों में ७४ अनुवाक और दूसरों में ८९ अनुवाक हैं। ऐसी अवस्था में हम यथासम्भव पाठान्तरों को देते हुए ८० अनुवाकों वाले आन्ध्रपाठ का प्रधानरूप से व्याख्यान करेंगे।

अहो! प्रक्षेपकों के प्रमाद ने इस आर्षग्रन्थ का कैसा हाल किया है। वेदभक्त बेचारा सायण भी पाठान्तर देने पर ही सन्तुष्ट हुआ है। मूल ग्रन्थ का उसे भी पता नहीं चल सका।

विशेषतायें—तैत्तिरीयोपनिषद् इसी आरण्यक का भाग है। सातवें प्रपाठक से आरम्भ हो कर नवमें के अन्त में इस की समाप्ति होती है।

इसी आरण्यक में कई उपयोगी निर्वचन पाये जाते हैं—

कश्यपः पश्यको भवति। यत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्।
१।८।८॥

अर्थात्—कश्यप देखने वाला होता है। जो (सर्वद्रष्टा परमात्मा) सब कुछ देखता है, सूक्ष्म होने से।

इसी आरण्यक में **व्यास** जी का नाम मिलता है—

स होवाच व्यासः पाराशर्यः। १।९।२॥

अर्थात्—वह पराशर का पुत्र व्यास बोला।

१।१२।३॥ में सुब्रह्मण्या मिलती है।

१।२०।१॥ में नरकों का वर्णन मिलता है।

जलों के चार रूप कहे गए हैं—

चत्वारि वा अपाᳬ रूपाणि। मेघो विद्युत्। स्तनयित्नुर्वृष्टिः।
१।२४।१॥

अर्थात्—चार ही जलों के रूप हैं। बादल, बिजली, गर्जना और वर्षा।

और भी छः प्रकार के जल कहे गये हैं—

(१) **वर्ष्याः**—वर्षा के जल। १।२४।१॥

(२) **कूप्याः**—कूप के जल। १।२४।२॥

(३) **स्थावराः**—झील आदि के जल । १।२४।२॥

(४) **वहन्तीः**—नदी आदिकों में बहने वाले जल । १।२४।२॥

(५) **सम्भार्याः**—घड़े आदि में पड़े जल ।

(६) **पल्वल्याः**—चश्मे आदि के जल ।

एक मन्त्र में किसी विचित्र **रथ** का वर्णन है—

रथꣳ सहस्रबन्धुरं । पुरुश्चक्रꣳ सहस्राश्वम् । १।३१।१॥

अर्थात्—ऐसा रथ, जिस में एक हजार धुरे हैं, अनेक चक्र हैं, और एक हजार घोड़े हैं। यदि यह सूर्य का वर्णन नहीं है, तो अवश्य किसी विचित्र रथ का वर्णन है।

यज्ञोपवीत शब्द भी पहले पहले इसी आरण्यक में मिलता है—

प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः ।...यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत् । २।१।१॥

अर्थात्—यज्ञोपवीत धारण किए हुए का यज्ञ भले प्रकार स्वीकार किया जाता है। जो कुछ भी यज्ञोपवीत धारण किया हुआ ब्राह्मण पढ़ता है। वह यज्ञ ही करता है।

श्रमण शब्द जो बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं का द्योतक बना, इस आरण्यक २।७।१॥ में तपस्वी के अर्थ में मिलता है।

सब आरण्यकों में से तैत्तिरीयारण्यक बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है। दूसरे आरण्यकों के समान इस आरण्यक में अनेक मन्त्रों का व्याख्यान मिलता है।

६—मैत्रायणीय आरण्यक
अथवा
बृहदारण्यक चरकशाखोक्त

ग्रन्थ परिमाण—इस आरण्यक में कुल सात प्रपाठक हैं। पहले प्रपाठक में ४ खण्ड, दूसरे में ७, तीसरे में ५, चौथे में ६, पांचवें में २, छठे में ३८ और सातवें में ११ खण्ड हैं। कुल मिला कर खण्डसंख्या ७३ है।

विशेषतायें—यह आरण्यक आज कल **मैत्र्युपनिषत्** के नाम से प्रसिद्ध है। रामतीर्थविरचितदीपिकासहित यह आनन्दाश्रम पूना के **उपनिषदां समुच्चयः** ग्रन्थ में पृ० ३४५-४७५ तक छपा है। निर्णयसागर के १०८ उपनिषदों के संग्रह में एक **मैत्रायण्युपनिषत्** पृ० १५६-१६५ तक छपा है। एफ० ओ०

श्रेडर के **माईनर उपनिषद्स** में पृ० १०८-१२६ तक एक **मैत्रेयोपनिषत्** छपा है। अड्यार के **सामान्य वेदान्त उपनिषदों** में भी पृ० ३८८-४१५ तक यह **मैत्रायणयुपनिषत्** नाम से ही छपा है। इन स्थानों में प्रपाठकों की संख्या आदि निम्नलिखित प्रकार से है—

आनन्दाश्रम.......................७ प्रपाठक
निर्णयसागर.......................५ ,,
श्रेडर संस्करण.......................३ अध्याय
सामान्य वेदान्त उप०...... ....४ प्रपाठक

आनन्दाश्रम संस्करण को छोड़कर शेष तीनों स्थानों के पाठ आनन्दाश्रम संस्करण के प्रथम प्रपाठक के दूसरे खण्ड से आरम्भ होते हैं। श्रेडर का पाठ शेष तीनों से बहुत ही भिन्न है। खंड विभाग भी सब ग्रन्थों में बड़ा भिन्न है। हमारे पास एक हस्तलिखित ग्रन्थ है। उसके अन्त में लिखा है—

इति सप्तम प्रपाठक इति चर्कंषाखोक्त बृहदारण्य उपनीषत सुसमाप्त ॥ शुभं भवतु ॥......॥ सके १६८७ माहे फाल्गुण......

यद्यपि यह अन्तिम लेख बहुत अशुद्ध है, पर मूलपाठ में इतनी अशुद्धि नहीं है। यह ग्रन्थ मैं एक मैत्रायणी शाखा अध्येतृ ब्राह्मण के घर से लाया था।

इन सब ग्रन्थों के देखने से मेरा अनुमान है कि सप्तप्रपाठकात्मक मैत्र्युपनिषत् ही **चरकशाखोक्त बृहदारण्यक** है। मैत्रायणी चरकों का अवान्तर विभाग है। इस लिए जिस प्रकार कठसंहिता को **चरकशाखायाम्**...कह सकते हैं, वैसे ही इस मैत्रायणी आरण्यक को भी चरक शाखोक्त बृहदारण्यक कह सकते हैं। **मैत्रायणी उपनिषत्** इसी आरण्यक का भाग है। मूल हस्तलेखों की अस्त व्यस्त दशा में उस का ठीक क्रम अभी तक नहीं जाना जा सकता।

इस आरण्यक में कई भाग बहुत नवीन प्रतीत होते हैं। आर्यावर्त के प्राचीन अनेक चक्रवर्ती राजाओं के नाम इसी में मिलते हैं—

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्न-भूरिद्युम्न-इन्द्रद्युम्न-कुवलयाश्व-यौवनाश्व-वध्र्यश्व-अश्वपति-शश-बिन्दु-हरिश्चन्द्र-अम्बरीष-ननक्तु-सर्याति-ययाति-अनरण्य-अक्षसे-नादयः। अथ मरुत्त भरत प्रभृतयो राजानः...... ।

अर्थात्—ये सब चक्रवर्ती राजा हो चुके हैं। पांचवें प्रपाठक से **कौत्सायनी स्तुति** का आरम्भ होता है। इस में ब्रह्म को अनेक नामों से स्मरण किया गया है। इसी आरण्यक में प्राण, अग्नि और परमात्मा शब्दों को पर्यायवाची माना है—

प्राणो ऽग्निः परमात्मा । ६ । ९ ॥

अर्थात्—परमात्मा का ही प्राण और अग्नि नाम है। इस आरण्यक के शुद्ध संस्करण की बड़ी आवश्यकता है।

सामवेदीय आरण्यक

७—त ल व का र आ र ण्य क

अथवा

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण

ग्र न्थ प रि मा ण—इस में चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय आगे अनुवाकों और खण्डों में विभक्त है। सारा विभाग निम्नलिखित प्रकार का है—

	प्रथमाध्याय	द्वितीयाध्याय	तृतीयाध्याय	चतुर्थाध्याय
१ अनुवाक में	७ खण्ड	२ खण्ड	५ खण्ड	१ खण्ड
२ ,, ,,	३ ,,	४ ,,	५ ,,	१ ,,
३ ,, ,,	४ ,,	३ ,,	४ ,,	१ ,,
४ ,, ,,	४ ,,	३ ,,	५ ,,	१ ,,
५ ,, ,,	१ ,,	३ ,,	९ ,,	१ ,,
६ ,, ,,	३ ,,		९ ,,	३ ,,
७ ,, ,,	२ ,,		५ ,,	२ ,,
८ ,, ,,	३ ,,			५ ,,
९ ,, ,,	३ ,,			२ ,,
१० ,, ,,	२ ,,			४ ,,
११ ,, ,,	२ ,,			५ ,,
१२ ,, ,,	५ ,,			२ ,,
१३ ,, ,,	२ ,,			
१४ ,, ,,	४ ,,			
१५ ,, ,,	४ ,,			
१६ ,, ,,	३ ,,			
१७ ,, ,,	३ ,,			
१८ ,, ,,	५ ,,			
खण्ड संख्या	६० ,,	१५ ,,	४२ ,,	२८=१४५

हम ने पृ० २० पर बड़ोदा के सूचीपत्र, भाग प्रथम पृ० १०५ के कोशानुसार खण्ड विभाग दिया है। तदनुसार उपनिषद् ब्राह्मण में कुल खण्ड १५४ हैं। सम्भव है ५ और ४ के विपर्यय से १४५ का ही १५४ हो गया है।

विशेषतायें—इस आरण्यक की भाषा ब्राह्मणों की ही भाषा है। चौथे अध्याय के १०वें अनुवाक से प्रसिद्ध केनोपनिषद् का आरम्भ होता है। और उसी अध्याय के उसी अनुवाक अर्थात चार खण्डों में ही उस की समाप्ति हो जाती है।

इस आरण्यक में अनेक मन्त्रों की बड़ी सुन्दर व्याख्या पाई जाती है। अनेक सामों का इस में वर्णन है। बहुत से आचार्यों के नाम भी इस में मिलते हैं।

सङ्कलन—इस में कोई सन्देह नहीं कि ब्राह्मण के समान आरण्यक भाग का सङ्कलन भी जैमिनि और तलवकार ने ही किया होगा।

चौदहवां अध्याय

आरण्यकों का सङ्कलन काल

इस में कोई सन्देह नहीं, कि आरण्यकों का पर्याप्त भाग, उन्हीं आचार्यों का प्रवचन किया हुआ है, जिन्होंने वे ब्राह्मण कहे, जिन के साथ इन आरण्यकों का सम्बन्ध है। ऐतरेय आरण्यक का वर्णन करते हुए हम लिख चुके हैं, कि ऐतरेय आरण्यक के चौथे और पांचवें आरण्यक का सङ्कलन आश्वलायन और शौनक ने क्रमशः किया। हम यह भी ब्राह्मणों के सङ्कलनाध्याय में लिख चुके हैं, कि ब्राह्मणों का सङ्कलन लगभग महाभारत-काल में हुआ था। उस महाभारत काल से **शौनक** आदि आचार्यों के काल का कितना अन्तर है, यह विषय अब विचारणीय है। योरुप के विद्वान् ऐसा मानते हैं, कि शौनक आदि आचार्य ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी पूर्व तक हुए हैं। हमारा मत है कि शौनक आदि आचार्य महाभारत काल से तीन चार पीढ़ियों के अन्दर ही अन्दर हुए हैं। अपने मत की पुष्टि के लिए हम पहले यह लिखना चाहते हैं कि **शौनक**, आश्वलायन, कात्यायन, यास्क, पाणिनि, पिङ्गल, व्याडी और कौत्स आदि आचार्यों का क्या सम्बन्ध था। इन का सम्बन्ध यदि निश्चित हो जावे, तो इस ग्रन्थ के अगले भागों में बड़े काम में आयगा। हमारा मत है कि—

शौनक, आश्वलायन, कात्यायन, यास्क, पाणिनि, पिङ्गल, व्याडी और कौत्स आदि आचार्य समकालीन थे।

अब इन में से एक २ का सङ्क्षिप्त वर्णन क्रमानुसार यहां किया जायगा।

शौनक

शौनक के सम्बन्ध में षड्गुरुशिष्य ने अपनी ऋक् सर्वानुक्रमणी वृत्ति की भूमिका में लिखा है—

शौनकीया दशग्रन्थास्तदा ऋग्वेदगुप्तये।
आर्ष्यनुक्रमणीत्याद्या छान्दसी दैवती तथा॥
अनुवाकानुक्रमणी सूक्तानुक्रमणी तथा।
ऋक्पादयोर्विधाने च बार्हद्दैवतमेव च॥
प्रातिशाख्यं शौनकीयं स्मार्तं दशममुच्यते।

अर्थात्—शौनक के दस ग्रन्थ ऋग्वेद की रक्षा के लिए (थे ।) (१) आर्षानुक्रमणी (२) छन्दोऽनुक्रमणी (३) देवतानुक्रमणी (४) अनुवाकानुक्रमणी (५) सूक्तानुक्रमणी (६) ऋग्विधान (७) पादविधान (८) बृहद्देवता (९) प्रातिशाख्य (१०) शौनक स्मृति ।

इन में से बृहद्देवता के सम्पादक प्रो० मैकडानल का अनुमान है, कि बृहद्देवता यदि शौनक का नहीं, तो शौनक के किसी निकटवर्ती शिष्य का तो अवश्य ही है । मैकडानल लिखता है—

my conclusion, therefore, is that the writer was not Sáunaka, but a teacher of his school, who was not separated from him by any great length of time.[1]

हमारा अनुमान है, कि बृहद्देवता शौनक का बनाया हुआ ही माना जा सकता है । हां, इस का परिवर्धन उस के किसी अत्यन्त समीपवर्ति शिष्य ने किया है । अब इस बृहद्देवता में **यास्क** का नाम और उस का मत बीस स्थलों पर उद्धृत है ।

बृहद्देवता के निम्नलिखित श्लोक में यास्क के निरुक्त का मत उद्धृत कर के उस पर विचार किया गया है—

पदमेकं समादाय द्विधा कृत्वा निरुक्तवान् ।
पूरुषादः पदं यास्को वृक्षे वृक्ष इति त्वृचि ॥ २।११॥

अर्थात्—वृक्षे वृक्षे ऋ० १० । २७ । २२ ॥ में आए हुए "पूरुषादः" एक पद का यास्क ने दो पदों में विभाग कर के निर्वचन किया है । यह बात निरुक्त २ । ६॥ के देखने से ज्ञात हो जाती है, क्योंकि वहीं यास्क इस पद का अर्थ "पुरुषानदनाय" करता है । बृहद्देवता के इस से अगले श्लोकों में भी यास्कीय निरुक्त की अनेक बातें उद्धृत की गई हैं ।

पुनः शौनक अपने प्रातिशाख्य में लिखता है—

न दाशतय्येकपदा काचिदस्तीति वै यास्कः । सूत्र ९९३ ।

अर्थात्—दशमण्डलयुक्त ऋग्वेद में कोई एकपदा ऋक् नहीं है, ऐसा यास्क मानता है ।

---

१ बृहद्देवता, भूमिका, पृ० २४ ।

इसी बात को पिङ्गल छन्दो विचिति का भाष्यकार यादव प्रकाश पिङ्गल सूत्र ३ । ७ ॥ पर भाष्य करता हुआ लिखता है—

पादजातीयकत्वादेवैकपदानामध्यासवशाद् "दाशतया एकपदा [नास्ति] इति यास्क आचार्य्यः ।" यदा अध्यासः—

वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नॄन् द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम तवावसा तरेम ॥ [ऋ० ६।२।११॥]

वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।[ऋ० १।१२७।१॥]

इत्यादयो यमकाभासाः पादाः । पूर्वस्य ऋचः पादा एव । न पृथगृचः । एवमेकपदा अपि "भद्रं नो अपि वातय मनः [ऋ० १०।२०।१॥] इत्येकं पदं विना स तु पृथगेवेति यास्को मन्यते ।

यादवप्रकाश का संकेत शौनक प्रदर्शित प्रातिशाख्यस्थ सूत्र की ओर ही है ।

इन बातों से प्रतीत होता है कि यास्क या तो शौनक का पूर्ववर्ति था, और या वह उस का समकालीन ही था । जैसा हम आगे चल कर सिद्ध करेंगे, ये दोनों आचार्य एक दूसरे के साथी ही थे ।

आश्वलायन

आश्वलायन शौनक का शिष्य है । षड्गुरुशिष्य लिखता है—

शौनकस्य तु शिष्योऽभूद्भगवानाश्वलायनः ।

अर्थात्—भगवान् आश्वलायन शौनक का शिष्य था । इस सिद्धान्त को सब ही विद्वान् मानते हैं ।

अब यदि शौनक और यास्क समकालीन हैं, तो शौनक का शिष्य होने से आश्वलायन भी इन्हीं का लगभग समकालीन है ।

कात्यायन

कात्यायन भी शौनक का शिष्य था । ऋक् सर्वानुक्रमणी-वृत्ति में षड्गुरुशिष्य लिखता है—

ननु च एको हि शौनकाचार्यशिष्यो भगवान् कात्यायनः । कथं बहुवचनम् । १ । १ ॥

अर्थात्—शौनकाचार्य का शिष्य भगवान् कात्यायन अकेला ही है । यह बहुवचन **अनुक्रमिष्यामः**=क्रमशः आरम्भ करेंगे, कैसे प्रयुक्त हुआ है ।

षड्गुरुशिष्य की सम्मति में यही कात्यायन है, जिस ने कात्यायन श्रौतसूत्र, उपग्रन्थसूत्र, वार्तिक पाठ आदि अनेक ग्रन्थ बनाए।[1]

यदि षड्गुरुशिष्य की यह सब बात मान ली जाय, तो शौनक, आश्वलायन, कात्यायन, यास्क और पाणिनि समकालीन हो जाएंगे।

यास्क

आचार्य यास्क अपने निरुक्त में पाणिनि और शौनक का एक एक सूत्र उद्धृत करता है—

परः सन्निकर्षः संहिता। पदप्रकृतिः संहिता। निरुक्त १।१७॥

यह सूत्र यास्क ने पाणिनि और शौनक दोनों आचार्यों के ग्रन्थों में से लिए हैं, इस के मानने में सन्देह नहीं होना चाहिए।

निरुक्तोद्धृत दूसरा सूत्र अवश्य ही किसी प्रातिशाख्य का है। भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय का टीकाकार पुण्यराज दो स्थलों पर इस सूत्र को ऐसे उद्धृत करता है—

इह च "पदप्रकृतिः संहिता" इति प्रातिशाख्यम्।

तथा—**तत्कथं "पदप्रकृतिः संहिता" इति प्रातिशाख्यम्।**

शौनकीय प्रातिशाख्य में एक सूत्र है—

संहिता पदप्रकृतिः। २। १॥

---

१ षड्गुरुशिष्य का एक श्लोकार्ध निम्नलिखित प्रकार से है—

स्मृतेश्च कर्ता श्लोकानां भ्राजमानां च कारकः॥

मैक्समूलर इस का अर्थ इस प्रकार करता है—

"the Slokas of the Smriti,"

और अपने नोट में लिखता है—

Bhrajamana, is unintelligible, it may be Parshada.

अर्थात्—भ्राजमान पद समझ में नहीं आता। यह पार्षद हो सकता है। हमारा विचार है, कि श्लोक बड़ा सरल है, और इस का अनुवाद इस प्रकार होना चाहिए—

कात्यायन स्मृति का कर्ता था, और भ्राज नामक श्लोकों का भी कर्ता था। भ्राज नाम वाले श्लोक कात्यायन ने बनाए थे, ऐसा महाभाष्य पस्पशाह्निक में लिखा है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि शौनक के ऋक् प्रातिशाख्यान्तर्गत इस सूत्र को बदल कर ही यास्क

पदप्रकृतिः संहिता ।

लिख रहा है। इस का कारण भी है। यास्क पाणिनीयाष्टक के सूत्र

परः सन्निकर्षः संहिता ।

को पहले उद्धृत करता है। इस में संज्ञापद संहिता अन्त में है। अतएव यास्क ने शौनक के वाक्य को भी वैसा ही बना दिया है।

यहां तक हम ने देख लिया कि यास्क पाणिनि और शौनक के सूत्रों को उद्धृत करता है।

निघण्टु और निरुक्त का कर्ता यास्क कितने और ग्रन्थों का कर्ता था, उसका पूरा पता नहीं। हां इतना पता चलता है कि उसने छन्द शास्त्र पर कोई ग्रन्थ लिखा था। ऋक् प्रातिशाख्य का टीकाकार उवट प्रथम सूत्र (बनारस संस्करण पृष्ठ १७ पंक्ति १६, १७) की व्याख्या में लिखता है—

तथा सर्वैश्छन्दोविचित्यादिभिः पिङ्गल-यास्क-सैतवप्रभृतिभिर्यत्सामान्येनोक्तं लक्षणं ।

इस से निश्चय होता है कि जिस प्रकार पिङ्गल का छन्दो विचिति ग्रन्थ है, वैसे ही यास्क और सैतव के भी छन्द शास्त्र संबन्धी कोई ग्रन्थ थे।

निश्चय ही यास्क ने कोई छन्द शास्त्र बनाया था। पिङ्गल स्वयं लिखता है—

उरो बृहती यास्कस्य । ३।३०॥

अर्थात्—न्यङ्कुसारिणी को ही यास्क उरो बृहती मानता है। यह बात उस ने यास्क के छन्दः शास्त्र में ही देखी होगी।

पाणिनि

हम ने पूर्व लिखा है, कि यास्क पाणिनि के सूत्र को उद्धृत करता है। यदि यह बात ठीक मान ली जावे, तो पिङ्गल को भी पूर्वोक्त सब आचार्यों का समकालीन मानना पड़ेगा। अतः इस अवसर पर पिङ्गल के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से लिख दिया जावे, तो अनुचित न होगा।

पिङ्गल[1]

(१) पिङ्गल अथवा पिङ्गलनाग भगवान् पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता था। यह बात षड्गुरुशिष्य (वि० संवत् १२४४)[2] अपनी स्वरचित वेदार्थदीपिका में लिखता है—

तथा च सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन "क्वचिन्नवकाश्चत्वारः" [पिङ्गलछन्दोविचिति ३।३३॥] इति परिभाषा ।७।९॥

अर्थात्—पाणिनि के अनुज=कनिष्ठ भ्राता भगवान् पिङ्गल ने "क्वचित......" सूत्र बनाया। यह सूत्र पिङ्गल के छन्दोविचिति ग्रन्थ का ३। ३३॥ है। अतः निश्चय हुआ कि षड्गुरुशिष्य को जो परम्परा ज्ञात थी, तदनुसार पिङ्गल-छन्दःसूत्रों का कर्ता पिङ्गलनाग पाणिनि का छोटा भाई था। सबसे पहले वैबर(इण्डीशस्टूडीन सन्१८६३) और फिर मैक्समूलर ने यह बात लिखी थी।

(२) पिङ्गलनाग किस पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता था? अष्टाध्यायी वाले का वा किसी अन्य का? यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। पाणिनि चाहे कितने हो गए हों, पर पिङ्गल का ज्येष्ठ भ्राता, अष्टाध्यायी वाला ही पाणिनि था, यह बात अगले प्रमाण से स्पष्ट हो जायगी।

(३) ऋषि दयानन्द सरस्वती प्रणीत 'अष्टाध्यायी भाष्यम्' का मैं सम्पादन कर रहा हूं।[3] उसमें अष्टा० १। १। ६॥ सूत्र पर भाष्य के प्रसङ्ग में मैंने एक टिप्पण लिखा था। उसका उद्धरण यहां आवश्यक प्रतीत होता है—

प्रचलित पाणिनीय शिक्षा सम्प्रति दो शाखाओं में मिलती है। एक ऋग्वे-

---

१ यह मेरा वह लेख है, जो आषाढ संवत् १९८२ के आर्य में आधा छपा था।

२ षड्गुरुशिष्य वेदार्थदीपिका के अन्त में अपनी तिथि स्वयं देता है। हम ने उसकी सारी गणना की है। उसका विस्तृत विवरण Indische Studien, 1863 page १६० पर देखो।

३ समयाभाव से और लाहौर में प्रूफ न आ सकने के कारण मैंने इस का सम्पादन छोड़ दिया था। तत्पश्चात् मेरे मित्र पं० रघुवीर एम० ए० ने इस का सम्पादन भार अपने ऊपर लिया था। उन के सम्पादित ग्रन्थ का पहला भाग छप चुका है।

दीय और दूसरी यजुर्वेदीय। ऋग्वेदीय शिक्षा में प्रायः ६० श्लोक मिलते हैं। यह "बनारस संस्कृत सीरीज़" के शिक्षा-संग्रह में छपी है। इसी पर "शिक्षा-प्रकाश" नामक व्याख्यान[1] भी उसी संग्रह में छपा है। वह व्याख्यान हलायुध अथवा यादवप्रकाश का है। सम्भव है, किसी और का हो। पर अधिक विचार इन्हीं दो में से किसी को मानने पर बाधित करता है। उसके आरम्भ में यह दूसरा श्लोक आया है—

व्याख्याय पिङ्गलाचार्यसूत्राण्यादौ यथायथम्।
शिक्षां तदीयां व्याख्यास्ये पाणिनीयानुसारिणीम्॥

अर्थात्—प्रथम पिङ्गल सूत्रों का यथायोग्य व्याख्यान करके अब उसी की शिक्षा का व्याख्यान करूंगा, जो पाणिनीयानुसारी है।

पिङ्गल छन्दःसूत्रों पर दो ही पुरुषों की टीका सम्प्रति मिलती है।[2] हलायुध वाली तो छप चुकी है। दूसरी यादवप्रकाश की हस्तलिखित हमारे पुस्तकालय में विद्यमान है। अस्तु यह शिक्षाप्रकाश चाहे किसी का हो, पर इसका कर्ता भी इस शिक्षा को पाणिनीयानुसारी मानता था, पाणिनिकृत नहीं। जो उसने यह लिखा है कि यह पिङ्गलाचार्य कृत है, इस पर पूरा विश्वास नहीं हो सकता।

दूसरी प्रचलित पाणिनीयशिक्षा यजुर्वेदीय है। इसमें प्रायः ३५ श्लोक मिलते हैं।..........। इण्डिया आफ़िस वाले ५४४ अङ्कस्थ पाणिनीयशिक्षा ग्रन्थ में २०½ श्लोक ही हैं। ऐसी दशा में यह प्रचलित पाणिनीय शिक्षा है।

(४) पूर्वोद्धृत स्वकीय टिप्पण में जो मैंने लिखा था कि "ऋग्वेदीय पाणिनीयानुसारी शिक्षा पिङ्गलाचार्यकृत है, इस पर पूरा विश्वास नहीं हो सकता।" यह बात तो अब भी सत्य है। पर इतना मानने में कोई आपत्ति वा दोष नहीं कि आधुनिक पाणिनीय मतानुसारी शिक्षा का मूल तो अवश्य पिङ्गल का बनाया हुआ

---

१ इस व्याख्यान में २३ से अधिक श्लोकों की व्याख्या नहीं की।

२ हमारे पुस्तकालय में पहले दो टीका-ग्रन्थ थे। गतवर्ष किसी अज्ञातनाम ग्रन्थकार की एक और टीका हमें प्राप्त हुई है। आफ्रेखट के बृहत्सूची में और भी कुछ टीकाएं दी गई हैं।

था। पाणिनि की सूत्रभूत शिक्षा[1] को उसने श्लोकबद्ध किया, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। षड्गुरुशिष्य के लेख की उपस्थिति में उसका इस शिक्षा को श्लोक-बद्ध करना ही इस बात का संकेत है, कि पिङ्गल का अष्टाध्यायी, वा शिक्षा वाले पाणिनि से कोई सम्बन्ध था।

आचार्य पिङ्गलनाग की वही शिक्षा बढ़ते बढ़ते ६० श्लोकों वाली बन गई। पर धन्यवाद हो "शिक्षाप्रकाश" नामक टीकाकार का, जिसने कि पुरातन ऐतिह्य का उल्लेख करके वास्तविक परम्परा का ज्ञान सुरक्षित कर दिया।

---

१ यह सूत्रभूत मूल पाणिनीयशिक्षा दयानन्द सरस्वती ने बड़े यत्नों से उपलब्ध करके छपवाई थी। दयानन्द सरस्वती को वास्तविक पाणिनीय शिक्षा का ही हस्तलेख प्राप्त हुआ था, और उसकी सम्पादन की हुई शिक्षा को पाणिनीय ही मानना चाहिये। इस विषय में एक प्रमाण देखो—

अष्टाध्यायी पर की हुई काशिकावृत्ति का प्रतिसंस्कर्ता यद्यपि वामन (लगभग ७५० वि० सं०) है, हां, वही वामन जो कि वृत्तिसहित लिङ्गानुशासन का कर्ता है (तुलना करो—अष्टाध्यायी २।४।२१॥ तथा लिङ्गानुशासनवृत्ति कारिका ७), तथापि प्रथम पांच अध्याय अधिकांश में जयादित्य के हैं। जयादित्य लिखता है—

काशिका।	पाणिनीय शिक्षा सूत्र, (षष्ठं प्रकरणम्)	
ऌवर्णस्य दीर्घा न सन्ति।	,,	॥२॥
तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते।	०शभेदमा०	॥३॥
सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति तान्यपि द्वादशप्रभेदानि।	,,	॥५॥
अन्तःस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिता यवलाः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च।	,,	॥६॥
रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति।	,,	॥७॥
वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः।	,,	॥८॥

आचार्य चन्द्रगोमी व्याकरण में प्रायः पाणिनीय सूत्रों को बदल कर वा संक्षिप्त करके स्वप्रयोजन सिद्ध करता है। वैसे ही उसने अपने "**वर्णसूत्रों**" में भी पाणिनि के सूत्रों को भी संक्षिप्त किया है। तुलना करो "चान्द्रवर्णसूत्र।"

(५) शिक्षाप्रकाश नामक टीका का करने वाला ही नहीं, प्रत्युत याजुष शाखीय[1] शिक्षा की पञ्जिका का विवरणकर्ता महादेव–शिष्य धरणीधर (सं० १४५४) भी लिखता है—

पाणिनीयमतानुसारिणी श्रीपिङ्गलाचार्यविरचिता पाणिनीयशिक्षा समाप्ता । **(काशी सं० पृ० २३ पं० ९)**

सम्भवतः यह लेख उसी का ही है । कदाचित् किन्हीं पुरातन मूलपुस्तकों का भी हो । सम्पादक ने यह बात स्पष्ट नहीं की । अतः विवादास्पद होते हुए भी पाठान्तर पूर्वोक्त तथ्य को प्रकाशित करता है ।

(६) इन सब बातों के अतिरिक्त "शिक्षाप्रकाश" का कर्ता षड्गुरुशिष्य-लिखित परम्परागत-ऐतिह्य को भी परिपुष्ट करता है । उसका लेख है—

जेष्ठभ्रातृभिर्विहितो [ज्येष्ठ-?] व्याकरणेऽनुजनुस्तत्र भगवान् पिङ्गलाचार्यस्तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते । शिक्षा सङ्ग्रह पृ० ३८५ । पं० ६ ॥

इस से यह भी स्पष्ट होता है कि भगवान् पिङ्गल वैय्याकरण पाणिनि का ही अनुज था ।

(७) यह पाणिनीय मतानुसारी शिक्षा अपने मूलरूप में पर्याप्त पुरानी है, इस में अणुमात्र भी सन्देह का स्थान नहीं । अब इसके लिये बाह्य साक्षी उपस्थित की जाती है ।

महाभाष्य पर त्रिपदी का रचयिता सुप्रसिद्ध भर्तृहरि (न्यूनातिन्यून सप्तमशताब्दी) है । उसका ग्रन्थ हमारे पास नहीं । पर Indian Antiquary August 1883, p. 227 B, पर व्याकरण महाभाष्य में कृतभूरिपरिश्रम डाक्टर कीलहार्न लिखता है—

In his commentary on the *Mahabhashya* he (Bhartri Hari) cites .. ..a verse from the *Paniniya:siksha* in particular,

---

१ पूर्वोक्त "शिक्षाप्रकाश" और यह शिक्षा पञ्जिकाविवरण, वस्तुतः २३ से अधिक श्लोकों का व्याख्यान नहीं करते । अतः प्रतीत होता है कि मूल शिक्षा जो पिङ्गलकृत थी, किसी प्रकार भी २३ से अधिक श्लोकों वाली न थी ।

पाणिनीयमतानुसारी शिक्षा के विषय में इस से अधिक पुरानी बाह्य साक्षी अभी तक मुझे नहीं मिली। यह असम्भव नहीं कि अगाध संस्कृत वाङ्मय में और भी पुराने ग्रन्थकार इसे उद्धृत कर गए हों। यह भावी अनुसन्धान से ज्ञात हो जायगा।

प्राचीन साहित्य में पिङ्गल का उल्लेख।

भाष्यकार पतञ्जलि अपने प्रतिष्ठित आचार्य्य भगवान् पाणिनि के अनुज को कैसे न जाने ? अतः जब पतञ्जलि—

पिङ्गलकाणवस्यच्छात्राः पैङ्गलकाण्वाः। १।१।७३॥

लिखता है, तो उसका अभिप्राय इसी सुप्रसिद्ध पिङ्गल से है।

(१०) पतञ्जलि ही नहीं, प्रत्युत पाणिनि भी अपने कनिष्ठ भ्राता का ही स्मरण करता है, जब वह ६।२।८५॥ के गण में "पिङ्गल" नाम पढ़ता है। और ४।३।७३॥ के गण में "छन्दोविचित" पढ़ कर तो उसी के ग्रन्थ का परिचय कराता है। छन्दोविचिति नाम के अनेक ग्रन्थ हो सकते हैं, पर पूर्वोक्त समस्त ऐतिह्य को ध्यान में रख कर यही निश्चय होता है कि यहां पर पाणिनि अपने भ्राता के ही ग्रन्थ का ध्यानविशेष कर रहा है।

(११) निस्सन्देह पतञ्जलि और पाणिनि अनेकों छन्दःशास्त्रों को जानते थे। पतञ्जलि कहता है—

सो ऽसौ छन्दश्शास्त्रेष्वभिविनीत उपलभ्यावगन्तुमुत्सहते।

महाभा० १।२।३२॥

पाणिनि भी ४।३।७३॥ के गणपाठ पर—

छन्दोमान। छन्दोभाषा[1]। छन्दोविचिति।

आदि नाम पढ़ता है।

पाणिनि के गणपाठ के कुछ पुस्तकों में आगे एक नाम—

छन्दोविजिनि

भी पढ़ा है। यह पाठ वस्तुतः पाणिनि का नहीं है। पाणिनि के कुछ काल पीछे किसी ने यह प्रक्षेप किया है। हस्तलिखित पुस्तकों की साक्षी ऐसा ही स्पष्ट करती है। इस में एक और भी प्रमाण है, जो हमारे विषय से भी सम्बन्ध रखता है।

---

१ यह नाम शौनकोक्त चरण-व्यूह द्वितीय कण्डिका में भी है। महिदास इस की बड़ी अशुद्ध व्याख्या करता है।

आक्सफोर्ड के संस्कृत हस्तलेखों के सूचीपत्र पृ० ३८३B पर ४६६ संख्या के नीचे एक ग्रन्थ दिया है। वह है—

"विजिन्ति ? सामगानां छन्दः।"

यह सामपरिशिष्ट है। यहां लेखकप्रमाद से "विजिनि" का ही विर्जिन्ति बन गया है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में यह श्लोक है—

ब्राह्मणात्तण्डिनश्चैव पिङ्गलाच्च महात्मनः।
निदानादुक्थशास्त्राच्च छन्दसां ज्ञानमुद्धृतम्॥

इस से ज्ञात होता है कि "विजिनि" नामक ग्रन्थ, ताण्ड्य ब्रा० पिङ्गल छन्दशास्त्र, निदान और उक्थशास्त्र के पीछे बना। इन में से उक्थशास्त्र याजुष-परिशिष्ट है। (देखो चरणव्यूह, द्वितीय खण्ड।)

याजुषपरिशिष्ट कात्यायन प्रणीत होने से, यह भी कात्यायन की कृति है। अतः छन्दोविजिनि ग्रन्थ कात्यायन के उक्थशास्त्र बनाने के पीछे बना। उस से भी लेकर बनने वाला ग्रन्थ पाणिनि के गणपाठ के काल तक नहीं हो सकता। हां, कुछ वर्ष पीछे चाहे हो।

(१२) यह बात प्रसङ्गतः कही गयी है। इस छन्दोविजिनि के श्लोक में जो ग्रन्थ कहे गये हैं, वे सब क्रम से कहे गये हैं। इस से भी ज्ञात होता है कि पिङ्गल पर्याप्त पुराना व्यक्ति है और उसका ग्रन्थ निदान वा उक्थशास्त्र से कुछ पहले बना।

छन्दोविचिति का अध्याय परिमाण।

(१३) पाणिनीय व्याकरण और पिङ्गल छन्दोविचिति दोनों शास्त्र आठ आठ अध्यायों में समाप्त हुए हैं। पिङ्गल ने अपने भ्राता का अनुकरण करके ही अपने ग्रन्थ में आठ अध्याय रखे हों, इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं।

पिङ्गल ने छन्दःशास्त्रों का ज्ञान कहां से प्राप्त किया।

(१४) अपने भाष्य की समाप्ति पर यादवप्रकाश निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करता है—

छन्दोज्ञानमिदं भवाद्भगवतो लेभे सुराणां गुरुः।
तस्माद्दुश्च्यवनस्ततो सुरगुरुर्माण्डव्यनामा ततः॥
माण्डव्यादपि सैतव [..............] स्ततः पिङ्गलः।
तस्येदं यशसा गुरोर्भुविधृतं प्राप्यास्मदाद्यैः क्रमात्॥ इति॥

(१) भगवान् भव = शिव

(२) सुरगुरु = बृहस्पति

(३) दुश्च्यवन = इन्द्र

(४) असुर गुरु = शुक्र

(५) माण्डव्य

(६) सैतव

(७) [यास्क]

(८) पिङ्गल

(१४) इसके अतिरिक्त एक और क्रम भी है। यह भी यादवप्रकाश भाष्य के हस्तलेख की समाप्ति पर है। यह श्लोक यादवप्रकाश ने नहीं लिखा। उसका ग्रन्थ

इति भगवतो यादवप्रकाशस्य कृतौ……इत्यादि।

कह कर समाप्त हो जाता है। तत्पश्चात् ये श्लोक या तो नकल करने वाले ने, या हस्तलेख के स्वामी ने दिये हैं। चाहे उन्हों ने किसी पुराने कोष से ही नकल किये हों। पर यादवप्रकाश के वा उससे उद्धृत किये गये ये नहीं हैं। वे ये हैं—

छन्दश्शास्त्रमिदं पुरा त्रिनयनाल्लेभे गुहो नादितः।
तस्मात् प्राप सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात् सुराणां गुरुः।
तस्माद्देवपतिस्ततः फणिपतिः[1] तस्माच्च सत्पिङ्गलः।
तच्छिष्यैर्बहुभिर्महात्मभिरथो मह्यां प्रतिष्ठापितम्॥

यह परम्परा-क्रम सत्य प्रतीत नहीं होता। यहां पिङ्गल से पूर्व फणिपतिः का उल्लेख है। यद्यपि प्रथम क्रम में पिङ्गल से पहले आचार्य का नाम लुप्त हो गया है, तथापि हमें निश्चय है कि वहां फणिपतिः नहीं था। फणिपति शेष, वा पतञ्जलि का नाम है। पतञ्जलि रचित एक छन्दः शास्त्र अड्यार के पुस्तकालय में है भी। अतएव यह पतञ्जलि पिङ्गल के कुछ पूर्व और देवपति=इन्द्र के ठीक पीछे नहीं हो सकता। फलतः यह परम्परा-क्रम विश्वासिनीय नहीं। यह क्रम क्यों चला इस पर पुनः लिखेंगे।

---

१ फणिपति पतञ्जलि को ही कहते हैं। उस का छन्दशास्त्र, निदान ग्रन्थ के पहले अध्याय में है।

(१५) प्रथम क्रम के ८ नामों में से पहले चार के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। पांचवा और छठा तो सुप्रसिद्ध हैं। इन दोनों को पिङ्गल स्वयं अपने छन्दो-विचिति में उद्धृत करता है। देखो निम्नलिखित सूत्र—

सर्वतः सैतवस्य ॥ ७ ॥ अध्याय ५॥

इसी पर यादवप्रकाश यह श्लोक उद्धृत करता है—

सैतवस्य पथस्थली स्त्री च पूजितलक्षणा।
गन्तृवर्गमिमं सदा रक्षतो विपुलापदः ॥
सिंहोन्नता काश्यपस्य ॥ ८ ॥
उद्धर्षिणी सैतवस्य ॥ ९ ॥
अन्यत्र रातमाण्डव्याभ्याम् ॥ ३४ ॥ अध्याय ७॥

वृत्तरत्नाकर का कर्ता केदारभट्ट अध्याय २ में लिखता है—

सैतवस्याखिलेष्वपि।

सैतव का श्लोकबद्ध छन्दशास्त्र अभी तक भारत में विद्यमान है। परलोकगत अमृतसर निवासी उदासीनवर्य पण्डित स्वरूपदास ने सितम्बर १९२२ के अन्त में हम से कहा था कि सैतव छन्दःशास्त्र के सात अध्याय उन के पास हैं। उन्होंने उस की प्रतिलिपि देने की मेरे साथ प्रतिज्ञा की थी। दैवयोग से इस के कुछ दिन पश्चात् ही उन का देहावसान हो गया। उस ग्रन्थ की प्राप्ति के लिए मैं अब भी यत्न कर रहा हूं।

माण्डव्य का ग्रन्थ भी श्लोकबद्ध था। पूर्वोक्त पिङ्गल सूत्र ७। ३४॥ में रात सम्भवतः आधा नाम है। यथा "देवरात" इत्यादि। और माण्डव्य से पूर्व माण्डव्य का कोई बड़ा या गुरु हो सकता है। उसी के ग्रन्थ को माण्डव्य ने परिवर्धित किया, ऐसा प्रतीत होता है। भट्टोत्पल बृहत्संहिता विवृत्ति पृ० १२४८ में पूर्वप्रदर्शित पिङ्गल सूत्र ७। ३४॥ को ध्यान में रख कर लिखता है—

इहास्मिन् छन्दो लक्षणे प्रथमको दण्डकश्चण्डवृष्टिप्रयातसञ्ज्ञः सप्तविंशत्यक्षरपादो भवति पिङ्गलादीनामाचार्याणां मतेन राज [रात] माण्डव्यौ वर्जयित्वा। तयोस्तु मते एष सुवर्णाख्यः। तथा च तावूचतुः—

सुवर्णश्चण्डवेगश्च प्लवो जीमूत एव च ।
बलाहको भुजङ्गश्च समुद्रश्चेति दण्डकाः ॥

तथा च पाठान्तरम्—

अर्णो ऽर्णवः प्लवश्चैव जीमूतो ऽथ बलाहकः ।
समुद्रश्च भुजङ्गश्च सप्तैते दण्डकाः स्मृताः ॥

माण्डव्य का ग्रन्थ भी यत्न करने पर मिल सकेगा, ऐसी हमें पूरी आशा है।

पिङ्गल पाणिनि का छोटा भाई था। पिङ्गल ने ही पाणिनि की सूत्रभूतशिक्षा को श्लोकबद्ध किया। पिङ्गल को शबर, पतञ्जलि पाणिनि आदि जानते थे। पिङ्गल से पहले छन्दःशास्त्र के कौन आचार्य हो गये थे, इतना लिख चुकने पर अन्त में हम एक बात कहनी चाहते हैं।

पिङ्गल यास्क को उद्धृत करता है

पिङ्गल का सूत्र है—

उरोबृहतीति यास्कस्य । ३ । ३० ॥

अर्थात्— न्यङ्कुसारिणी को ही यास्क उरोबृहती कहता है।

अतः यदि निरुक्त और छन्दःशास्त्र वाले यास्क एक ही हैं, तो यास्क पिङ्गल से कुछ पहले वा उस का समकालीन होगा। हां पूर्वोक्त लेख से यह बात सिद्ध हो जाती है कि पाणिनि का समकालीन और कनिष्ठ-भ्राता होने से पिङ्गलनाग यास्कादि का भी समकालीन था।

व्याडि

आचार्य व्याडि पाणिनि का सम्बन्धी ही है। महाभाष्य में लिखा है—

शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः ।

शोभना खलु दाक्षायणेन संग्रहस्य कृतिः । २।३।६६॥[1]

अर्थात्—दाक्षायण के संग्रह की कृति बड़ी शुभ है। हम महाभाष्य के प्रमाण से जानते हैं, कि पाणिनि = दाक्षी और दाक्षायण एक ही कुल के व्यक्ति हैं। यह

---

१ महाभाष्य में अन्यत्र भी व्याडि का मत उद्धृत किया गया है—

द्रव्याभिधानं व्याडिः ।

द्रव्याभिधानं व्याडिराचार्यो न्याय्यं मन्यते ॥ महाभाष्य १।२।६४॥

बात तद्धितप्रत्यय के रूप से भी जानी जाती है। इसी दाक्षायण का असली नाम व्याडि था। व्याडि ने पूर्वोक्त संग्रह लक्ष श्लोकात्मक लिखा, ऐसा कैयट आदिकों ने लिखा है।

हम पहले पृ० ८२ पर काव्य मीमांसा का एक श्लोक लिख चुके हैं। उस पर इस समय विचार करना आवश्यक है। राजशेखर लिखता है—

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा—
अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणि-निपिङ्गलाविह व्याडिः।
वररुचिपतञ्जलि इह परीक्षिताः ख्यातिमु-पजग्मुः॥

इस श्लोक में आये हुए नामविशेषों पर विचार करना चाहिए। निश्चय ही पतञ्जलि से वररुचि = कात्यायन आयु में बड़ा है। कात्यायन की अपेक्षा व्याडि आयु में छोटा होता हुआ भी पाणिनि और पिङ्गल के अधिक निकट है। वह तो इन का सम्बन्धी ही है। पाणिनि उस का नाम स्वयं पढ़ता है—

क्रौडि। लाडि। व्याडि। आपिशलि। गण ४।१।८०॥
व्याडि। गण ४। २। १३८॥

इस के अतिरिक्त व्याडि का दूसरा गोत्रवाची नाम भी पाणिनि लिखता है—

दाक्षायण। गणपाठ ४। २। ५४॥

यही नहीं, पाणिनि उस की शुभकृति 'संग्रह' को भी जानता था—

पद। क्रम। संघात। वृत्ति। संग्रहः। गणपाठ ४।२ ६०॥

व्याडि नाम के दो आचार्य

दाक्षायण व्याडि पाणिनि का सम्बन्धी और आर्य अर्थात् वैदिक मतस्थ था। बौद्ध काल में एक दूसरा आचार्य व्याडि हुआ है। वह आचार्य बौद्ध था। उस ने एक बृहत् कोश भी लिखा है। उस के कोश के सब प्रमाणों का संग्रह अनेक कोश ग्रन्थों की टीकाओं से हम ने किया है।

प्रथम व्याडि के संग्रह के तीन श्लोक भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय के टीकाकार पुण्यराज ने उद्धृत किए हैं। देखो ब्रह्मकाण्ड १। २६॥ की टीका।

जो व्याडि पाणिनि का सम्बन्धी है, वह शौनक आदि पूर्वोक्त आचार्यों का लगभग साथी ही होगा। शौनक अपने प्रातिशाख्य में व्यालि को स्मरण करता है—

व्यालिशाकल्यगार्ग्याः । १३ । १२ ॥

इस से निश्चित होता है, कि जो शौनक व्याडि को जानता था, वह पाणिनि आदि को भी जानता ही होगा।

कौत्स

अब रहा कौत्स।

कौत्स नाम के कई आचार्य प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। एक कौत्स **"कदा वसो"** ऋ०१०।१०५॥ सूक्त का ऋषि है। उस के सम्बन्ध में बृहद्देवता ८।१७॥ में लिखा है—

कौत्सः कदा वसो सूक्तं दुर्मित्रो नाम नामतः।
सुमित्रश्चैव नाम स्याद् गुणार्थमितरत्पदम् ॥

अर्थात्—ऋ० १०।१०५॥ का कौत्स ऋषि है।

दूसरा कौत्स रघुवंश में स्मरण किया गया है —

तमध्वरे विश्वजि ति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोषजातम्।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥ ५ । १ ॥

अर्थात्—उस विश्वजित् नाम के यज्ञ में ऐसे महाराज के पास, जिस ने अपना सब कोष दक्षिणा में दे दिया, **वरतन्तु का शिष्य** कौत्स[1], जिस ने विद्या समाप्त कर ली है, गुरु को दक्षिणा देने की इच्छा वाला पहुंचा।

एक और कौत्स आचार्य है। इस का स्मरण निरुक्त में किया गया है—

अनर्थकं भवतीति कौत्सः ।१।१५॥

एक और कौत्स है। इस का उल्लेख महाभाष्य में पतञ्जलि करता है—

उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्।

अर्थात्—कौत्स गुरु पाणिनि के समीप प्राप्त हुआ।

यद्यपि हमारे पास इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, तथापि हम इतना अनुमान करने में कोई अनौचित्य नहीं समझते, कि यास्क वाला कौत्स वही है, जो कि पाणिनि के समीप कुछ काल तक रहा।

इस प्रकार एक दूसरे को स्मरण करने से ये सब आचार्य समकालीन ही प्रतीत

---

१ इसी वरतन्तु का उल्लेख पाणिनि निम्नलिखित सूत्र में करता है—

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण । ४ । ३ । १०२ ॥

होते हैं। और ये सारे ही आचार्य महाभारत काल के आचार्यों से कुछ ही पीछे के थे। हमारा विचार है कि प्रातिशाख्य और बृहद्देवता वाला शौनक वही शौनक है, जिस के सम्बन्ध में पाणिनि ने लिखा है—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि। ४। ३। १०६॥

यह शौनक आथर्वण शौनक शाखा का प्रवचनकर्ता हो सकता है। शाखा-प्रवचन-कर्ता आचार्य लगभग महाभारत काल में ही, वा उस से एक दो पीढ़ी पीछे के थे। इस लिए हम कह सकते हैं कि शौनक आदि आचार्य जिन्हों ने ऐतरेय आरण्यक आदि के कुछ भागों का सङ्कलन किया, महाभारत से दो चार पीढ़ी पाश्चात् के ही हो सकते हैं।

यदि इन आचार्यों को समकालीन न माना जायगा, तो इतिहास में बड़ी अड़चनें आवेंगी, उन का वर्णन अगले भागों में होगा।
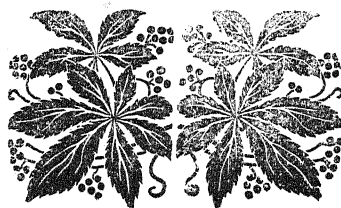
पन्द्रहवां अध्याय

आरण्यकों के भाष्यकार

ऐतरेय आरण्यक

हम पहले लिख चुके हैं कि उपनिषदें आरण्यकों का भाग हैं। इन उपनिषदों पर अनेक भाष्य हो चुके हैं। आरण्यकों का वर्णन करते हुए हम उपनिषदों के भाष्यकारों का वर्णन नहीं करेंगे। यहां तो उन्हीं टीकाकारों का वर्णन किया जायगा, जिन्हों ने समग्र ग्रन्थ पर अपने भाष्य किए हैं।

१—षड्गुरुशिष्य

षड्गुरुशिष्य का वर्णन ब्राह्मणग्रन्थों के भाष्यकार नाम के चौथे अध्याय में हो चुका है। इस ने **मोक्ष प्रदा** नाम की टीका ऐतरेय आरण्यक पर की है। इस भाष्य के हस्तलेख त्रिवन्दरम और मद्रास में विद्यमान हैं।

२—सायण

सायण का भाष्य छप चुका है। इस का प्रकार वैसा ही है, जैसा सायण के अन्य भाष्यों का है।

शाङ्खायन आरण्यक

इस आरण्यक पर अभी तक किसी के किये हुए भाष्य का कोई हस्तलेख प्राप्त नहीं हुआ।

बृहदारण्यक माध्यन्दिन

१—भर्तृप्रपञ्च

भर्तृप्रपञ्च नाम का एक बड़ा आचार्य शङ्कर से पहले इस देश में हो चुका है। आनन्दगिरि अथवा आनन्दज्ञान के बृहदारण्यक भाष्य से हमें पता चलता है कि शङ्कर ने इस के भाष्य को देखा था।

शङ्कर के बृहदारण्यक भाष्य में भी विना नाम लिये, इस के कुछ प्रमाण पाए जाते हैं।

शङ्कर अपने भाष्य में लिखता है—

तस्या इयमल्पग्रन्था वृत्तिराभ्यते। १। १। १॥

अर्थात्—उस (वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषत्) की यह अल्पग्रन्थ=संक्षिप्त वृत्ति आरम्भ की जाती है।

इसी पर आनन्दगिरि लिखता है—

तस्या इति। भर्तृप्रपञ्चभाष्याद्विशेषान्तरमाह। अल्पग्रन्थेति।

अर्थात्—भर्तृप्रपञ्च के भाष्य से इस शङ्करवृत्ति का यह अन्तर है, कि भर्तृप्रपञ्च का भाष्य बड़ा विस्तृत था, परन्तु शङ्कर की वृत्ति यद्यपि उसकी अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है, तथापि अर्थ की दृष्टि से संक्षिप्त नहीं। अल्प होते हुए भी इसमें अर्थ का बड़ा विस्तार किया है।

मैसूर के प्रो० हिरियाना ने भर्तृप्रपञ्च के भाष्य के सब प्रमाण जो आनन्दगिरि ने दिये हैं, एक स्थान पर एकत्र कर दिए हैं। उन्हों ने इस विषय का अपना लेख मद्रास के ओरियण्टल कान्फ्रेंस में सन् १९२४ में पढ़ा था। वह लेख उस कान्फ्रेंस के प्रोसीडिंगस में छप चुका है।[1]

यह भर्तृप्रपञ्च न ही अद्वैतवादी था, और न पूरा द्वैतवादी। अभी तक इसके ग्रन्थ का कोई टूटा फूटा या सम्पूर्ण हस्तलेख प्राप्त नहीं हुआ।

२—द्विवेदगङ्ग

माध्यन्दिन बृहदारण्यक पर बहुत थोड़े भाष्य स्वतन्त्ररूप से हुए हैं। जिन विद्वानों ने माध्यन्दिन शतपथ पर अपने भाष्य लिखे हैं, उन्हों ने इस आरण्यक पर भी अपने भाष्य अवश्य लिखे होंगे, ऐसा अनुमान हो सकता है। परन्तु वे सब भाष्य भी अभी तक उपलब्ध नहीं हुए।

---

१ देखो, Procee dings and transactions of the Third Oriental Conference, Madras, 1924, पृ० ४३०—४५०।

देखो, प्रो० एम० हिरियाना का लेख, इण्डियन अण्टीक्वेरी, पृ० ७७—८६, एप्रिल सन् १९२४।

जब से आचार्य शङ्कर ने काण्व बृहदारण्यक पर अपना भाष्य लिखा है, तभी से उन के उत्तरवर्त्ति विद्वानों ने काण्व पाठ पर ही अपने भाष्य लिखे हैं। हां **द्विवेदगङ्ग** नाम के विद्वान् ने **मुख्यार्थप्रकाशिका** नाम की व्याख्या माध्यन्दिन आरण्यक पर लिखी है। वेबर साहब ने उसका संक्षेप अपने शतपथ ब्रा० के संस्करण के अन्त में छापा है। इस का समग्र पुस्तक हमारे पुस्तकालय में विद्यमान है। जैसा इस के नाम से प्रकट है, इस में प्रत्येक पद का ही भाष्य नहीं किया गया, प्रत्युत मुख्य मुख्य पदों का ही भाष्य किया गया है।

द्विवेदगङ्ग के काल के विषय में हम अभी तक कुछ नहीं कह सकते।

बृहदारण्यक काण्व

इस आरण्यक पर आफरेख्ट के बृहत्सुची में निम्नलिखित भाष्यों और भाष्यकारों के नाम दिए गए हैं—

१—सिद्धान्त दीपिका।

२—शाङ्करभाष्य।

३—आनन्दतीर्थ की शाङ्करभाष्य पर टीका।

४—आनन्दतीर्थ का स्वतन्त्र भाष्य

५—रघूत्तम की परब्रह्मप्रकाशिका टीका।

६—व्यासतीर्थ का भाष्य।

७—दीपिका।

८—गङ्गाधर (अथवा गङ्गाधरेन्द्र) की दीपिका।

९—नित्यान्दशर्मा की मिताक्षरा टीका।

१०—मथुरानाथ की लघुवृत्ति।

११—रङ्गरामानुज भाष्य।

१२—सायण भाष्य।

१३—राघवेन्द्र का बृहदारण्यकोपनिषत्खण्डार्थ।

१४—राघवेन्द्र का बृहदारण्यकोपनिषदार्थसंग्रह।

१५—बृहदारण्यकविषयनिर्णय।

१६—बृहदारण्यकविवेक।

१७—विज्ञानभिक्षु का भाष्य।

१८—नारायण की दीपिका।

सम्भव है, दीपिका नाम के जो भाष्य पहले दिये गये हैं, यह उन्हीं में से कोई एक हो।

वार्तिक

भाष्य और टीकाओं के अतिरिक्त इस आरण्यक पर कई वार्तिक भी लिखे गये हैं। आफरेख्ट के अनुसार उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

१—शङ्करभाष्य का ही वार्तिकरूप सुरेश्वराचार्यकृत।

२—आनन्दतीर्थ की शास्त्रप्रकाशिका।

३—न्यायकल्पलतिका, आनन्दपूर्ण विरचित।

४—बृहदारण्यकवार्तिकसार।

इन सब भाष्यों के अतिरिक्त और भी कई पुराने भाष्य होंगे, जिनका अभी तक कोई पता नहीं लग सका।

शङ्कराचार्य

इस आरण्यक के प्रसिद्ध भाष्यकारों में से सर्वश्रेष्ठ भाष्यकार श्री शङ्कराचार्य के सम्बन्ध में अब कुछ लिखा जाता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संवत् १९३९ में सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा था, कि भाष्यत्रयी का कर्ता आदि शङ्कराचार्य कोई २२ सौ वर्ष हुए, हुआ था। ऐसी ही किंवदन्ति अन्य संन्यासियों में भी प्रचलित है। "एज ऑफ शङ्कर" के कर्ता हमारे मित्र स्वर्गीय टी० एस० नारायणशास्त्री ने लिखा था कि शङ्कर लगभग पांचवीं, शताब्दी पूर्व विक्रम में हुआ था। प्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् तैलङ्ग ने लिखा था कि शङ्कर पांचवीं, छठी शताब्दी में हुआ होगा। योरुप के अनेक विद्वान् शङ्कर को आठवीं शताब्दी ईसा के अन्त में या नवमीं शताब्दी के आरम्भ में रखते हैं। आश्चर्य है, कि इतने प्रसिद्ध आचार्य का काल भी भारतीय इतिहास में अभी अनिश्चित ही है।

शङ्कर का काल

आचार्य शङ्कर के काल पर प्रकाश डालने वाली जो सामग्री हमें उपलब्ध हुई है, उस का लिख देना हम यहां आवश्यक समझते हैं । उस सामग्री को दृष्टि में रख कर आगे सब विद्वान् स्वतन्त्र विचार कर सकते हैं । परन्तु इस सब विचार को करते हुए भी एक परम आवश्यक बात है, जिस का ध्यान रखना अत्यन्त उपयोगी होगा । वह हम सब से पहले कह देनी चाहते हैं । हमारा विश्वास है कि शङ्कराचार्य के भाष्यों के मुद्रित संस्करण और अनेकों हस्तलिखित ग्रन्थ विश्वसनीय नहीं हैं । जितना परिवर्तन और संशोधन शङ्कर के ग्रन्थों का हुआ है, उतना कदाचित् ही किसी अन्य के ग्रन्थों का हुआ होगा । अतएव आन्तरिक साक्ष्य पर विचार करते हुए यह सन्देह सदा ही बना रहना चाहिए कि किसी परिणाम पर पहुंचने के लिए प्रमाणरूप से उद्धृत किए गए वचन सम्भवतः शङ्कर के न हों । इतनी भूमिका के पश्चात् हम शङ्कर के काल से सम्बन्ध रखने वाली मुख्य २ सामग्री नीचे लिखते हैं ।

(१) चीनी यात्री इत्सिङ्ग अपने यात्रा विवरण में लिखता है—

इस के अनन्तर भर्तृहरि-शास्त्र है।...। यह विद्वान् भारत के पाचों खण्डों में सर्वत्र बहुत प्रसिद्ध था और उस की विशिष्टताओं को लोग आठों दिशाओं में जानते थे ।...। उस की मृत्यु हुए चालीस वर्ष हुए हैं। (सन् ६५१–६५२)[१]

यदि इत्सिङ्ग का पूर्वोक्त कथन सत्य मान लिया जावे, तो निम्नलिखित बातें विचारणीय हो जाती हैं ।

आचार्य कुमारिल भट्ट अपने तन्त्रवार्तिक में भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय के एक श्लोक को इस प्रकार उद्धृत करता है—

तथा चोक्तम्—

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते ।

---

१ इत्सिङ्ग की भारत-यात्रा, पृ० २७३–२७५ । अनुवादक ला० सन्तराम, इण्डियन प्रेस प्रयाग, सन् १६२५ ।

यह श्लोक वाक्यपदीय का १ । १३ ॥ है ।

इत्सिग के कथन के अनुसार सन् ६५१-६५२ में होने वाले भर्तृहरि के ग्रन्थ के श्लोक को उद्धृत करने वाला कुमारिल अवश्य ही सन ६५२ से पीछे का होगा ।

इस प्रकार भट्ट कुमारिल सन ६८० के लगभग का मानना पड़ेगा ।

(२) अब अनेक विद्वान् इस बात में सहमत हैं, कि विश्वरूप, सुरेश्वर, मण्डन आदि एक ही आचार्य के नाम हैं । यह विश्वरूप अपनी बालक्रीडा टीका में कुमारिल भट्ट के एक श्लोक को उद्धृत करता है—

तथा हि—

शाखानां विप्रकीर्णत्वात् पुरुषाणां प्रमादतः ।

नानाप्रकरणस्थत्वात् स्मृतिमूलं न गृह्यते ॥ बालक्रीडा पृ० १४ ।

यह श्लोक तन्त्रवार्तिक चौखम्बा संस्करण पृ० ७६ पर पाया जाता है ।

विश्वरूप कुमारिल के इसी श्लोक को उद्धृत नहीं करता, प्रत्युत उस ने कुमारिल का एक और श्लोक भी लिखा है—

तथा चाह—

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।

यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत्केन गृह्यते ॥ बालक्रीडा पृ० २ ।

यह श्लोक कुमारिल के श्लोकवार्तिक चौ० संस्करण पृ० ४ पर मिलता है । विश्वरूप ने इसे वहीं से लेकर उद्धृत किया है ।

(३) मण्डन अथवा सुरेश्वर शङ्कराचार्य का शिष्य था । जब शङ्कर का शिष्य कुमारिलभट्ट को उद्धृत करता है, तो शङ्कर भी लगभग कुमारिल के ही समय का होगा । शङ्कर विजय में तो यह बात लिखी भी है । इस लिए जब कुमारिल ही लगभग सन ६८० के निकट हुआ है तो शङ्कर का काल ईस्वी सप्तम शताब्दी के अन्त में ही हो सकता है ।

यह श्रृङ्खला चीनी यात्री के वाक्य को सत्य मान कर ही जोड़ी जा सकती है ।

(४) वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड पर पुण्यराज की व्याख्या छपी है । उसके अन्त में कई श्लोक पाये जाते हैं । वे श्लोक बहुत असङ्गत दशा में मिलते हैं । उनमें से कुछ श्लोक इस प्रकार से हैं—

मूलभूतमवाप्याथ पर्वतादागमं स्वयम् ।
आचार्यवसुरातेन न्यायमार्गान्विचिन्त्य सः ॥५४॥
प्रणीतो विधिवच्चायं मम व्याकरणागमः ।
मयापि गुरुनिर्दिष्टाद्भाष्यान्न्यायाविलुप्तये ॥५५॥
काण्डत्रयक्रमेणायं निबन्धः परिकीर्तितः ॥५६॥
शशाङ्कशिष्याच्छ्रुत्वैतद्वाक्यकाण्ड समासतः ॥५६॥

इन श्लोकोंसे आचार्य वंसुरात, भर्तृहरि, और शशाङ्क=चन्द्रगोमी का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है ।

(५) हम राजतरङ्गिणि १।१७६॥[1] से जानते हैं, कि कश्मीर के महाराज अभिमन्यु प्रथम के समय में आचार्य चन्द्रगोमी ने महाभाष्य का पुनः प्रचार किया था। राजतरङ्गिणी के सम्पादक स्टाईन महाशय के अनुसार अभिमन्यु प्रथम लगभग चौथी पांचवीं शताब्दी का ही है। इसलिये भर्तृहरि का काल अधिक से अधिक छठी शताब्दी में पड़ेगा । यदि यह अनुमान ठीक हो जावे, तो चीनी यात्री इत्सिङ्ग का लेख अशुद्ध मानना पड़ेगा, और भर्तृहरि का काल कुछ ऊपर चले जाने से शङ्कर आदि आचार्यों का काल भी लगभग छठी शताब्दी हो जायगा। इस प्रकार विषय की गम्भीरता चाहती है, कि चीनी यात्री के कथन को अन्य प्रमाणों से पुष्ट किया जाय, और इसे वैसे ही सत्य न मान लिया जावे । हमने तो यहां दोनों प्रकार के भाव इस समय रख दिये हैं ।

भर्तृप्रपञ्च सम्बन्धी पूर्वोक्त वर्णन से पता लग जाता है, कि शङ्कर से पहले भी बड़े २ आचार्यों ने उपनिषदों पर भाष्य लिखे थे । ऐसा भी अनुमान होता है, कि जिन आचार्यों ने उपनिषदों पर भाष्य लिखे, उन्होंने वेदान्त सूत्रों पर भी भाष्य लिखे होंगे । "जर्नल ऑफ ओरियण्टल रीसर्च मद्रास" जनवरी सन् १९२७ में पं० कुप्पुस्वामी शास्त्री ने एक लेख पृ० ५-१५ तक लिखा है । उसमें बताया गया है, कि शङ्कर ने वेदान्त सूत्र १ । १ । ४ ॥ के भाष्य के अन्त में जो कुछ श्लोक विना नाम लिये उद्धृत किये हैं, वे आचार्य सुन्दर पाण्ड्य के हैं । सम्भव है, इस आचार्य ने उपनिषदों पर भी भाष्य लिखे हों । अस्तु, हमारा यहां यह लिखने का

---

१ चन्द्राचार्यादिभिर्लब्धादेशं तस्मात्तदागमम् ।
प्रवर्तितं महाभाष्यं चन्द्रव्याकरणम् कृतम् ॥

इतना ही अभिप्राय है, कि संस्कृत विद्या के गवेषणा करने वालों को अभी बहुत कुछ खोजने की आवश्यकता है। शेष भाष्यकारों का वर्णन उपनिषदों के भाग में ही किया जायगा।

तैत्तिरीयारण्यक

१—भट्ट भास्कर
२—सायण

तैत्तिरीय आरण्यक पर भट्ट भास्कर और सायण इन दोनों आचार्यों के भाष्य इस समय तक छप चुके हैं। और भी कई भाष्य इस आरण्यक पर हो चुके होंगे, परन्तु एक दो के अतिरिक्त उनके अस्तित्व का अभी तक पता नहीं लगा। भट्ट भास्कर और सायण दोनों आचार्यों का वर्णन पहले किया जा चुका है, अतः यहां इनके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा जायगा।

३— वरदराज

आफरेख्ट के बृहत्सूची में तैत्तिरीयारण्यक का तीसरा भाष्यकार भी लिखा हुआ है। आफरेख्ट का आधार ऑपर्ट की सूची है। ऑपर्ट ने दक्षिण के ही घरों से सूची तय्यार करवाई थी। इससे ज्ञात होता है, कि यह भाष्यकार दाक्षिणात्य था। पुनः आफरेख्ट बताता है, कि इस वरदराज के पिता का नाम वामनाचार्य और पितामह का नाम अनन्तनारायण था। इसने सामवेदीय कई सूत्रों पर वृत्ति वा भाष्य लिखे हैं। इसके आरण्यक के भाष्य का कोई हस्तलेख हमें नहीं मिल सका। इसलिये इसके सम्बन्ध में भी अधिक नहीं लिखा जा सकता।

हमारा अनुमान है कि भवस्वामी ने आरण्यक पर भी अपना भाष्य लिखा होगा।

मैत्रायणीय आरण्यक

१–रामतीर्थ

हम पहले पृ० २३२ पर लिख चुके हैं, कि रामतीर्थ ने इस आरण्यक पर अपनी दीपिका लिखी है। वह आनन्दाश्रम के उपनिषदों के समुच्चय में छपी है। इस आरण्यक या उपनिषद् पर इसके अतिरिक्त आफरेख्ट ने निम्नलिखित भाष्य बताए हैं

१—शङ्कराचार्य का भाष्य।

२—नारायण की दीपिका।

३—प्रकाशात्मन् की दीपिका।

४—विज्ञानभिक्षु का मैत्रेयोपनिषदालोक ।

ये टीकाएं उपनिषद् भाग पर ही हैं, या सारे आरण्यक पर, यह अभी पता नहीं लग सका ।

तलवकार आरण्यक

१–भवत्रात

भवत्रात ने जैमिनीय ब्राह्मण और आरण्यक के समान जैमिनीय श्रौतसूत्र पर भी अपना भाष्य लिखा है । उसकी दो प्रतियां हमारे पास आ गई हैं । उसके पाठ से इसके काल आदि के सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं जाना जा सका ।

इन आरण्यकों के अतिरिक्त कठ आरण्यक के सम्बन्ध में पृ० २७ पर जो तीन संख्या का नोट हम ने लिखा है, वह देख लेना चाहिए ।
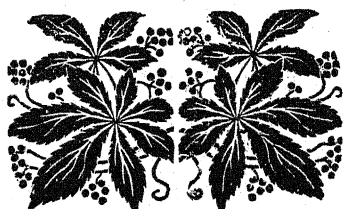
सोलहवां अध्याय

आरण्यक और वेदार्थ

जिस प्रकार से ब्राह्मणग्रन्थ वेदार्थ में अत्यन्त सहायता देते हैं, वैसे ही आरण्यक ग्रन्थ भी इस विषय में कोई कम सहायता नहीं देते। इन में से भी जैमिनीय आरण्यक मन्त्रों का बड़ा ही स्पष्ट अर्थ करता है। इसलिये अब कुछ मन्त्रों के अर्थ का, जैसा कि इस आरण्यक में मिलता है, नमूना दिया जाता है।

तद्यथा ह वै सुवर्णं हिरण्यमग्नौ प्रास्यमानं कल्याणतरं कल्याणतरं भवति एवमेव कल्याणतरेण कल्याणतरेणात्मना सम्भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥ तदेतदृचाभ्यनूच्यते ॥ ७ ॥

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।
समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधस इति ॥१॥[1]

पतङ्गमक्तमिति। प्राणो वै पतङ्गः। पतन्निव ह्येष्वङ्गेष्वति रथमुदीक्षते। पतङ्ग इत्याचक्षते ॥ २ ॥ असुरस्य माययेति। मनो वा असुरम्। तद्ध्यसुषु रमते। तस्यैव माययाक्तः ॥ ३ ॥ हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चित इति। हृदैव ह्येते पश्यन्ति यन्मन्सा विपश्चितः ॥ ४ ॥ समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षत इति। पुरुषो वै समुद्र एवंविद उ कवयः। त इमां पुरुषेऽन्तर्वाचं विचक्षते ॥ ५ ॥ मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधस इति। मरीच्य इव वा एता देवता यदग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमाः ॥ ६ ॥ न ह वा एतासां देवतानां पदमस्ति। पदेनो ह वै पुनर्मृत्युरन्वेति ॥७॥ जै० उप० ब्रा० ३। ३५ ॥

अर्थात्—जिस प्रकार सोना आग में डाला हुआ पवित्र होता है, बहुत पवित्र होता है, वैसे ही पवित्र आत्मा से, बहुत पवित्र आत्मा से वह प्रकट होता है, जो ऐसा जानता है। ऐसा ही ऋग्वेद १०।१७७।१॥ में कहा गया है—

प्राण ही **पतङ्ग** है। मन ही **असुर** है। उसी की माया से यह युक्त है। ये विद्वान् हृदय और मन से ही जानते हैं। पुरुष ही **समुद्र** है। ऐसा जानने वाले

कवि=ज्ञानी इस वाणी को पुरुष के अन्दर कहते हैं। मरीची के समान ही ये देवता हैं, जो अग्नि, वायु, आदित्य और चन्द्रमा हैं। इन देवताओं का पद नहीं है। पद से ही वार वार की मृत्यु को प्राप्त होता है।

पतङ्गो वाचम्मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः।

तां द्योतमानां स्वर्यम्मनीषामृतस्य पदे कवयो निपान्ति॥ १॥

पतङ्गो वाचाम्मनसा बिभर्तीति। प्राणो वै पतङ्गः। स इमां वाचं मनसा बिभर्ति॥ २॥ तां गन्धर्वो ऽवदद्गर्भे अन्तरिति। प्राणो वै गन्धर्वः पुरुष उ गर्भः। स इमाम्पुरुषे ऽन्तर्वाचं वदति॥३॥ तां द्योतमानां स्वर्यम्मनीषामिति। स्वर्या ह्येषा मनीषा यद्वाक्॥४॥ ऋतस्य पदे कवयो निपान्तीति। मनो वा ऋतमेवंविद उ कवयः। ओमित्येतदेवाक्षरमृतम्। तेन यदृचं मीमांसन्ते यद्यजुर्यत्साम तदेनां निपान्ति॥ ५॥ जैमिनीय उप० ब्रा० ३। २६॥

अर्थात्– ऋ० १०।१७७।२॥ का व्याख्यान इस प्रकार किया गया है–प्राण ही **पतङ्ग** है। वह (प्राण) इस वाणी को मन से धारण करता है। प्राण ही **गन्धर्व** है। पुरुष ही **गर्भ** है। वह (प्राण) इस वाणी को पुरुष के अन्दर बोलता है। यह वाणी ही है, जो **स्वर्या मनीषा** है। मन ही **ऋत** है। ऐसा जानने वाले ज्ञानी हैं। ओम् ही यह ऋत अक्षर है। इसी ओम् से जब ऋचा, यजु और साम की मीमांसा करते हैं, तो उस (वाणी की) रक्षा ही करते हैं।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः॥१॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमिति। प्राणो वै गोपाः। स हीदं सर्वमनिपद्यमानो गोपायति॥ २॥ आ च परा च पथिभिश्चरन्तमिति। तद्ये च ह वा इमे प्राणा अमी च रश्मय एतैर्ह वा एष एतदा च परा च पथिभिश्चरति॥ ३॥ स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान इति सध्रीचीश्च ह्येष एतद्विषूचीश्च प्रजा वस्ते॥ ४॥ आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरिति। एष ह्येवैषु भुवनेष्वन्तरावरीवर्ति॥ ५॥ जै० उप० ब्रा० ७। ३७॥

अर्थात्—प्राण ही गोप है । ये प्राण ही हैं, जो यह रश्मियां हैं। इन्हीं से यह मार्गों से चलता है। वह सीधे और उलटे प्रजा को बसाता है। वह ही भुवनों में व्यापक है।

दूसरे आरण्यकों में भी अनेक वेदमन्त्रों का व्याख्यान पाया जाता है। पर वह इतनी विस्तृत रीति से नहीं मिलता। पूर्वोक्त तीन मन्त्रों वाले ऋग्वेदीय सूक्त के भाष्य से स्पष्ट पता लग सकता है, कि आरण्यक वाले किस प्रकार का मन्त्रार्थ करते थे। यह अर्थ प्रायः अध्यात्म शैली का है। पर सर्वत्र ऐसा नहीं है। कहीं २ आधिदैविक अर्थ भी मिल जाता है।

आरण्यकों का यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रीति से किया गया है। इन के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचारविशेष उपनिषदों के साथ ही किया जायगा। ऐसा करना है भी आवश्यक, क्योंकि आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, पुनर्जन्म, मुक्ति आदि का वर्णन उपनिषदों और आरण्यकों का समान ही है।

पहला परिशिष्ट

इस परिशिष्ट में वे बातें लिखी गई हैं जो कि गत अध्यायों के सम्बन्ध में दोबारा पाठ से आवश्यक समझी गई हैं।
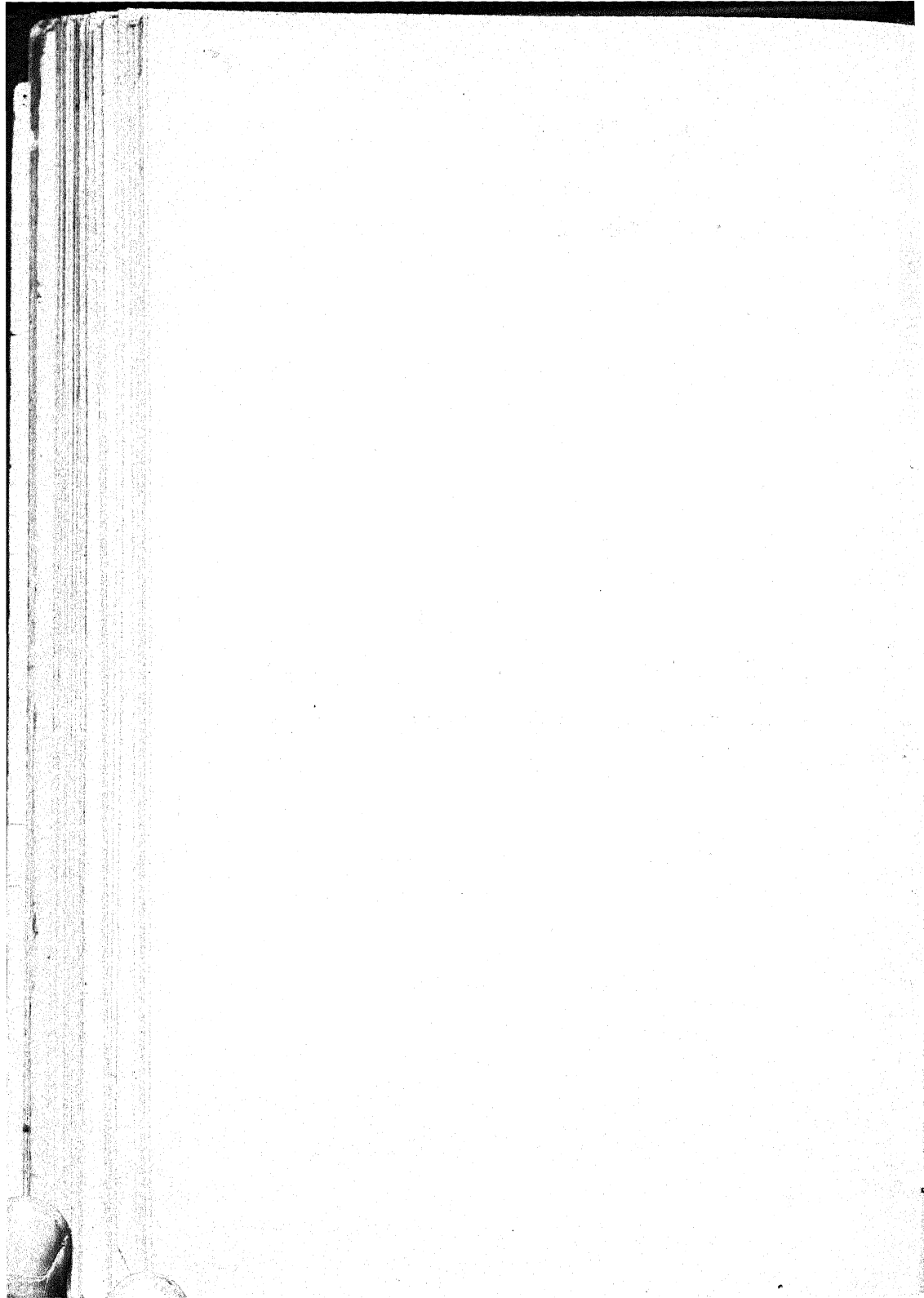
प्रथमाध्याय ।

पृ० ३—ब्राह्मण ग्रन्थोंमें कई स्थानों पर ऐसा लिखा मिलता है—

इत्येकव्याख्यानाः । श० ६।७।४।६॥

अर्थात्—यह सब ऋचाएं समान व्याख्यान वाली हैं ।

इतना लिख कर इन मन्त्रों का ब्राह्मण नहीं लिखा जाता । इस से भी प्रतीत होता है, कि व्याख्यान शब्द ब्राह्मण का पर्यायवाची ही है ।

पृ० ४—ब्राह्मण सम्बन्धी जो विज्ञायते शब्द है, इस का सब से पहला प्रयोग गोपथ ब्राह्मण में पाया जाता है—

आत्मा वै स यज्ञस्येति विज्ञायते ।२।२।६॥

अर्थात्—वह यज्ञ का आत्मा ही है, यह ब्राह्मणसे जाना जाता है ।

ऐ० ब्रा० ४ । २२ ॥ में भी विज्ञायते शब्द पाया जाता है, परन्तु यहां इस का अर्थ और प्रतीत होता है ।

विज्ञायते शब्द का व्याख्यान निम्नलिखित स्थानों में भी अवश्य देखना चाहिए—

(१) गौतमधर्मसूत्र ११।११॥ और ११।१६॥ पर मस्करी भाष्य ।

(२) ऋक् सर्वानुक्रमणी १ । १ ॥ पर षड्गुरुशिष्य की वृत्ति ।

(३) बोधायन धर्मसूत्र १।६।१४॥ पर गोविन्दस्वामी का विवरण।

पृ० ५— मन्त्रों में कई स्थानों पर एक शब्द मिलता है—

ब्राह्मणाच्छंसि ।

तैत्तिरीय संहिता में कुछ स्थानों पर इस शब्द का अर्थ करते हुए, भट्ट भास्कर लिखता है, कि "ब्राह्मणग्रन्थों के वचनों से जो स्तुति किया गया हो ।" इस अर्थ के मानने का यह अभिप्राय है, कि मन्त्रों से पहले भी कोई ब्राह्मण थे । परन्तु यह बात इतिहास विरुद्ध है । इसलिये भट्ट भास्कर का अर्थ आदरणीय नहीं हो सकता।

द्वितीयाध्य ।

पृ० ८—मनु भाष्यकर मेधातिथि भी कौषीतकिब्राह्मणे ऐसा प्रयोग ४ । ३३ ॥ के भाष्य में करता है ।

पृ० १२—शतपथ के तेरहवें काण्ड में यद्यपि तस्योक्तं ब्राह्मणं पाठ प्रायः मिलता है, तथापि चौदहवें में बन्धुः भी पाया जाता है । देखो, १४ । २ । २ । ४०, ४१, ४३ ॥ इस लिये बन्धु शब्द के ही प्रयोग से शतपथ के कुछ काण्डों की प्राचीनता और दूसरों की नवीनता का अनुमान नहीं किया जा सकता ।

पृ० १३—इस समय काण्व शतपथ ब्राह्मण में १०४ अध्याय मिलते हैं । शङ्कराचार्य आदि विद्वान् काण्व बृहदारण्यक के अन्तिम दो अध्यायों को खिल ही मानते हैं । बृहदारण्यक के पांचवें अध्याय के भाष्य के आरम्भ में शङ्कर लिखता है—

पूर्णमद इत्यादि खिलकाण्डमारभ्यते ।

अर्थात्—अब पूर्णमदः से आरम्भ होने वाले पांचवें खिलकाण्ड का आरम्भ किया जाता है ।

इन अन्तिम दो अध्यायों को खिल मान कर काण्व शतपथ में शेष १०२ अध्याय ही रह जाते हैं । सम्भव है, इसी प्रकार कोई दो अध्याय और भी इस में कभी जुड़ गये हों ।

पृ० १८—दैवतब्राह्मण का ही दूसरा नाम देवताध्याय ब्राह्मण है ।

सामग लोगों के छन्द का जा ग्रन्थ आक्सफोर्ड के सूचीपत्र में दर्ज है,वही ग्रन्थ पीटर्सन की दूसरी रिपोर्ट(सन् १८८३—१८८४) पृ० ११३ पर भी दर्ज किया गया है । वहां इस का नाम छन्दोविचयः या उपनिदान बताया गया है ।

पृ० २२—जैमिनीय ब्राह्मण के आरम्भ के अनेक खण्डों में अग्नि-होत्र का विस्तृत वर्णन पाया जाता है । इसी ब्राह्मण में ब_त सी अत्यन्त सुन्दर उपमाएं पाई जाती हैं ।

तीसरा अध्याय।

पृ० २६— डा० कालएड के सम्पादन किये हुए काठक ब्राह्मण के अंशों में अग्न्याधेय ब्राह्मण, अमा ब्राह्मण, काठक सं० ४० । ७॥ पर ब्राह्मण, ग्रहेष्टि ब्राह्मण और ग्रहेष्टि ब्राह्मण के मन्त्र, उपनयन ब्राह्मण, श्राद्धब्राह्मण, मेखलाब्राह्मण, अशीतिभद्र यह आठ छोटे छोटे खएड हैं।

इन में से काठक संहिता ४० । ७ ॥ पर का ब्राह्मण बड़ा उपयोगी है, इस लिये वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

चत्वारि शृंगा इति वेदा वा एतदुक्ताः। त्रयो ऽस्य पादा इति त्रीणि सवनानि। द्वे शीर्षे इति प्रायणीयोदयनीये। सप्त हस्तास इति सप्त छन्दांसि। तस्मात्सप्तार्चिषः सप्तसमिधः सप्तेमे लोकाः। येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ त्रिधा बद्ध इति त्रेधा बद्धो मन्त्रब्राह्मणकल्पैः ऋषभो रौरवीति रौरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिरथर्वभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्त्यथर्वभिर्जपन्ति। महो देव इति महादेवः। मर्त्यामाविवेश मनुष्याणां तस्योत्तरा भूयांसि निर्वचनाय ॥

चत्वारि शृङ्गा चतुर्मुखश्चतुर्वेदाश्चतुर्युगा[1] अग्न्याश्चत्वारोऽभवन् स्वयं कैलासपर्वतो नाम एको भवति तदेकशृङ्गं द्विशृङ्गं त्रिशशृङ्गं द्वात्रिंशशृङ्गं शतशृङ्गं सहस्रशृंङ्गं कोटिशृङ्गमनन्तशृङ्गं मेरुशृङ्गं स्फटिकशृङ्गं पितृशृंगं मनुष्यशृङ्गं द्वादशादित्यानां पूर्वापारं मुनयो वदन्ति सर्वमायुः सर्वमेत्यायुः सर्वमेति य एवं वेद ॥

इन दोनों ब्राह्मणों में से पहला ब्राह्मण थोड़े ही पाठान्तर से निरुक्त १३।७॥ में मिलता है।

अर्थात्—यह जो चार शृंग हैं सो वेद ही कहे गए हैं। तीन सवन

---

१ यदि यह पाठ वस्तुतः ब्राह्मण का है तो इसमें युग शब्द का प्रयोग उसी भाव को कहने वाला मानना चाहिए, जो भाव हम आज कल युग शब्द से लेते हैं।

ही उस के तीन पाद हैं। प्रायणीय उदयनीय ही दो शिर हैं। सात हाथ सात छन्द हैं। इस लिए सात ही अर्चियें, सात समिधाएं तथा सात ही लोक हैं। जिन में सात २ गुहा में रहने वाले प्राण ठहरे हैं। मन्त्र ब्राह्मण और कल्प से ही यह तीन प्रकार बांधा गया है। ऋषभ रोता है। रोना इसका सवनक्रम से है। ऋचाओं से जो इसकी प्रशंसा करते हैं, यजुओं से जो यज्ञ करते हैं, सामों से जो स्तुति करते हैं और अथर्वों से इसे जपते हैं। महान् ही वह देव है। मनुष्यों का ही (यह यज्ञ है)।

चार शृंग, चार मुख, चार वेद, चार युग और चार ही अग्नियें हुईं। कैलास पर्वत स्वयं एक होता है। वह एक शृंग वाला, दो शृंग वाला, तीस शृंग वाला, ३२ शृंग वाला, शत शृंग वाला, सहस्र शृंग वाला, कोटि शृंग वाला, अनन्त शृंग वाला, मेरु शृंग वाला, स्फटिक पितृ तथा मनुष्य शृंग वाला, बारह आदित्यों का पूर्वापार मुनि कहते हैं। सारी आयु को प्राप्त होता है, जो ऐसा जानता है।

पृ० २६—शङ्कर वेदान्त सूत्र ३।३।४०॥ के भाष्य में भी जाबाल श्रुति का प्रमाण देता है।

पृ० ३३—काठकसंहिता २९।१०॥ में भी कापेयों का नाम मिलता है। क्या इनके कोई अत्यन्त प्राचीन ब्राह्मण थे?

छठा अध्याय

पृ० ८७—शतपथ के वंश में जहां आचार्यों की परम्परा समाप्त होती है, वहां वयं पद लिखा है। क्या इस का यह अभिप्राय है। कि परम्परा में आने वाले अनेक शिष्य लोगों ने याज्ञवल्क्य के पाठ में परिवर्तन किया था। अथवा यहां वयं पद एक का ही वाची है।

श० २।६।३।५॥ में कहा है—

स बन्धुः शुनासीर्यस्य यं पूर्वमवोचाम्।

अर्थात्—शुनासीर्य का वही ब्राह्मण है, जिसे हम पहले कह चुके हैं।

यहां भी अवोचाम् पद का अर्थ विचारणीय है। हां, यह देखा गया है, कि एक भी व्यक्ति अपने लिए बहुवचन का प्रयोग करता है। जनक कहता है—

सहस्रं भो याज्ञवल्क्य दद्मो यस्मिन्वयं त्वयि मित्रविन्दामन्व-विदामेति। श० ११।४।३।२॥

यहां जनक अपने लिए बहुवचन का प्रयोग कर रहा है।

पृ० ६४—श० ११।४।३।२०॥ में अंगजिद् ब्राह्मणों का कथन किया गया है। इस से ज्ञात होता है, कि शिक्षा आदि अङ्गों की विद्या भी बहुत पुरानी है।

सातवां अध्याय

पृ० १०५—मैत्रायणी संहिता १।११।५॥ में भी गाथा और नाराशंसी का बहुत आदर नहीं पाया जाता।

यो गाथानाराशꣳसीभ्याꣳसनोति न तस्य प्रतिगृह्यम्।
अनृतेन हि स तत्सनोति।

अर्थात्—जो गाथा और नाराशंसी से पूजा करता है, उस से कुछ लेना नहीं चाहिए। वह तो अनृत से ही उसकी पूजा करता है।

पृ० १२१—जैमिनीय श्रौतसूत्र की व्याख्या की भूमिका में भवत्रात लिखता है—

यदृचा होतृत्वं·······। अत्रर्गादिभिः शब्दैर्वेदा एवाभिधीयन्ते।
अर्थात्—यहाँ ऋक् आदि शब्दों से वेद ही कहे गए हैं।

इस से भी प्रकट होता है, कि सनातन धर्मोद्धार के कर्ता ने जो यह कल्पना की थी, कि ऋक् आदि शब्द मन्त्रोंके लिये हीआते हैं, वह नितान्त भ्रममूलक है। कम से कम भवत्रात का ऐसा विचार न था।

पृ० १५५—विशेष्य विशेषण की रीति से हम ने ही मन्त्रों के पदों को पर्याय बना कर अर्थ करने की विधि नहीं लिखी, प्रत्युत ब्राह्मणग्रन्थों में भी यह बात मिलती है। ऐतरेय ब्रा० ४।२६॥ में लिखा है—

वायुर्ह्येव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा—पवमानः प्रजापतिरिति।
अर्थात्—वायु ही प्रजापति है। क्योंकि मन्त्र ऋ० ६।५।४॥
ने ऐसा कहा है। बहने वाला वायु प्रजापति है।
इस मन्त्र में पवमान और प्रजापति विशेष्य और विशे-
षण की रीति से ही हैं।

पृ० १६३—ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रक्षेप का मानना कोई बड़ी डरावनी
बात नहीं हैं। कात्यायन श्रौत ७।५।३। पर टीका लिखता
हुआ याज्ञिकदेव श० ३।१।२।२१॥ के विषय में लिखता है—
इदं ब्राह्मणवाक्यं धर्मविरुद्धम्। अथवा केनचिदत्र प्रक्षिप्तं स्यात्।
अर्थात्—याज्ञवल्क्य के बछड़े के मांस को खाने की इच्छा के
कहने वाला ब्राह्मण वाक्य धर्मविरुद्ध है। अथवा यह
किसी का मिलाया हुआ है।

दशवां अध्याय

पृ० १७९—श० १०। ६। ३। १, २॥ ब्राह्मण अत्यन्त आवश्यक है।
इनमें ब्रह्म का बड़ा सुन्दर निरूपण है। इन काण्डकाओं
से प्रकट होता है, कि ब्राह्मणों में भी ब्रह्म का वैसा ही
वर्णन मिलता है जैसा कि उपनिषदों में।

दूसरा परिशिष्ट ।

जिन ग्रन्थों की सहायता से यह पुस्तक लिखी गई है उनकी सूची ।

अग्निहोत्रचन्द्रिका
अथर्ववेद
अनुभ्रमोच्छेदन
अपरार्क टीका
अमरकोश
अष्टाध्यायी
अस्यवामीय सूक्त का भाष्य—आत्मानन्द कृत
आथर्वण चरणव्यूह
आथर्वण परिशिष्ट
आपस्तम्बधर्मसूत्र
आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र
आपस्तम्बपरिभाषासूत्र व्याख्या धूर्तस्वामीकृत
आपस्तम्बपरिभाषासूत्र व्याख्या हरदत्तमिश्र कृत
आपस्तम्बश्रौत के धूर्तस्वामी कृत भाष्य पर रामाण्डार कृत वृत्ति
आपस्तम्बश्रौतसूत्र
आर्यसिद्धान्त—भीमसेन सम्पादित
आर्षानुक्रमणी
आर्षेयब्राह्मण—ए० सी० बर्नेल द्वारा सम्पादित
आर्षेयब्राह्मण भाष्य—सायण कृत
आश्वलायन गृह्यकारिका—भट्ट कुमारिलस्वामीकृत
आश्वलायन गृह्यसूत्र
आश्वलायन गृह्यसूत्र टीका विमलोदयमाला—जयन्तस्वामी कृत
आश्वलायन गृह्यसूत्र वृत्ति—नारायणकृत
अश्वलायन श्रौतसूत्र
अष्टाध्यायीभाष्य—दयानन्द सरस्वतीकृत
आश्वलायन श्रौतसूत्र भाष्य—नारायणकृत
इत्सिंग की भारतयात्रा—हिंदी अनुवाद ला० सन्तरामकृत
उपग्रन्थ—कात्यायनकृत

उक्थशास्त्र
ऋक् सर्वानुक्रमणी—कात्यायनकृत
ऋक् सर्वानुक्रमणी वृत्ति—षड्गुरुशिष्यकृत
ऋग्वेद पर व्याख्यान—भगवद्दत्तकृत
ऋग्वेदभाष्य—दयानन्द सरस्वतीकृत
ऋग्वेदभाष्य—सायणकृत
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—दयानन्द सरस्वतीकृत
ऋक्प्रातिशाख्य टीका—उवट कृत
ऐतरेयब्राह्मण—मार्टिन हॉग, सत्यव्रत सामश्रमी, थिओडोर ऑफरेख्ट तथा काशीनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित चारों संस्करण
ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य—सायण कृत
ऐतरेयारण्यक—राजेन्द्रलाल मित्र तथा कीथ द्वारा सम्पादित
ऐतरेयारण्यक भाष्य—सायण कृत
कठोपनिषद्
कथा सरित् सागर
काठकगृह्य सूत्र
काठकगृह्य सूत्र भाष्य—देवपाल कृत
काठक संहिता
काण्डानुक्रमणिका
काण्व संहिता भाष्य—सायण कृत
कात्यायन परिशिष्ट प्रतिज्ञा सूत्र
कात्यायन श्रौतसूत्र—कर्क कृत
काव्य मीमांसा—राजशेखर कृत
काशिकावृत्ति
केनोपनिषद् पदभाष्य—शांकर कृत
कौशिक सूत्र

कौषीतकि उपनिषद्

कौषीतकि ब्राह्मण—बी० लिण्डनर द्वारा सम्पादित

कौषीतकि ब्राह्मण भाष्य—भट्ट विनायक कृत

कौशिक सूत्र पद्धति—आथर्वणिक केशव कृत

खादिर गृह्यसूत्र व्याख्या—रुद्रस्कन्द कृत

गणपाठ—पाणिनीय

गोपथ ब्राह्मण—हरचन्द्र विद्याभूषण तथा डा० ड्यूकगस्ट्र द्वारा सम्पादित दोनों संस्करण

गोभिलगृह्य सूत्र

गौतमधर्मसूत्र भाष्य—मस्करी कृत

चतुर्वर्गचिन्तामणि—हेमाद्रि कृत

चरण व्यूह

चरण व्यूह टीका—महिदास कृत

चान्द्र वर्ण सूत्र

ज्योति (वैशाख सं० १६७७)

छान्दोग्योपनिषत्

छान्दोग्योपनिषद् भाष्य—मध्व कृत

छान्दोग्योपनिषद् भाष्य—रामानुज कृत

छान्दोग्योपनिषद् भाष्य शंकर कृत

छन्दः सूत्र—पिङ्गल कृत

जाबाल उपनिषत्

जैमिनीय ब्राह्मण

जैमिनीय आर्षेयब्राह्मण ए० सी० बर्नल द्वारा सम्पादित

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण हंस अर्टल द्वारा सम्पादित

ज्योतिषशास्त्र का इतिहास (मराठी) शंकर बालकृष्ण दीक्षित कृत

तन्त्रवार्त्तिक कुमारिलकृत

ताण्ड्यमहाब्राह्मण आनन्दचन्द्र वेदान्त वागीश द्वारा सम्पादित
ताण्ड्यमहाब्राह्मणभाष्य सायण कृत
तैत्तिरीयप्रातिशाख्य
तैत्तिरीय ब्राह्मण राजेन्द्रलाल मित्र, नारायणशास्त्री तथा महादेव शास्त्री और श्रीनिवासाचार्य द्वारा सम्पादित तीनों संस्करण
तैत्तिरीय ब्राह्मण भाष्य कौशिक भट्ट भास्कर मिश्रकृत
तैत्तिरीय ब्राह्मण भाष्य सायण कृत (कलकत्ता तथा पूना संस्करण)
तैत्तिरीय संहिता
तैत्तिरीय संहिता भाष्य भट्ट भास्कर कृत
तैत्तिरीय संहिता भाष्य सायण कृत
तैत्तिरीयारण्यक
तैत्तिरीयोपनिषत्
तलवकारार श्रौसूत्र भाष्य—भवत्रातकृत
तैत्तिरीयारण्यकभाष्य—भट्ट भास्कर कृत
तैत्तिरीयारण्यकभाष्य—सायणकृत
तलवकार आरण्यक—अथवा जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण
त्रयीपरिचय सत्यव्रत सामश्रमी कृत
त्रिकाण्डमण्डन
त्रिकाण्डमण्ड टीका
दूसरा निवेदन राजा शिवप्रसाद कृत
दैवत ब्राह्मण जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित
दैवत ब्राह्मण भाष्य सायणकृत
दैव व्याख्या श्रीकृष्ण लीला शुकमुनि कृत
द्राह्यायण श्रौत टीका धन्विन् कृत
द्राह्यायण श्रौतसूत्र
धातुवृत्ति माधवीया
नारदपरिव्राजकोपनिषत्

नारदशिक्षा

नारदशिक्षा टीका शोभाकर कृत

नारायणोपनिषत्

निघण्टु

निघण्टु भाष्य देवराज यज्वाकृत

निदानसूत्र

निरुक्त

निरुक्त निघण्टु कौत्सव्य प्रणीत

निरुक्तभाष्य दुर्गाचार्य कृत

निरुक्तालोचन

न्यायभाष्य-वात्स्यायन कृत

न्यायसूत्र

न्यायसूत्र वृत्ति-विश्वनाथ भट्टाचार्य कृत

पंचतन्त्र (पूर्णभद्र)

पारस्कर गृह्यसूत्र

पुष्पसूत्र=फुल्लसूत्र

प्रतिमानाटक-भास कृत

प्रयोगपारिजात

पाणिनीय शिक्षासूत्र—दयानन्द सरस्वती द्वारा सम्पादित

पाणिनीय शिक्षापञ्जिका—धरणीधर कृत

पिंगलछन्दःसूत्रव्याख्या—हलायुध कृत

पिङ्गल छन्दः सूत्रवृत्ति यादवप्रकाशकृत

फुल्ल सूत्र भाष्य

बालक्रीडाटीका-विश्वरूपाचार्य कृत

बृहज्जाबालोपनिषत्

बृहद्देवता

बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य शङ्करकृत
बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य टीका—आनन्दगिरिकृत
बृहदारण्यकोपनिषद् व्याख्या–द्विवेदगङ्ग कृत
बोधायन गृह्यसूत्र
बोधायन धर्मसूत्र
बोधायन धर्मसूत्र विवरण–गोविन्दस्वामी कृत
बोधायनपितृमेधसूत्र
बोधायनप्रयोगसार–केशवस्वामी कृत
बोधायन शुल्बसूत्र
बौधायनश्रौत विवरण–भवस्वामीकृत
बौधायन श्रौतसूत्र
बृहत्संहिता—वराहमिहिरकृत
बृहत्संहिता विवृत्ति–भट्टोत्पल कृत
बृहदारण्यक (चरकशाखोक्त)
बृहदारण्यक (काण्व)
बृहदारण्यकोपनिषद् (माध्यन्दिन)–ओटो विहट्लिंग द्वारा सम्पादित
भाषिकसूत्र
मदनपारिजात
मनुस्मृति
मनुस्मृति टीका–कुल्लूक कृत
मनुस्मृति भाष्य–मेधातिथि कृत
मन्त्रब्राह्मण–सत्यव्रत सामश्रमी तथा हाईनरिश स्टोन्नर द्वारा सम्पादित दोनों संस्करण
मन्त्रार्थदीपिका–शत्रुघ्न कृत
मन्त्रार्षाध्याय
महाभारत
महाभारत टीका–नीलकण्ठ कृत

महाभाष्य
महाभाष्य दीपिका–भर्तृहरिविरचित
महामोहविद्रावण–राममिश्र शास्त्री द्वारा लिखाया हुआ
महावस्तु
मीमांसा दर्शन
मीमांसा सूत्र भाष्य—शबर स्वामीकृत
मुण्डकोपनिषत्
मेदिनी कोष
मैत्रायणी संहिता
मैत्र्युपनिषद्=मैत्रायण्युपनिषत्=मैत्रेयोपनिषत्
मत्रायणीयारण्यक भास्य—रामतीर्थ कृत
यजुर्वेद भाष्य–उवटकृत
यतिधर्मसंग्रह—विश्वेश्वर सरस्वती कृत
याज्ञवल्क्यस्मृति
राजतरंगिणी
रुद्राध्याय (सायणतथा भट्टभास्करभाष्ययुक्त)—वामन शास्त्री द्वारा सम्पादित
लिंगानुशासनकारिकावृत्तिसहित—वामन कृत
वाक्यपदीय
वाक्यपदीय टीका–पुण्यराज कृत
वाधूल श्रौतसूत्र—कालण्ड के सम्पादित भाग
वायुपुराण
वाल्मीकीय रामायण—वंगीय, महाराष्ट्रीय तथा उत्तर पश्चिमीय संस्करण
वासिष्ठधर्मसूत्र
विष्णुधर्मोत्तर

वृत्तरत्नाकर—केदारभट्टकृत
विष्णुसहस्रनाम भाष्य—शंकर कृत
वेदभाष्य विज्ञापन—दयानन्द सरस्वती
वेदसर्वस्व—हरिप्रसाद कृत
वेदान्तसूत्र भाष्य—भास्कर कृत
वेदान्तसूत्र भाष्य—शंकर कृत
वैजयन्तीकोष
वैदिककोष—सम्पादक हंसराज
वंशब्राह्मण—सत्यव्रतसामश्रमी द्वारा सम्पादित
वंशब्राह्मण भाष्य—सायण कृत
शतपथ ब्राह्मण (काण्व)—डाक्टर कालण्ड द्वारा सम्पादित
शतपथ ब्राह्मण (माध्यन्दिन)—ए० वेबर (पुनरावृत्ति), और सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित तथा अजमेर में प्रकाशित तीनों संस्करण
शतपथ ब्राह्मण भाष्य—सायण कृत
शतपथ ब्राह्मण भाष्य—हरिस्वामी कृत
शांखायन ब्राह्मण—गुलाबराय वजेशंकर द्वारा सम्पादित
श्लोकवार्त्तिक—कुमारिल कृत
शांखायन श्रौतसूत्र
शांखायनश्रौत व्याख्या-आनर्तकृत
शांखायनारण्यक-डा० वाल्टर फ्राइडलण्डर (अध्याय १—२), डा० कीथ (अध्याय ७—१५) तथा श्रीधर शास्त्री द्वारा सम्पादित तीनों संस्करण
शार्ङ्गधर पद्धति
शिक्षा (ऋग्वेदीय) व्याख्यान
शुद्धि कौमुदी

शौनकप्रातिशाख्य

श्राद्धकल्प-हेमाद्रिकृत

श्राद्धकाशिका-कृष्णमिश्रकृत

श्वेताश्वतरोपनिषत्

षड्विंश ब्राह्मण-जीवानन्द, विद्यासागर, एच० एफ० ईलसिंह, कुर्ट क्लेम्म गटस्लौंह द्वारा सम्पादित तीनों संस्करण

षड्विंश ब्राह्मण भाष्य—सायण कृत

संस्कारतत्त्व—रघुनन्दन कृत

संस्कृतविद्योपाख्यान-भवानीदास एम० ए० कृत

संहितोपनिषद् ब्राह्मण-ए० सी० बर्नल द्वारा सम्पादित

सत्यासाढ श्रौतसूत्र टीका—गोपीनाथकृत

सत्यासाढ श्रौतसूत्र व्याख्या—महादेव कृत

सनातन धर्मोद्धार-नकछेदराम कृत

सम्प्रदाय पद्धति

सर्वदर्शन संग्रह-माधवकृत

सर्वानुक्रमणी वृत्ति-षडगुरुशिष्यकृत

सामतन्त्र

सामविधान ब्राह्मण-सत्यव्रतसामश्रमी तथा ए० सी० बर्नल के दोनों संस्करण

सामविधान ब्राह्मण भाष्य—भरतस्वामी कृत

सामवेद

सामवेदभाष्य—भरतस्वामी कृत

सुश्रुत संहिता

संहितोपनिषद् ब्राह्मण भाष्य-सायण कृत

सूची—कवीन्द्राचार्य के पुस्तकालय की

स्मृति चन्द्रिका

Aitareya Aranyaka—Eng. translation by A.B. Keith.

Acta Orientalia Vol. IV.

A life of Appollonious Book VII by Philostratus. Edited by-F. C. Conybeare,

Ancient History of the Deccan by Dubreiull.

Ancient Indian Historical Tradition by F. E. Pargiter.

Arya (magagine) Edited by Arabindo Ghosh.

A Second report for the Search of Mss. Peterson.

A Second Selection of Hymns from the Rigveda by-R. Zimmermann.

A Vedic Grammar for Students by A.A- Macdonell.

Bhandarkar Commemoration Volume.

Catalogue of Bodelian Library Oxford.

Catalogue of Mss. in Bikaner Library.

Catalogue of Mss. in the Ulwar Library—Peterson.

Catalogue of Mss. Bhandarkar Institute Poona.

Catalogue of Mss. in the Mysore Library.

Catalogue of Sanskrit Mss. by G. Oppert.

Catalogue of Sanskrit Mss. in the Asiatic Society of Bengal.

Catalogue of Tanjore Library-A. C. Burnell.

Catalogous of Catalogorum Aufrecht.

Das Jaiminiya Brahmana in Auswahal-W. Caland.

D. A, V. College Union Magazine.

Four Unpublished Upanisadic texts-by S. K. Belvalkar.

Hindu Aryan Astronomy and antiquity of Indian race by-Pt. Bhagwan Dass Pathak.

History of Ancient Sanskrit Literature by–
F. Maxmuller.

History of Sanskrit Literature–A. Weber.

Indische Studien.

Indo Sumerian seals deciphered by–L. A. Waddell.

Jivatman in the Brahma Sutras by—Abhayakumar
Guha.

Journal of the American Oriental Society.

Journal of the Mythic Society.

Lectures on the Rigveda–Prof. Ghate,

Manusmriti Medhatithibhashya Eng. traslation by–
Ganganath Jha.

Medicine of Ancient India Part I, Osteology, by–
R. Hoernle.

Minor Upanishads Edited by–F. O. Schrader.

Political History of Ancient India by–
Hemachandra Roy Chaudhri.

Religion of the Veda by–Barth.

Rigveda Brahmans Eng. translation by–A. B. Keith.

Rigveda Eng. Translation by–Griffith.

Satapatha Brahmana Translated into English by–
Eggeling.

Sitz. Ber der Kais. Akad. der Wiss, Wien, Phil. hist. Kl.

The Karma Mimansa by–A. B. Keith.

The Philosophy of the Veda by–A. B. Keith.

Vedic Hyms–by F. Maxmuller.

Vedic Hyms...H. Oldenberg.

Vedic Mythology—A. A Macdonell.

Vedic Reader—A. A. Macdonell.

Versl. en Meded. der Kon. Afd. let., Ve. R., IVe deel.

Works of Pt. Gurudatta Vidyarthi.

Z. D. M. G. 1901.

Journal of Oriental Research Madras.

तीसरा परिशिष्ट
शब्दविशेष सूची

आ